चिल्ड्रन्स नॉलिज बैंक

Vol. II



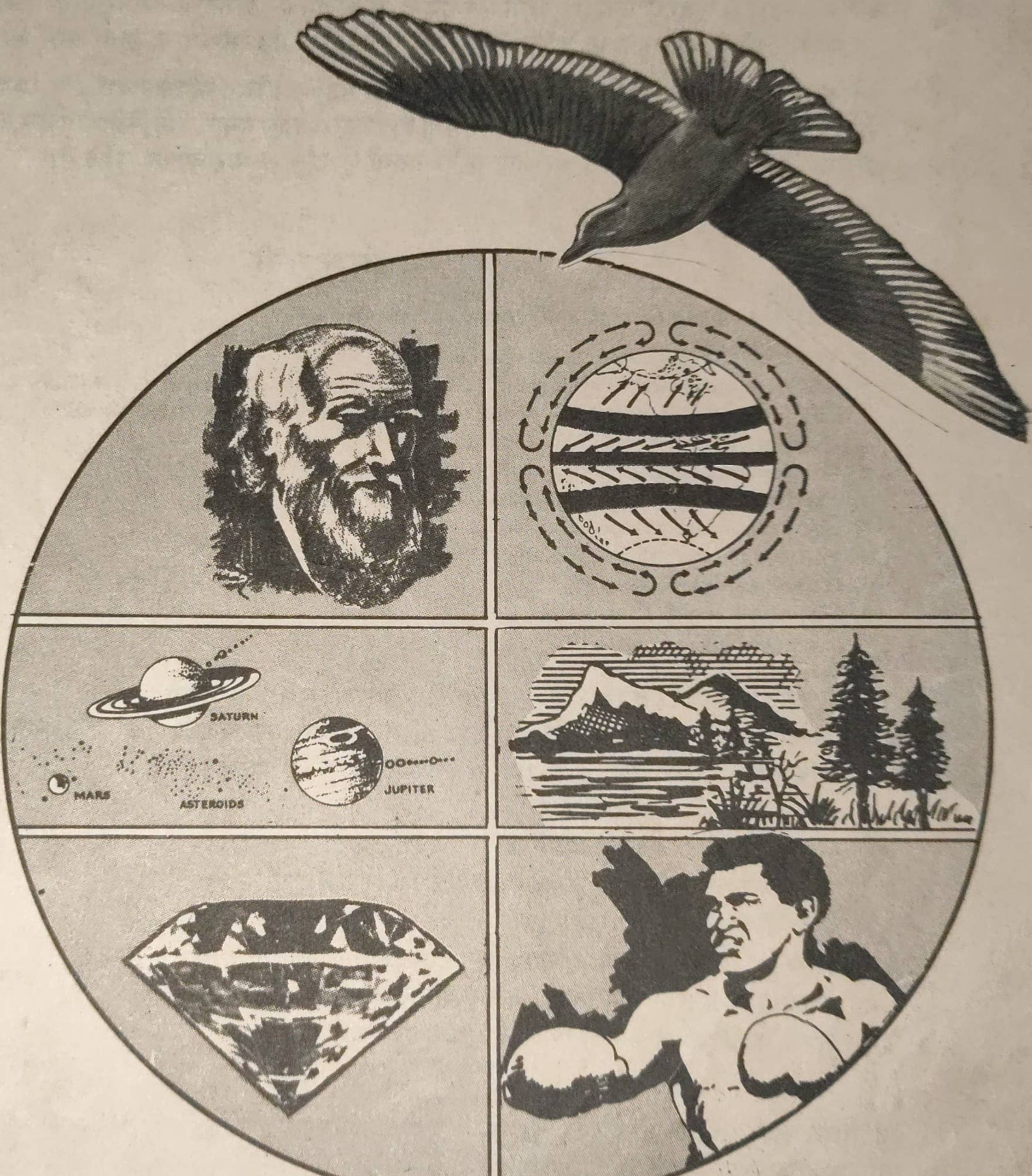
CHILDREN'S KNOWLEDGE BANK



पुस्तक महल, दिल्ली

चिल्ड्रन्स नॉलिज बैंक

(Volume II)



आभार

'चिल्ड्रन्स नॉलिज बैंक' की हमारी महत्त्वाकांक्षी योजना के तीन रूप हैं :

1. इस पुस्तक माला को मूल रूप में हिन्दी में तैयार करा कर 6 भागों में प्रकाशित करना,
2. मूल हिन्दी संस्करण के आधार पर अंग्रेज़ी में प्रकाशन,
3. हिन्दी और अंग्रेज़ी के अतिरिक्त सभी प्रमुख भारतीय भाषाओं में प्रकाशन।

इस उपर्युक्त ढांचे के अनुसार 'चिल्ड्रन्स नॉलिज बैंक' के मूल हिन्दी संस्करण का पहला भाग आप देख चुके हैं। दूसरा भाग आपके हाथों में है और तीसरे भाग की तैयारी चल रही है। अंग्रेज़ी संस्करण के अंतर्गत पहले भाग का प्रकाशन हो रहा है तथा अन्य भागों पर काम हो रहा है। इसी प्रकार भारतीय भाषाओं में भी तैयारी चल रही है।

'चिल्ड्रन्स नॉलिज बैंक' की योजना किसी एक व्यक्ति के बजाय, ज्ञान-विज्ञान की विभिन्न शाखाओं के एक विशेषज्ञ मण्डल की सामूहिक सूझबूझ एवं अनुभवों का परिणाम है। इस योजना के लेखन-सम्पादन एवं चित्रांकन के दौरान कई-कई स्तरों से गुज़रना पड़ा है। तथ्यों एवं संदर्भों को निर्दोष एवं प्रामाणिक बनाने के लिए कई-कई बार अधिकृत सूत्रों एवं संदर्भ ग्रंथों से चेकिंग तथा क्रॉस-चेकिंग करनी पड़ी है। यह 'मैराथॉन' अभी आगे भी चलेगी।

'चिल्ड्रन्स नॉलिज बैंक' की तैयारी में विश्व एवं राष्ट्रीय महत्त्व के जिन मानक संदर्भ ग्रंथों, विश्वकोशों आदि से सहायता ली गई है, उनमें से सबका उल्लेख तो सम्भव नहीं है, लेकिन जिनसे हमारे काम में विशेष रूप से सहायता मिली है, उनका उल्लेख करते हुए हम संबंधित संस्थानों व व्यक्तियों के प्रति आभार व्यक्त करते हैं।

संदर्भ सूची

ENGLISH: Some of the Selected references consulted—

1. The New Encyclopaedia Britannica in 30 Volumes
2. The New Illustrated Encyclopedia of World History in 2 Volumes: *Ed. William L. Langer*
3. The Illustrated Encyclopedia of Knowledge in 20 Volumes: *Marshall Cavendish*
4. The New Junior World Encyclopaedia in 20 Volumes
5. The Raintree Illustrated Science Encyclopedia in 20 Volumes
6. The University Desk Encyclopedia: *Dutton, Elsevier*
7. The Penguin Encyclopedia of Places: *W. G. Moore*
8. You & Your Health in 3 Volumes: *Shryock, Swartout*
9. Guinness Book of Records
10. Guinness Facts & Feats Series

हिन्दी

1. हिन्दी विश्वकोश खण्ड 1 से 12 (नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी)
2. हिन्दी विश्वभारती भाग 1 से 4; जिल्द 6; सं. श्री नारायण चतुर्वेदी, कृ. व. द्विवेदी
3. सचित्र विश्वकोश भाग 1 से 10 (राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली)
4. भारत के पक्षी : सालिम अली
5. भारतीय पक्षी : कुंवर सुरेश सिह
6. भारत का वन्य जीवन : ई० पी० जी : अनु० विराज एम. ए.
7. वन्य जीव का संसार : रामेश वेदी
8. शल्य चिकित्सा के वरदान : डा० आत्मप्रकाश एवं कैलाश साह
9. भारतीय सेना तथा युद्ध कला : कर्नल गौतम शर्मा
10. विश्व के प्रमुख खेल तथा खिलाड़ी : योगराज थानी

उपर्युक्त संदर्भ ग्रंथों के अतिरिक्त अंग्रेज़ी, हिन्दी की अनेकानेक पुस्तकों, लगभग सभी स्तरीय शब्दकोशों, शासकीय पारिभाषिक शब्द संग्रहों से भी सहायता ली गई है।

चिल्ड्रन्स नॉलिज बैंक

(Volume II)

लेखक

डा० सुनीता गुप्ता Ph. D. (Phy. Chemistry)

डा० नीना अग्रवाल M.B.B.S.

परामर्शदाता मंडल

डा० सी० एल० गर्ग M. Sc., Ph. D.
वैज्ञानिक, डिफेन्स साइंस सेंटर,
रक्षा मंत्रालय, भारत सरकार
(मुख्य परामर्शदाता)

डी० सी० झा M. Sc. (Physics)
वैज्ञानिक, डिफेन्स साइंस सेंटर,
रक्षा मंत्रालय, भारत सरकार

डा० पदम गुप्त M.B.B.S.

आर० के० गुप्त M. Sc. (Mathematics)

एम० एल० अग्रवाल M. Tech.

पुस्तक महल

खारी बावली, दिल्ली - 110006

प्रकाशक

रामअवतार गुप्त द्वारा पुस्तक महल, दिल्ली-110006 के लिए प्रकाशित

बिक्री केन्द्र :

1. गली केदार नाथ, चावड़ी बाज़ार दिल्ली-110006
   फोन : 265403, 268292
2. खारी बावली, दिल्ली-110006
   फोन : 239314
3. 10-B, नेता जी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली-110002
   फोन : 268293

प्रशासनिक कार्यालय

F-2/16, अन्सारी रोड
दरिया गंज, नई दिल्ली-110002
फोन : 276539, 272783, 272784.

मूल्य

चिल्ड्रन पेपरबैक संस्करण : 20/- बीस रुपये
लाइब्रेरी सजिल्द संस्करण : 30/- तीस रुपये

चौथा संस्करण सितम्बर 1984

फोटो कम्पोज़िग : विवक फोटो कम्पोज़िग सर्विसेस F 2/16 अन्सारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-110002

मुद्रक : शिवानी एन्टरप्राइजज ए-9, झिलमिल इंडीस्ट्रीयल एरिया शाहदरा दिल्ली 110032

प्रकाशकीय

'चिल्ड्रन्स नॉलिज बैंक' का यह दूसरा भाग आपके हाथों में है। पहले भाग की अभूतपूर्व सफलता और दिनों-दिन बढ़ती लोकप्रियता से प्रेरित होकर ही हम इसका प्रकाशन करने में सफल हो सके हैं।

'चिल्ड्रन्स नॉलिज बैंक' का विचार जब हमारे मन में आया था, तो हमारी इच्छा विश्वकोशीय महत्त्व (Encyclopaedic importance) की एक ऐसी बालोपयोगी ग्रन्थमाला प्रकाशित करने की थी, जिसमें विविध विषयों के 'क्या' 'क्यों' और 'कैसे' प्रश्नों के उत्तर सरल और रोचक भाषा-शैली में प्रस्तुत किए जाएं और जो विषयोपयोगी चित्रों से भरपूर हो। इसी दृष्टि से पहले भाग की रूपरेखा तैयार की गई थी। यह दूसरा भांग प्रस्तुत करते हुए हमारा प्रयास उस दृष्टिकोण और रूपरेखा को अपेक्षाकृत अधिक विस्तृत आयाम देने का रहा है। हमारा सम्पादन और कला-विभाग इस बात के लिए सतत प्रयत्नशील रहा है कि विषय की प्रामाणिकता, तथ्यों की विश्वसनीयता, भाषा-शैली की रोचकता और चित्रों व साज-सज्जा की उपयुक्तता में किसी प्रकार की कोई कमी न रहने पाए। इसीलिए पहले भाग के लगभग डेढ़ साल बाद हम दूसरा भाग प्रकाशित करने की स्थिति में आ सके हैं। इस बिन्दु तक आते-आते प्रस्तुत ग्रन्थ-योजना को पहले से अधिक व्यवस्थित और ठोस आकार देने में भी हम सफल रहे हैं।

पहले हमारा विचार इसे चार भागों में प्रकाशित करने का था। बाद में सम्पादकीय विचार-विमर्श के दौरान लगा कि ज्ञान-विज्ञान की नित-नवीन फैलती शाखाओं-प्रशाखाओं को देखते हुए, चार भागों में, जिज्ञासाशील बच्चों के साथ न्याय नहीं हो सकेगा। बहुत से ऐसे प्रश्नों व विषयों को छोड़ देना पड़ेगा, जिनसे देश के अधिकांश बच्चे अनभिज्ञ हैं। अतः अब इसे छः भागों में प्रकाशित करने का निर्णय किया गया है। यही नहीं, पहले भाग का अंग्रेज़ी संस्करण भी शीघ्र ही प्रकाशित हो रहा है। इस बात के लिए भी हम प्रयत्नशील हैं कि 'चिल्ड्रन्स नॉलिज बैंक' के सभी खण्ड क्रमशः अंग्रेज़ी के साथ-साथ अन्य प्रमुख भारतीय भाषाओं में प्रकाशित किए जा सकें। अनुमान है कि इस प्रकार हम अखिल भारतीय स्तर पर बच्चों का एक पाठक वर्ग तैयार कर सकेंगे।

'चिल्ड्रन्स नॉलिज बैंक' के पहले भाग में चार खण्ड हैं— सामान्य ज्ञान, भूगोल, ब्रह्माण्ड (खगोल) और आविष्कार। दूसरे भागों में खण्डों की संख्या चार से बढ़ा कर पांच कर दी गई है और विविधता भी बढ़ी है। पांच खण्ड इस प्रकार हैं— सामान्य ज्ञान, मानव-शरीर, जीव-जगत, धरती और आकाश तथा खेल खिलाड़ी।

इन दोनों भागों के अध्ययन के बाद आप पाएंगे कि प्रस्तुत ग्रंथमाला का उद्देश्य चटपटी भाषा-शैली में बच्चों को केवल सूचनाएं उपलब्ध करना भर नहीं है, बल्कि उनकी जिज्ञासा-वृत्ति को निरन्तर उकसाते रहना है, ताकि ज्ञान का कोई भी क्षेत्र उनसे अछूता न रह सके।

—प्रकाशक

शीघ्र ही प्रकाश्य

आप व आपके बच्चों के

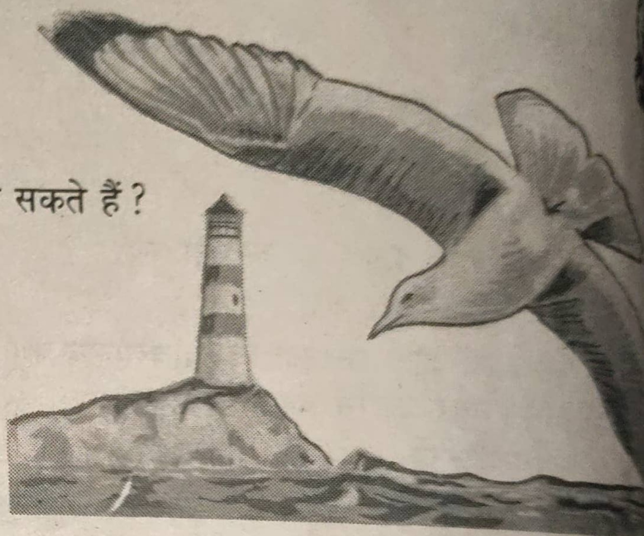
चिल्ड्रन्स नॉलिज बैंक

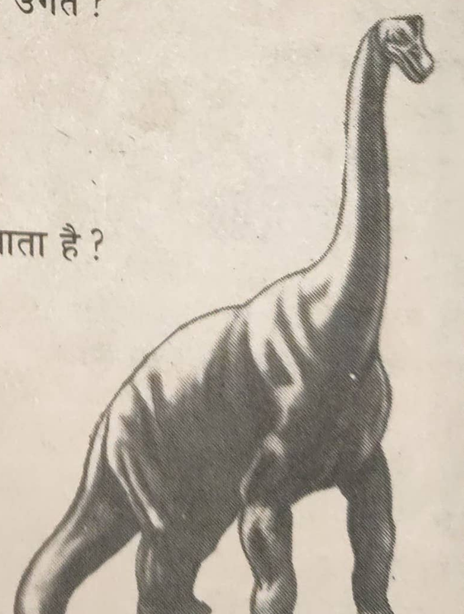
CHILDREN'S KNOWLEDGE BANK

Volume-III

'चिल्ड्रन्स नॉलिज बैंक' तृतीय भाग के कुछ प्रश्नों की झलक

- पहाड़ों की ऊंचाई कैसे मापते हैं ?
- कैन्सर क्या है ?
- हमारे मुंहासे क्यों हो जाते हैं ?
- दिल का दौरा क्यों पड़ जाता है ?
- क्या दो व्यक्तियों के उंगलियों के निशान एक से हो सकते हैं ?
- दूध से दही कैसे बन जाता है ?
- टैस्टट्यूब बेबी क्या है ?
- मुर्दा पानी पर क्यों तैरता है ?
- हमारे बाल सफेद क्यों हो जाते हैं ?
- शुद्ध घी की पहचान कैसे की जाती है ?
- क्या कोई गिलहरी उड़ भी सकती है ?
- उड़ने वाली लोमड़ी क्या है ?
- पहाड़ों की चोटियों पर पेड़ पौधे क्यों नहीं उगते ?
- फोड़े-फुन्सियों में पस क्यों पड़ जाता है ?
- मिस्र के पिरामिड क्यों बनाये गये ?
- हमें सपने क्यों दिखाई देते हैं ?
- हमारे मुंह में लार क्यों आती है ?
- डर के कारण हमारा रंग सफेद क्यों हो जाता है ?
- हमें जुकाम क्यों हो जाता है ?
- मौत की घाटीं क्या है ?
- बिजली से झटका क्यों लग जाता है ?
- पानी आग कैसे बुझाता है ?
- समुद्रों का पानी सूखता क्यों नहीं है ?
- एफिल टावर क्यों बनाई गई ?
- पनामा नहर का निर्माण क्यों हुआ ?
- गंगा को पवित्र नदी क्यों माना जाता है ?









अब तैयार है

चिल्ड्रन्स नॉलिज बैंक

Volume-V



'चिल्ड्रन्स नॉलिज बैंक' पंचम भाग के कुछ प्रश्नों की झलक

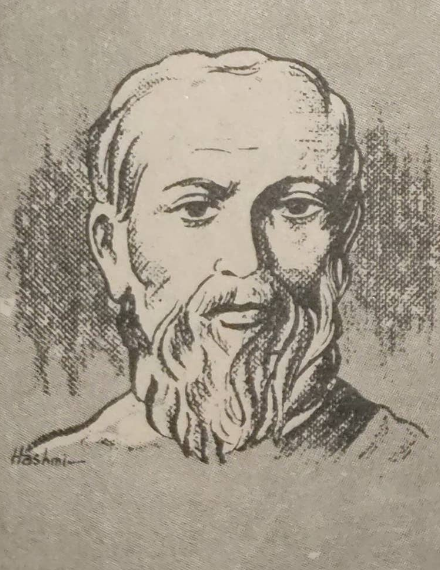
- मानव के पूर्वज कौन थे?
- गौतम बुद्ध कौन थे?
- भारतीय फिल्म पुरस्कार कौन-कौन से हैं?
- भारत के प्रसिद्ध किले कौन से हैं?
- रूस की क्रांति क्या थी?
- इनकास कौन थे?
- बर्फ के एवलांच क्यों आते हैं?
- गुरिल्ला युद्ध कला क्या है?
- जाइन्ट कौजवे क्या है?
- आई. क्यू. का क्या अर्थ है?
- कार्ल मार्क्स कौन थे?
- माफिया क्या है?
- डेट लाइन क्या है?
- प्रकाश का अपवर्तन क्या है?
- बूमरैंग क्या है?
- वाटर ग्लास क्या है?
- संसार की सबसे ऊंची रेलवे कौन सी है?
- मिस्र को नील नदी की देन क्यों कहा जाता है?
- बारनौली प्रभाव क्या है?
- ग्रांड कैन्यन कैसे बना?
- क्रिसमस ट्री क्या है?
- एमीमीटर क्या है?
- वीडियो टेलीफोन कैसे काम करता है?
- होवर क्राफ्ट कैसे काम करता है?
- एस्पिरिन क्या है?
- डौपलर प्रभाव क्या है?
- ई. ई. जी. क्या है?
- एल. एस. डी. क्या है?
- उपग्रह अंतरिक्ष में कैसे उड़ता है?
- बौने पौधे कैसे पैदा किए जाते हैं?
- क्या पौधे भी नर मादा होते हैं?
- पक्षी चहचहाते क्यों हैं?
- क्या कोई भालू चश्मा लगाता है?
- क्या कोई मछली अपने अंडे मुंह में रखती
- प्रतिवर्ती क्रियाएं क्या हैं?
- रक्त का आर. एच. क्या होता है?
- पीलिया की बीमारी क्यों हो जाती है?
- खून की कमी क्यों हो जाती है?

पुस्तकें वी॰पी॰पी॰ द्वारा मंगाने का पता– फोन: 529314, 265403, 264191

पुस्तक महल (M) खारी बावली, दिल्ली-11000

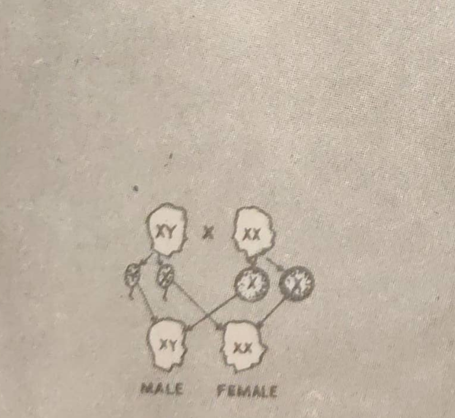
अनुक्रम

1. सामान्य ज्ञान

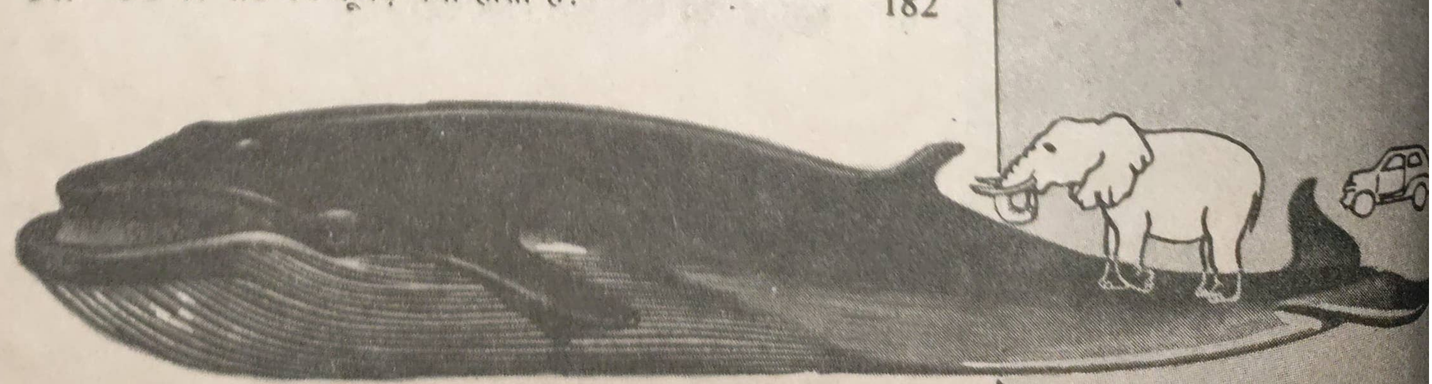


2. मानव शरीर

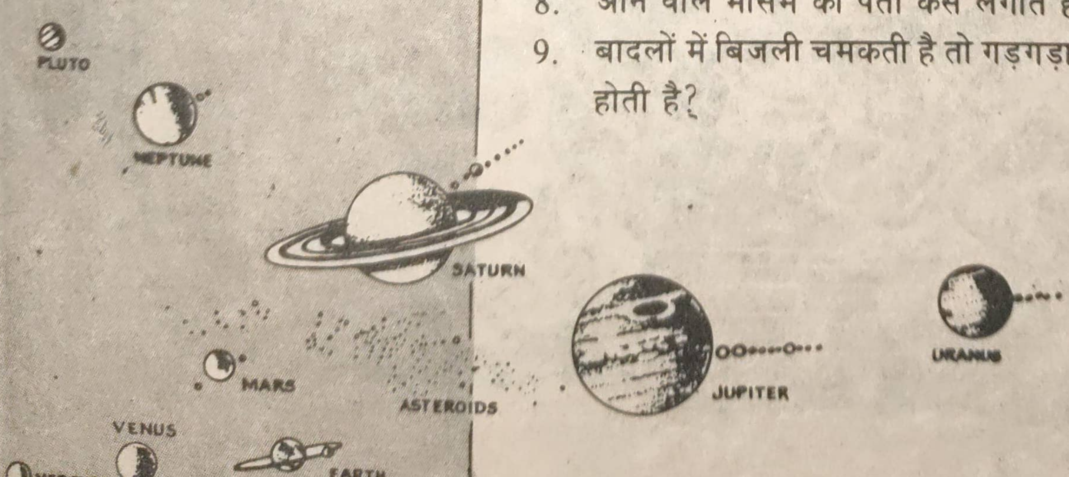




3. जीव जगत



4. धरती और आकाश


PLUTO
NEPTUNE
SATURN
URANUS
JUPITER
MARS
ASTEROIDS
VENUS
MERCURY
EARTH

5. खेल-खिलाड़ी





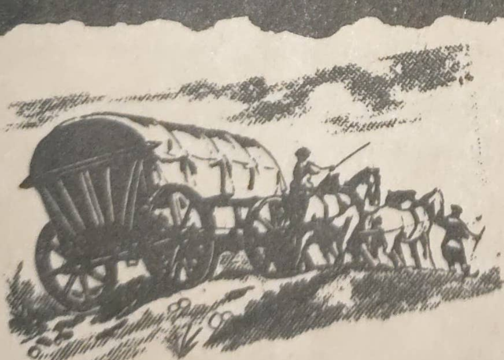






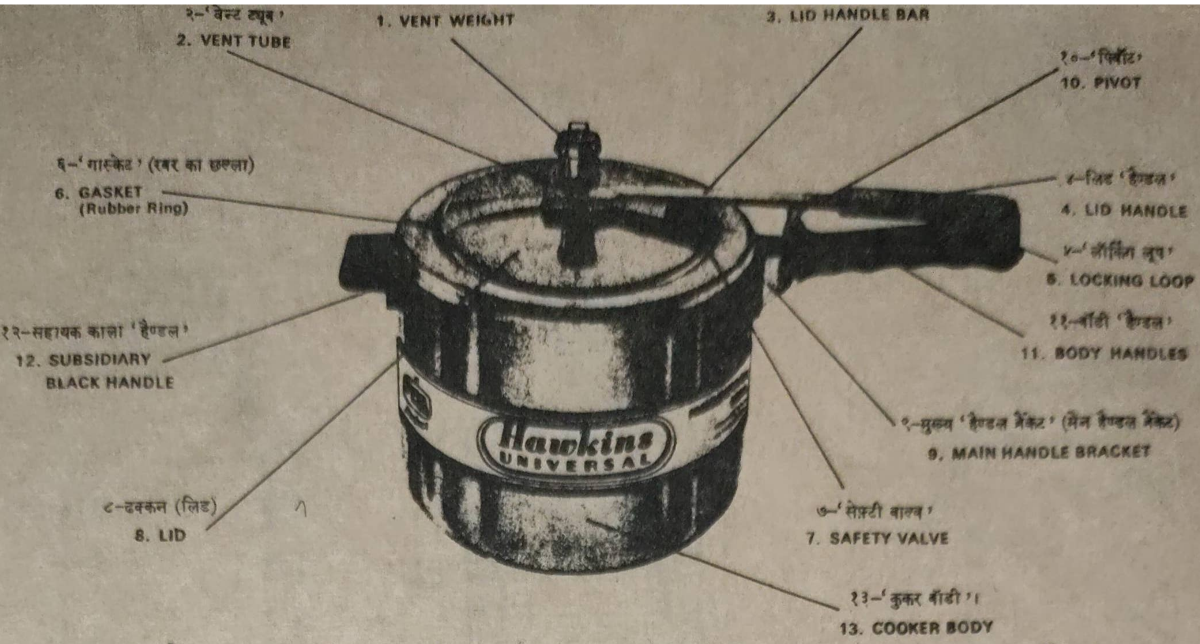
1

सामान्य ज्ञान









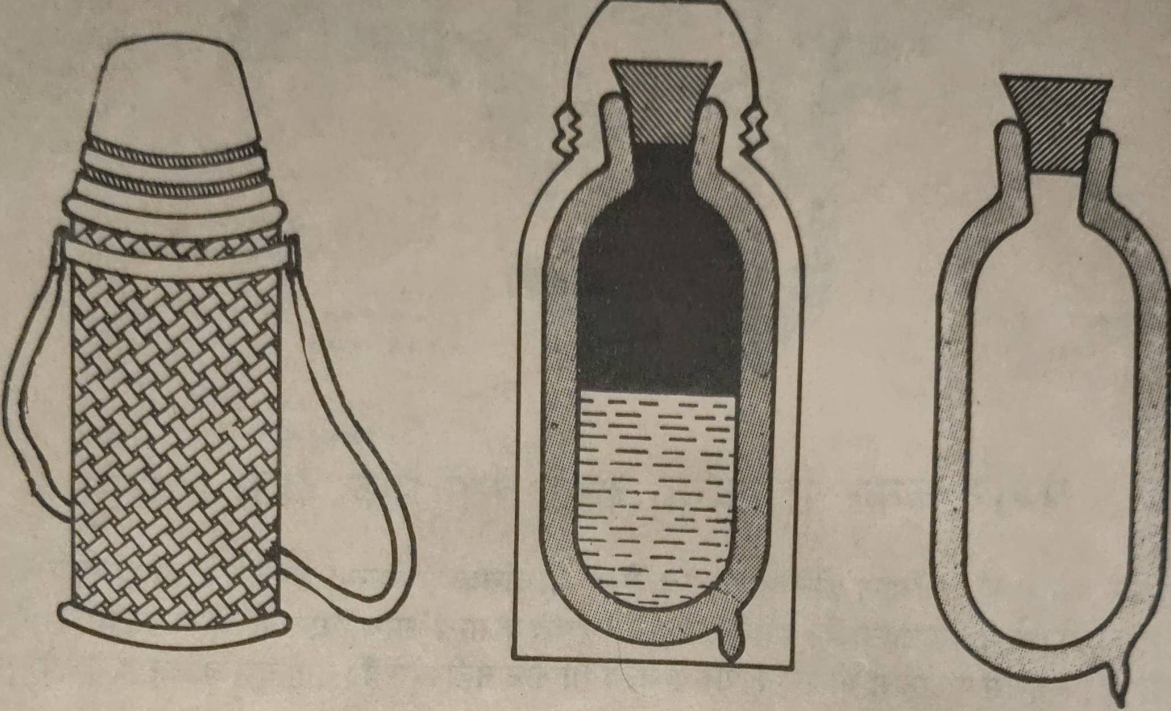
प्रेशर कुकर में खाना जल्दी क्यों पक जाता है?

प्रेशर कुकर रसोई में इस्तेमाल होने वाला एक ऐसा आधुनिक उपकरण है जिसमें प्रायः सभी प्रकार का खाना थोड़ी ही देर में पक जाता है। इससे समय की बचत के साथ-साथ ईंधन की भी बचत हो जाती है। एक और लाभ यह है कि इसमें पकाने से भोजन के पोषक तत्व भी नष्ट नहीं होते हैं। क्या तुम जानते हो कि प्रेशर कुकर में भोजन जल्दी कैसे पक जाता है?

हम जानते हैं कि निश्चित वायुमण्डलीय दबाव पर हर द्रव पदार्थ के उबलने का एक निश्चित तापमान होता है। सामान्य वायुमण्डलीय दबाव पर इस तापमान को उस द्रव का क्वथनांक (Boiling point) कहते हैं। लगातार गर्म करने पर सभी द्रव पदार्थ उबलने लगते हैं। सामान्य दबाव पर पानी 100° सेन्टीग्रेड तापमान पर उबलता है। वैज्ञानिक परीक्षणों से यह देखा गया है कि किसी द्रव पदार्थ की सतह पर दबाव बढ़ाने से उसका क्वथनांक भी बढ़ जाता है। इसी प्रकार दबाव के कम होने पर द्रव का क्वथनांक भी कम हो जाता है। पहाड़ों पर वायु का दबाव कम हो जाता है। अतः वहाँ पर पानी 100° सेन्टीग्रेड से नीचे उबलने लगता है। यही कारण है कि पहाड़ों पर दाल, चावल आदि पकाने में बहुत अधिक समय लगता है।

वायु के दबाव के बढ़ने के साथ-साथ क्वथनांक के बढ़ने के गुण को प्रेशर कुकर के निर्माण में प्रयोग में लाया गया है। प्रेशर कुकर एल्यूमिनियम या स्टेनलैस स्टील से बना एक बर्तन होता है। इसका एक ढक्कन होता है। ढक्कन के ऊपर एक दाबनियंत्रक वाल्व लगा होता है। ढक्कन और बर्तन के बीच में रबर की एक रिन्ग लगी होती है जो अंदर बनी हुई पानी की भाप को बाहर नहीं निकलने देती। कुकर को उठाने के लिए इसमें एक हैन्डल लगा होता है। जब कुकर में कोई चीज पकानी होती है तो कुकर में उस वस्तु को पानी के साथ रखकर और ढक्कन बंद करके इसे आग पर रख दिया जाता है। गर्म करने से कुकर में पानी की भाप बनती है। उस भाप के कारण कुकर में दबाव बढ़ता रहता है। जैसे-जैसे दबाव बढ़ता है पानी का क्वथनांक 100°C से बढ़कर 130°C तक पहुंच जाता है। यही कारण है कि कुकर में चीजें थोड़ी ही देर में पक जाती हैं। जब प्रेशर कुकर के अंदर का दबाव एक सीमा से अधिक बढ़ जाता है तो नियंत्रण वाल्व अपने-आप उठ जाता है, जिससे अंदर की भाप बाहर निकल जाती है और दबाव नियंत्रित हो जाता है, इससे कुकर के बर्तन के फटने का डर नहीं रहता।

प्रेशर कुकर महिलाओं के लिए बहुत ही उपयोगी घरेलू उपकरण है। लेकिन इसके प्रयोग में कुछ सावधानियाँ बरतना अत्यन्त आवश्यक है। यदि कुछ देर गर्म करने पर कुकर में सीटी नहीं आती तो वाल्व को जरा हिलाकर देख लेना चाहिए। खोलते समय विशेष सावधानी बरतनी चाहिए। पहले वाल्व को चिमटा आदि से ऊपर करके अन्दर की भाप निकाल देनी चाहिए और उसके बाद ही ढक्कन खोलना चाहिए।

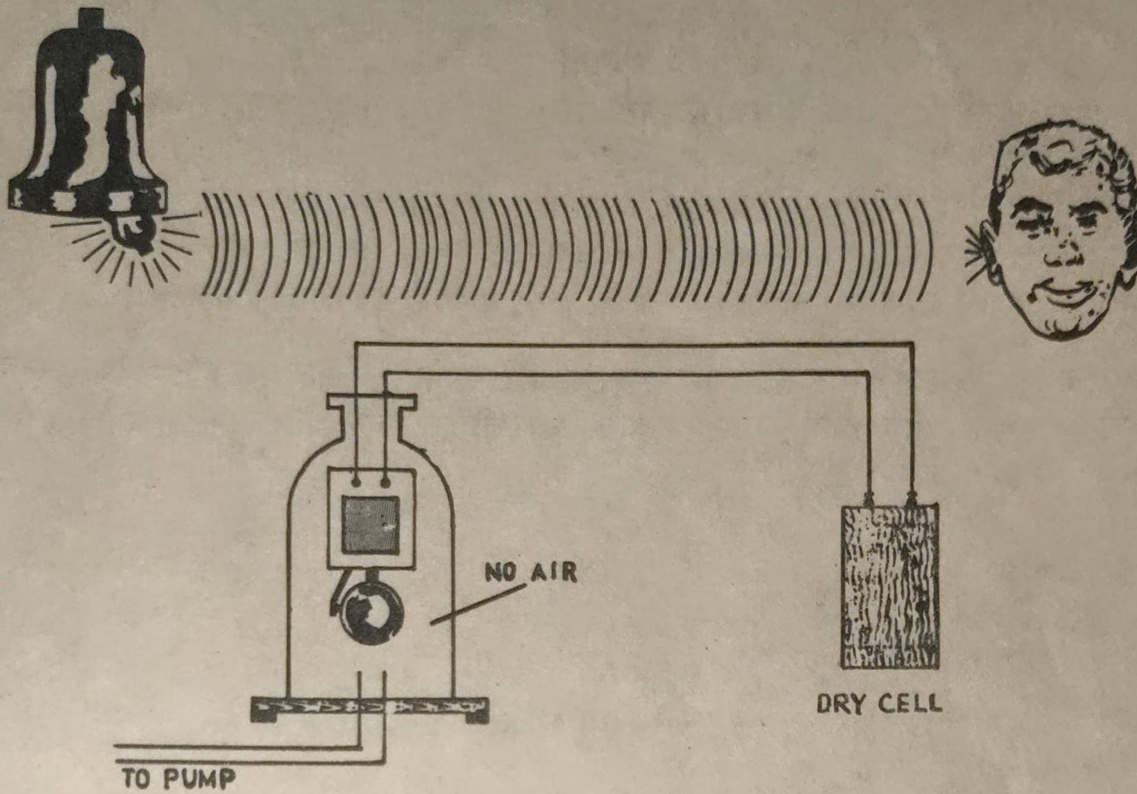


थर्मस प्लास्क में गर्म चीजें गर्म और ठंडी चीजें ठंडी क्यों रहती हैं?

थर्मस फ्लास्क (Thermos Flask) घरेलू इस्तेमाल में आने वाली एक विशेष प्रकार की बोतल होती है जिसमें चाय, दूध जैसे गर्म पदार्थ बहुत देर तक गर्म बने रहते हैं और बर्फ जैसी ठंडी चीजें बहुत देर तक ठंडी रहती हैं। इसका आविष्कार सन् 1892 में सर जेम्स डेवर (Sir James Dewar) ने किया था। इसमें कांच से बनी दोहरी दीवारों (Double-walled) वाली एक बोतल होती है। कांच की दीवारों पर चाँदी (Silver) की पतली परत चढ़ा दी जाती है। एक निर्वात पम्प (Vacuum pump) की सहायता से दीवारों के बीच की हवा निकाल कर इसे बन्द कर दिया जाता है। बोतल को टूटने से बचाने के लिए इसे लोहे से बने एक खोल में रख दिया जाता है और उसके मुँह पर कार्क लगा दिया जाता है।

अब जानना यह है कि इस बोतल में गर्म वस्तुएं गर्म और ठंडी वस्तुएं ठंडी क्यों रहती हैं? सामान्य तौर पर गर्म वस्तुएं इसलिए ठंडी हो जाती हैं कि उनमें मौजूद ताप (ऊष्मा) आसपास के वातावरण में चला जाता है और ठंडी वस्तुएं इसलिए गर्म हो जाती हैं कि आसपास के वातावरण से ऊष्मा उन वस्तुओं में आ जाती है। थर्मस का कार्य ऊष्मा को बाहर से अन्दर और अन्दर से बाहर निकलने से रोकना है।

ऊष्मा एक स्थान से दूसरे स्थान तक तीन तरीकों से जा सकती है। इन तरीकों को चालन (Conduction), संवहन (Convection) और विकिरण (Radiation) कहते हैं। थर्मस में इन तीनों विधियों से ही ऊष्मा का आना जाना नहीं हो पाता। थर्मस की बोतल कांच की बनी होती है और कांच ऊष्मा का कुचालक (Bad conductor) होता है,इसलिए ऊष्मा पहली विधि द्वारा बाहर से न अन्दर जा पाती है और न अन्दर से बाहर आ पाती है। कांच की दीवारों के बीच में हवा न होने के कारण ऊष्मा का आवागमन दूसरी विधि से भी नहीं हो पाता। कांच की दीवारों पर चाँदी की तह अन्दर की ऊष्मा को अन्दर की ओर परावर्तित कर देती है और बाहर की ऊष्मा को बाहर की ओर परावर्तित कर देती है। इस प्रकार तीसरी विधि द्वारा भी ऊष्मा का आना-जाना नहीं हो पाता। इन्हीं कारणों से थर्मस में रखी गर्म चीजें ठंडी नहीं हो पातीं और ठंडी चीजें गर्म नहीं हो पातीं।



आवाज एक स्थान से दूसरे स्थान तक कैसे पहुंचती है?

हम अपने कानों द्वारा जो कुछ भी सुनते हैं उसे ध्वनि यानी आवाज़ कहते हैं। विज्ञान के अनुसार ध्वनि वह हलचल (Disturbance) है जो हमारे कानों में संवेदन (Sensation) पैदा करती है। ताप और प्रकाश की तरह ध्वनि भी ऊर्जा (Energy) का एक रूप है। क्या तुम जानते हो कि आवाज कैसे पैदा होती है और यह एक स्थान से दूसरे स्थान तक कैसे जाती है?

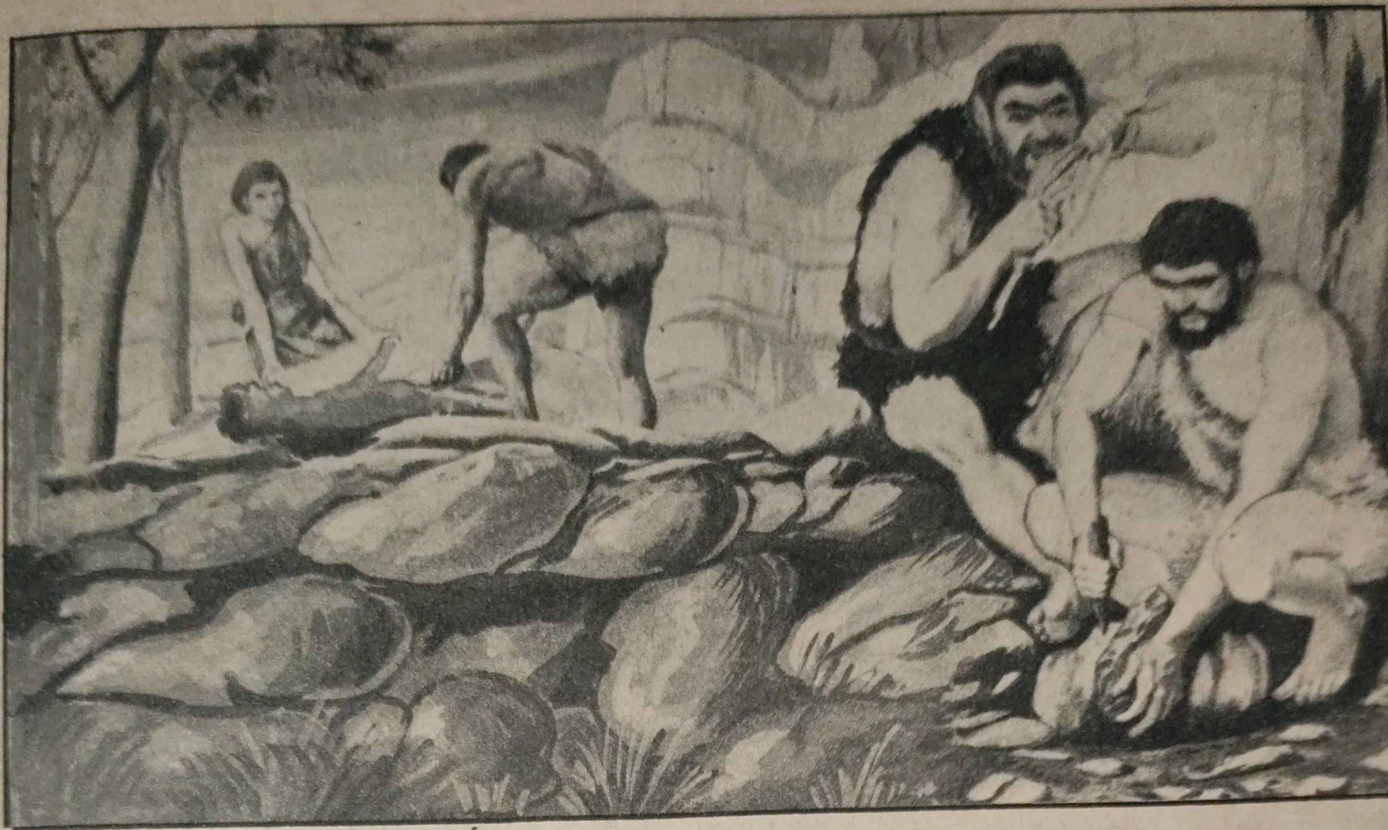
किसी भी वस्तु से ध्वनि तभी पैदा होती है जब उसका कोई न कोई भाग कम्पन (Vibrate) करता है। जब हम किसी घंटे पर चोट मारते हैं तो उसमें कम्पन पैदा हो जाता है जिसके फलस्वरूप आवाज़ पैदा होती है। आवाज़ करते हुए घंटे को यदि हम हाथ से छूकर देखें तो वह कम्पन करता हुआ लगेगा। कोई भी जीवधारी जब बोलता है तो उसके गले की झिल्ली कम्पन करती है। बिना कम्पनों के ध्वनि पैदा हो ही नहीं सकती।

जब कोई वस्तु कम्पन करती है तो उससे ध्वनि तरंगें (Sound Waves) पैदा होती हैं। जिस प्रकार तालाब के पानी में पत्थर का टुकड़ा फेंकने पर पानी की सतह पर तरंगें पैदा हो जाती हैं उसी प्रकार कम्पन के फलस्वरूप तरंगें पैदा होती हैं। ये तरंगें जब हमारे कानों तक पहुंचती हैं तो हमें आवाज़ सुनाई देती है। हमारे कान उन आवाज़ों को सुन सकते हैं जो कि 20 से 20,000 तक की आवृत्तियों (Frequencies) वाले कम्पनों से पैदा होती हैं। 20 से कम और 20,000 से अधिक आवृत्ति वाले कम्पनों के लिए हमारे कान संवेदनशील नहीं हैं।

ध्वनि एक स्थान से दूसरे स्थान तक तरंगों के रूप में चलती है। इन तरंगों को चलने के लिए माध्यम (Medium) की आवश्यकता होती है। यह माध्यम ठोस, द्रव और गैस कुछ भी हो सकता है। बिना माध्यम के अर्थात् निर्वात (Vacuum) में ध्वनि तरंगें नहीं चल सकतीं। इस तथ्य को निम्न प्रयोग से सिद्ध किया जा सकता है।

बिना पेंदी वाली कांच की एक बोतल लेकर निर्वात पम्प (Vacuum Pump) से जोड़ दो। बोतल के मुंह पर कार्क लगाकर उसके भीतर एक बिजली की घंटी लटका दो। कार्क में दो छेद करके घंटी के तार बाहर निकाल दो। तारों को बैटरी से जोड़ने पर घंटी बजने लगती है जिसकी आवाज हमें सुनाई देती है। अब पम्प द्वारा बोतल के अन्दर की हवा निकालना शुरू करो। जैसे-जैसे बोतल के अन्दर की वायु कम होती जाती है घंटी की ध्वनि भी धीमी होती जाती है। जब बोतल के अन्दर हवा बिल्कुल नहीं रहती, तब हमें ध्वनि भी सुनाई नहीं देती। इससे स्पष्ट होता है कि ध्वनि को चलने के लिए किसी न किसी माध्यम की आवश्यकता होती है।

ऊपर के इन तथ्यों से हम तीन निष्कर्ष निकालते हैं। पहला, ध्वनि के पैदा होने के लिए वस्तु का कम्पन करना जरूरी है। दूसरा, ध्वनि तरंगों के रूप में चलती है और तीसरा, ध्वनि के संचरण (Propagation) के लिए किसी माध्यम का होना जरूरी है।



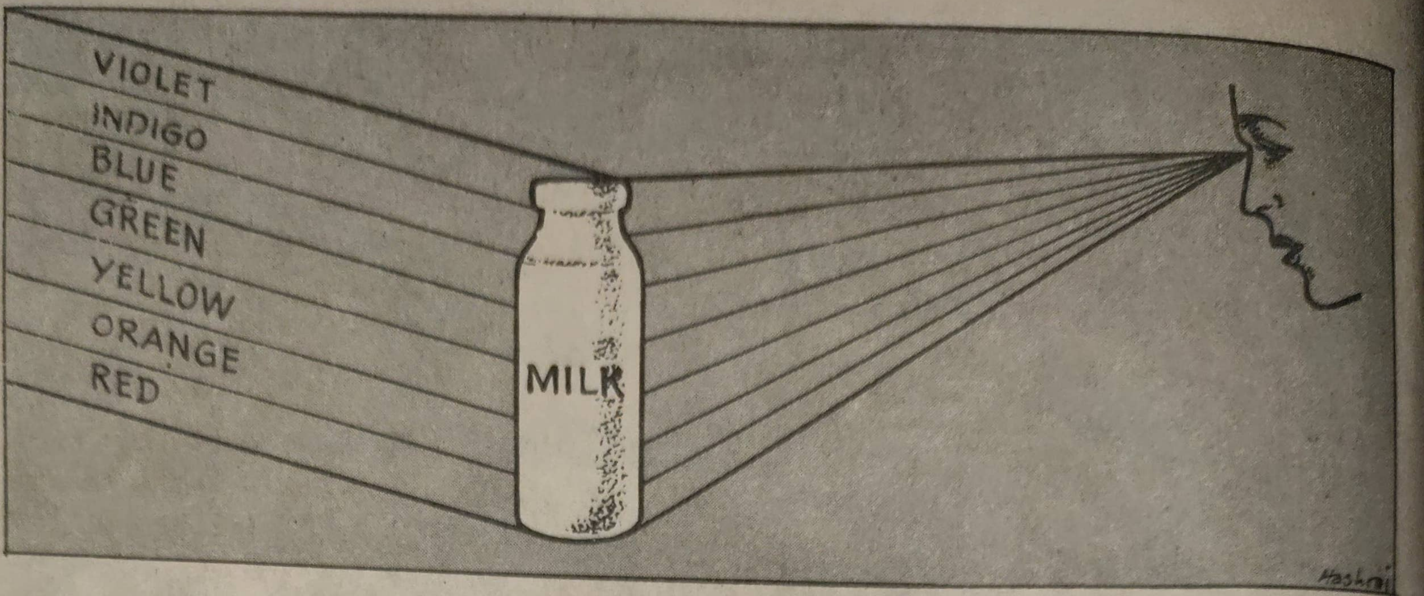
क्या संसार में नरभक्षी लोग भी रहते हैं?

बड़ी मछली छोटी मछली को खा जाती है और एक मकड़ी दूसरी मकड़ियों को खाती है, पर एक मनुष्य दूसरे मनुष्य को खा जाता है, इस बात पर विश्वास नहीं होता। लेकिन यह सत्य है कि संसार में आज भी कुछ जातियां ऐसी हैं जो आदमी को खाती हैं।

प्राचीन काल में तो बहुत से कबीले ऐसे थे जो आदमी का मांस खाते थे। वे लोग आदमी का मांस इसलिए नहीं खाते थे कि यह उनको अच्छा लगता था, बल्कि उन लोगों के कुछ रीतिरिवाजों के अनुसार आदमी का मांस खाना पवित्र समझा जाता था। कुछ लोगों का विश्वास था कि आदमी जो कुछ खाता है वैसा ही बन जाता है। यदि वह शेर का मांस खाता है तो शेर की तरह बलवान हो जाएगा। बहादुर मनुष्य को मारकर खाने से वह बहादुर बन जाएगा।

कुछ जातियों का धर्म उन्हें नरभक्षी बनने की अनुमति देता था। कुछ लोग अपराधियों को सजा देने के लिये देवताओं पर उनकी बलि (Sacrifice) चढ़ाते थे क्योंकि उनका विश्वास था कि अपराधी ने बुरा काम करके देवताओं को अप्रसन्न कर दिया है। देवता केवल उसकी बलि से ही प्रसन्न होगा। जिस आदमी की बलि दी जाती थी उसका मांस प्रसाद के रूप में दूसरे लोग खाते थे। मैक्सिको के आज्तेक जाति के कबीलों में लोग ऐसा ही करते थे।

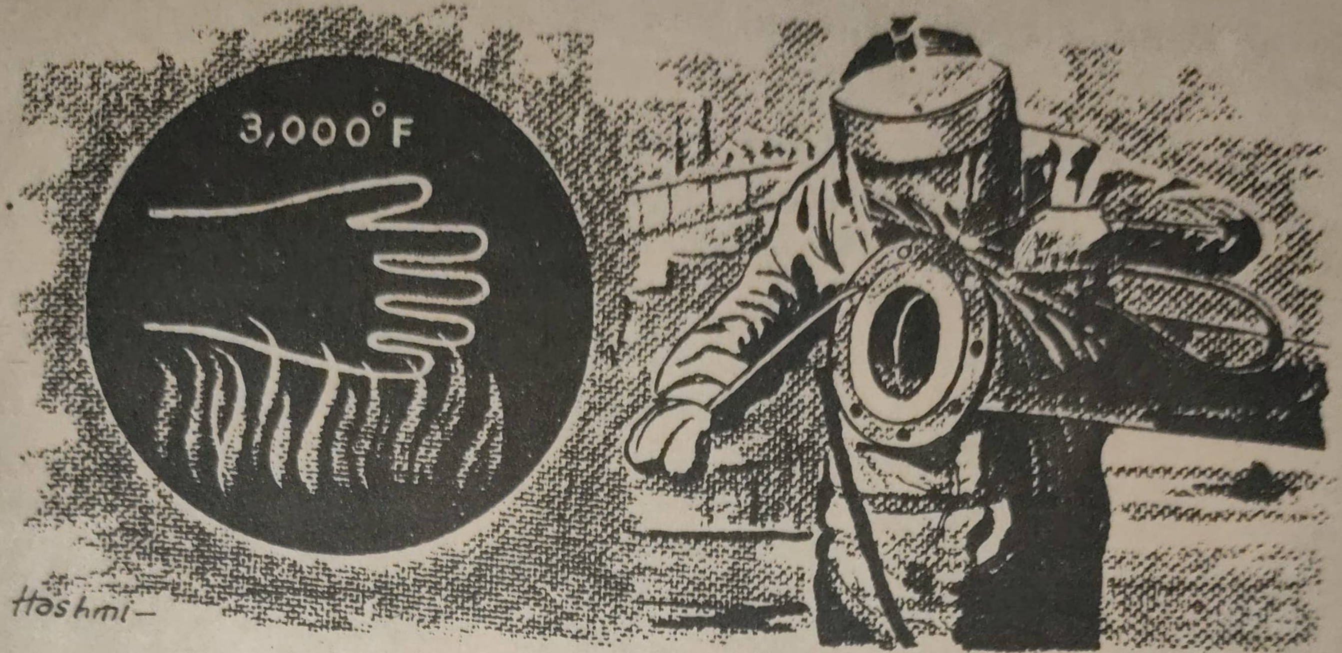
प्रशान्त महासागर के कुछ द्वीपों के कबीलों में आज भी कुछ नरभक्षी मानव पाए जाते हैं। कुछ लोगों का विश्वास है कि न्यू गाइना (New Guinea) में भी कुछ नरभक्षी जातियां है। आज संसार में कितनी नरभक्षी जातियां हैं, इस बात का कोई ठोस प्रमाण नहीं है लेकिन प्राचीन काल की तुलना में अब बहुत ही कम जातियां नरभक्षी लोगों की हैं।



दूध का रंग सफेद क्यों दिखता है ?

सूर्य के प्रकाश में दूध अथवा दही का रंग सफेद दिखाई देता है, लेकिन यदि दूध को लाल प्रकाश में देखा जाए तो इसका रंग लाल दिखाई देने लगेगा और हरे या नीले प्रकाश में देखने पर यह क्रमशः हरे या नीले रंग का दिखाई देगा। क्या तुम जानते हो ऐसा क्यों होता है?

हम जानते हैं कि सूर्य का प्रकाश जो देखने में रंगहीन लगता है,वास्तव में सात रंगों से मिलकर बना है। ये रंग हैं बैंगनी (Violet), जामुनी (Indigo), नीला (Blue), हरा (Green), पीला (Yellow), नारंगी (Orange) और लाल (Red)। इन रंगों को एक प्रिज्म की सहायता से अलग-अलग किया जा सकता है। किसी भी चीज का रंग इस बात पर निर्भर करता है कि उस वस्तु से कौन सा रंग परावर्तित होकर हमारी आंखों तक पहुंच रहा है। वस्तु से जो रंग परावर्तित होकर हमारी आंख तक पहुंचेगा, वस्तु हमें उसी रंग की दिखाई देगी। दूध और दही के अणुओं की रचना कुछ ऐसी है कि ये इन सात रंगों में से किसी भी रंग को नहीं सोखते (Absorb), बल्कि सभी रंगों को परावर्तित कर देते हैं। अतः ज़ब दूध-दही पर सूर्य का प्रकाश पड़ता है तो इसमें उपस्थित सभी रंग परावर्तित होकर हमारी आंखों तक पहुंच जाते हैं। चूंकि इन सातों रंगों का मिश्रण सफेद रंग पैदा करता है, इसलिए दूध या दही का रंग हमें सफेद दिखाई देता है। जब दूध या दही को हम लाल प्रकाश में देखते हैं तो इनके अणुओं से लाल रंग परावर्तित हो जाता है और दूध का रंग लाल दिखाई देने लगता है। इसी प्रकार हरे रंग के प्रकाश में हरे रंग के परावर्तन के कारण दूध या दही का रंग हरा दिखाई देता है। यही बात दूसरी वस्तुओं के विषय में भी सत्य है। जो रंग वस्तु द्वारा परावर्तित होकर हमारी आंख तक पहुंचेगा वह वस्तु हमें उसी रंग की दिखाई देगी।



क्या कोई पदार्थ ऐसा भी है जो आग में नहीं जलता ?

किसी भी पदार्थ को जब जलती हुई भट्टी में रखा जाता है तो वह जलकर राख बन जाता है, लेकिन ऐस्बेस्टस (Asbestos) एक ऐसा पदार्थ है जो आग में डालने पर नहीं जलता। आग बुझाने वाले दल के लोग ऐस्बेस्टस से बने कपड़े पहनकर बिना झिझक के जलते हुए मकानों में घुस जाते हैं। उनके कपड़े, जूते, दस्तानें, हेलमेट आदि सभी ऐस्बेस्टस के रेशों से बने होते हैं। क्या तुम जानते हो कि ऐस्बेस्टस क्या है?

ऐस्बेस्टस एक ऐसा विचित्र पदार्थ है जो आग नहीं पकड़ता। 'ऐस्बेस्टस' शब्द ग्रीक भाषा से लिया गया है, जिसका अर्थ है अशमनीय (Inextinguishable)। इस पदार्थ का आविष्कार कोई नया नहीं है। लगभग 2000 वर्ष पूर्व रोम के लोग ऐस्बेस्टस की चादरों का इस्तेमाल मुर्दों को लपेटने के लिए करते थे। इनमें शव काफी दिनों तक सुरक्षित रहता था।

यह पदार्थ चट्टानों से मिलता है। इसकी खानें होती हैं। खानों में इस पदार्थ का निर्माण ओलीविन (Olivine) नामक पदार्थ के विघटन से होता है। ओलीविन केल्शियम और मैग्नेशियम के सिलीकेट होते हैं। खानों में होने वाली रासायनिक क्रियाओं के फलस्वरूप यह पदार्थ रेशों में बदल जाता है। रुई की तरह इसके धागे काते जा सकते हैं। ऐस्बेस्टस को खानों से निकाल कर सुखा दिया जाता है। मशीनों की सहायता से इसके रेशे अलग कर दिए जाते हैं। इन रेशों को रस्सी या धागों के रूप में कात लिया जाता है। इन धागों और रस्सियों से कपड़ा और चादरें बना ली जाती हैं।

ऐस्बेस्टस एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण पदार्थ है। इससे आग में न जलने वाले (Fire-proof) कपड़े बनाए जाते हैं। इसे भट्टियों के पास काम करने वाले लोग इस्तेमाल करते हैं। भट्टियों की ऊष्मा को बेकार न जाने देने के लिए उनके अन्दर ऐस्बेस्टस की चादरें लगाई जाती हैं। इससे आग में न जलने वाला कागज भी बनाया जाता है। ऐस्बेस्टस से रंगबिरंगी टाइलें बनाई जाती हैं। ठण्डे देशों में पानी के पाइपों पर ऐस्बेस्टस की तह चढ़ाई जाती है

जिससे उनमें पानी नहीं जमता। इससे आग में न जलने वाले बहुत से पेन्ट, रबड, प्लास्टर और पोर्सलीन भी बनाए जाते हैं।

यह एक ऐसा पदार्थ है जो ऊष्मा और विद्युत दोनों का ही कुचालक है। इस पर अम्ल और क्षारों का भी बहुत कम प्रभाव होता है। यह 2000 से 3000 डिग्री सैल्सियस तापमान तक नहीं जलता। अब तो कुछ ऐसे ऐस्बेस्टस भी बना लिए गए हैं जो 5000 डिग्री सैल्सियस तक नहीं जलते। इसे अनुसंधान प्रयोगशालाओं में भी काम में लाया जाता है।

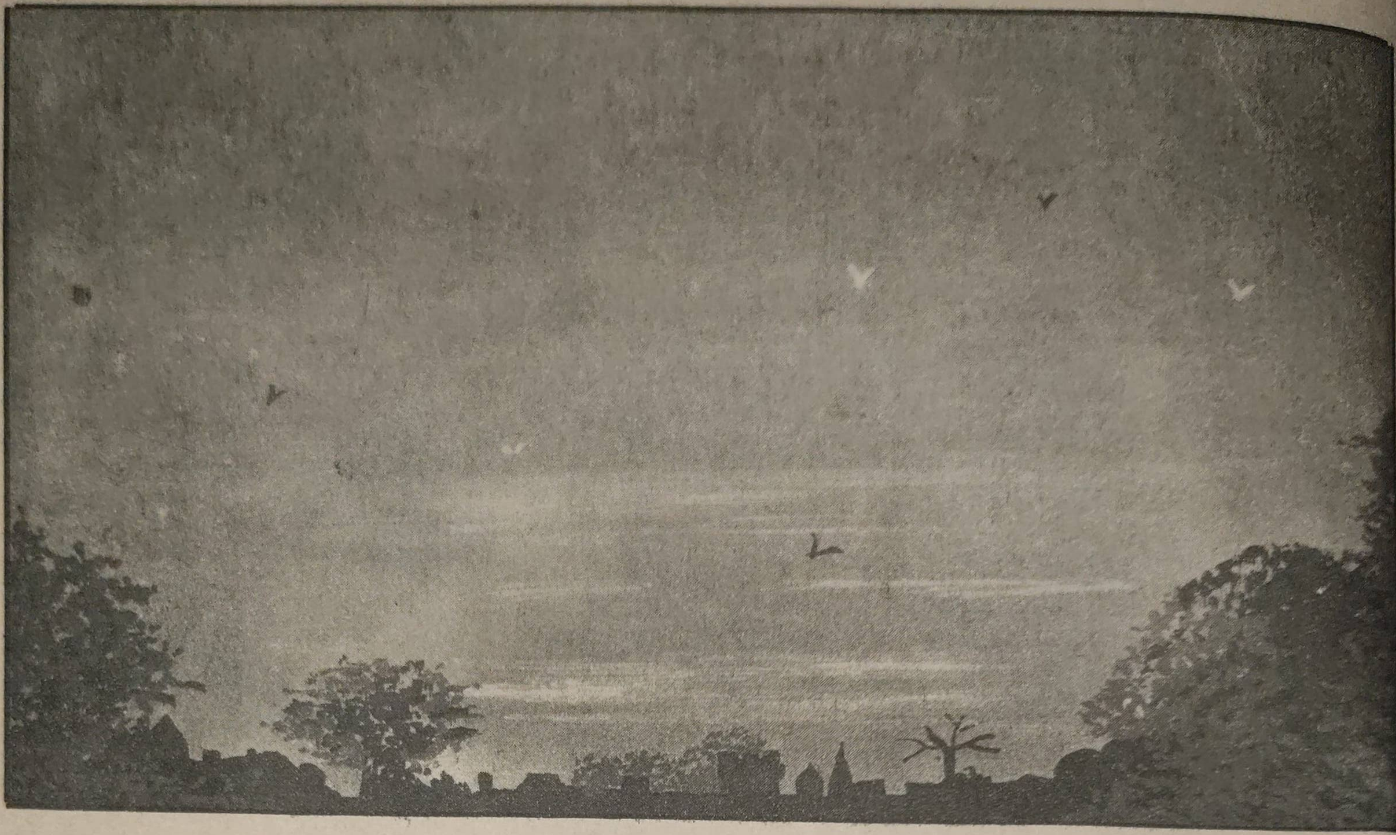
संसार में मिलने वाले ऐस्बेस्टस का 75% उत्पादन कनाडा में होता है। इससे बनने वाली वस्तुओं का सबसे अधिक निर्माण अमेरिका में होता है, यद्यपि यहां ऐस्बेस्टस केवल 5% ही मिलता है।



पान खाने से मुंह लाल क्यों हो जाता है?

यह आम अनुभव की बात है कि पान-चबाने पर मुंह लाल हो जाता है। पान चबाने का शौक संसार के लगभग सभी देशों में है। संसार की कुल जनसंख्या का दसवां भाग पान चबाने का शौकीन है। क्या तुम जानते हो कि पान खाने से मुंह लाल क्यों हो जाता है?

जो पान हम खाते हैं वह एक पौधे का पत्ता होता है। इसका पौधा बेल की तरह होता है। इसकी बेल को चढ़ाने के लिए बांस गाड़ दिये जाते हैं। बेल को धूप से बचा कर रखा जाता है। इस काम के लिए पौधों को चटाइयों की छाया में रखा जाता है। इस बेल पर फूल भी आते हैं। पान के पौधे भारत में बिहार, मध्य प्रदेश, बंगाल और उत्तर प्रदेश में खूब उगाये जाते हैं। खाने वाले पान में चूना और कत्था लगाया जाता है। इसमें थोड़ी सी सुपारी, लौंग, गोले का बुरादा, इलायची और थोड़ी सी खुशबू भी इच्छानुसार डाली जाती है। सुपारी और हरे रंग की पत्ती से लाल रंग पैदा हो नहीं सकता। इस बात का परीक्षण दोनों को अलग-अलग चबा कर किया जा सकता है। चूना सफेद रंग का होता है इसलिए यह भी लाल रंग पैदा नहीं कर सकता। केवल कत्था ही पान में ऐसा पदार्थ है, जो लाल रंग पैदा कर सकता है। कत्था खैर (Acacia Catechu) नामक वृक्ष की भीतरी कठोर लकड़ी से निकाला जाता है। पान में इस्तेमाल करने के लिए इसे पानी के साथ उबाला जाता है। कत्थे के इसी घोल को पान पर लगाया जाता है। जब चूने के ऊपर कत्था लगता है, तो एक रासायनिक क्रिया होती है, जिसके फलस्वरूप इसका रंग गहरा लाल हो जाता है। पान खाने पर मुंह में उपस्थित लार उसका रंग और भी अधिक गहरा कर देती है। इस प्रकार पान चबाने पर हमारा मुंह लाल हो जाता है।



आकाश नीला क्यों दिखाई देता है ?

हमारी पृथ्वी के चारों ओर वायु का एक आवरण है जिसे हम वायुमण्डल कहते हैं। यह वायुमण्डल नाइट्रोजन, आक्सीजन, कार्बनडाइआक्साइड, धूल के कण, जलवाष्प और बहुत सी दूसरी गैसों से मिलकर बना है। सूर्य और तारों से आने वाला प्रकाश इस वायुमण्डल से होकर ही हम तक पहुंच पाता है।

धरती को मिलने वाला प्रकाश मुख्य रूप से सूर्य से ही आता है। जब प्रकाश वायुमण्डल में प्रवेश करता है तो वह वायु, धूल और जलवाष्प के अणुओं से टकराता है। इन अणुओं से टकराने के कारण सूर्य का प्रकाश सभी दिशाओं में छितर (Scatter) जाता है। प्रकाश के इसी छितरने के कारण ही सूरज निकलने पर चारों ओर उजाला फैल जाता है।

हम जानते हैं कि सूर्य का प्रकाश सात रंगों से मिलकर बना है। ये रंग हैं बैंगनी, जामुनी, नीला, हरा, पीला, नारंगी और लाल। जब प्रकाश की किरणें वायुमण्डल के कणों से टकराती हैं तो इन सात रंगों में से बैंगनी, जामुनी, नीले रंग सबसे अधिक छितरते हैं और लाल सबसे कम। प्रकाश के छितरने से हमारी आंखों तक ये तीन रंग ही अधिक मात्रा में पहुंचते हैं। इन तीनों रंगों का मिश्रण लगभग नीला होता है इसीलिए आकाश हमें नीला दिखाई देता है।

यदि धरती के चारों ओर वायुमण्डल न होता तो आकाश हमें काला दिखाई देता। यदि हम चन्द्रमा की सतह पर खड़े होकर देखें तो आसमान का रंग काला दिखाई देगा। इसी प्रकार किसी अंतरिक्षयान से देखने पर भी आकाश का रंग काला दिखाई देता है। इसका कारण यह है कि चंद्रमा के चारों ओर भी कोई वायुमण्डल नहीं है और अंतरिक्षयान भी वायुरहित वातावरण में ही परिक्रमण करते हैं।

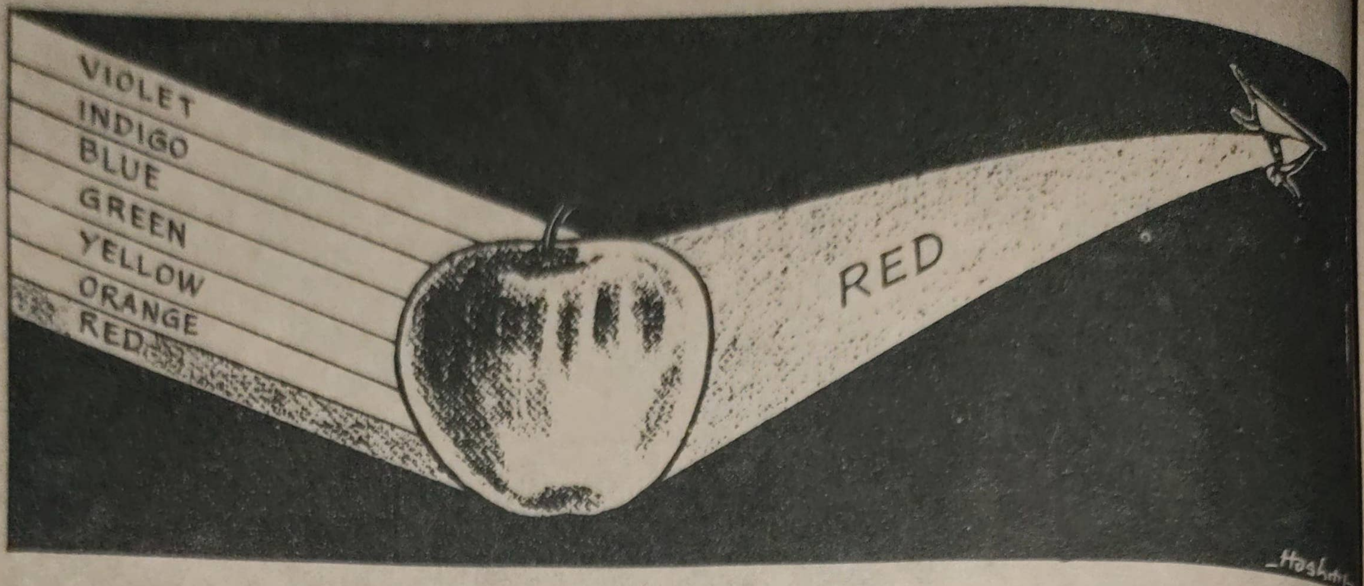


काली बिल्ली को अशुभ क्यों माना जाता है ?

आज संसार में करोड़ों लोग ऐसे हैं जो काली बिल्ली के दिखने को अशुभ मानते हैं। घर से बाहर जाते समय जब कोई बिल्ली रास्ता काट जाती है तो अक्सर लोग सोचते हैं कि कोई विपत्ति आने वाली है। सुबह बिस्तर से उठते समय भी बिल्ली का दिखाई दे जाना अशुभ समझा जाता है। लोगों का कहते हुए सुना गया है कि आज सुबह-सुबह बिल्ली के दर्शन हुए हैं पता नहीं सारा दिन कैसा बीतेगा। क्या तुम जानते हो कि काली बिल्ली को अशुभ क्यों माना जाता है?

काली बिल्ली को अशुभ माना जाना केवल एक अन्धविश्वास है। इस अन्धविश्वास की शुरुआत हजारों साल पहले हुई। प्राचीन काल में मिस्र के लोग बिल्ली को पवित्र मानते थे और उसकी पूजा करते थे। उनकी बाश्त (Bast) नाम की एक देवी थी जिसका सिर बिल्ली जैसा था। वे सोचते थे कि यह देवी 9 बार जन्म लेती है। आज भी कुछ लोग सोचते हैं कि बिल्ली के 9 जन्म होते हैं। मिस्र में जब कोई काली बिल्ली मर जाती थी तो उसके मृत शरीर पर मसाला लगाकर सुरक्षित रखा जाता था। मिस्र की एक श्मशान भूमि में हजारों काली बिल्लियों के मृत शरीर मिले हैं। बिल्ली को मारने वाले व्यक्ति को मृत्युदंड दिया जाता था। इस प्रकार लोग काली बिल्ली से बहुत डरते थे।

मध्यकाल में जब जादू-टोना बहुत अधिक प्रचलित था उस समय के जादूगर और जादूगरनी काली बिल्ली की खोपड़ी में दवाइयां तैयार करते थे। इससे लोग काली बिल्ली को बुरा समझने लगे। इस प्रकार सदियों से यह अन्धविश्वास चला आ रहा है। वास्तविकता तो यह है कि कोई भी बिल्ली अशुभ नहीं है। यह एक पालतू जानवर है जिसे लोग पिछले 5000 वर्षों से घरों में रखते चले आ रहे हैं।

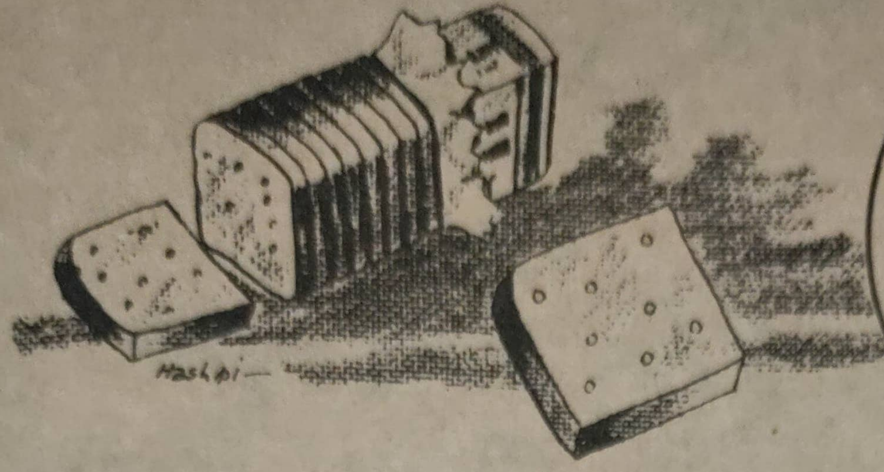


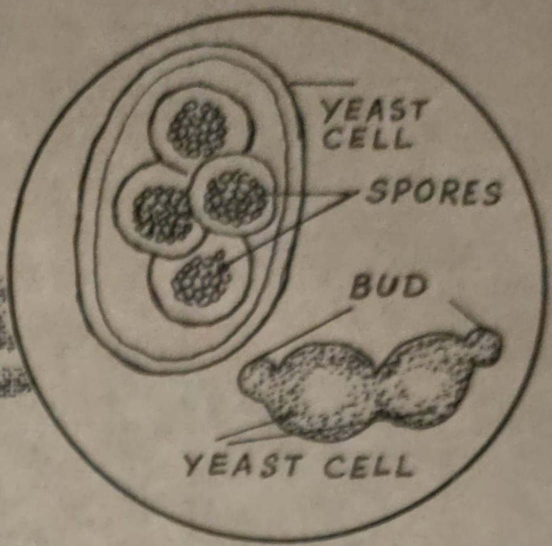
वस्तुएं रंग-बिरंगी क्यों दिखाई देती हैं ?

सेब या टमाटर का रंग लाल क्यों दिखता है, घास का रंग हरा क्यों दिखता है, ब्लैक बोर्ड का रंग काला क्यों है? आदि कुछ ऐसे प्रश्न हैं जो हमारे मस्तिष्क में उठते रहते हैं। वस्तुएं रंग बिरंगी क्यों दिखाई देती हैं इस बात को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है।

सूर्य का प्रकाश जो देखने में रंगहीन लगता है,वह सात रंगों का मिश्रण है। ये रंग हैं :— बैंगनी (Violet), जामुनी (Indigo), नीला (Blue), हरा (Green), पीला (Yellow), नारंगी (Orange) और लाल (Red)। इन्द्रधनुष में जो रंग दिखाई देते हैं वही रंग सूर्य के प्रकाश में भी हैं। सूर्य के प्रकाश के इन रंगों को प्रिज्म की सहायता से अलग-अलग किया जा सकता है।

किसी वस्तु का रंग इस बात पर निर्भर करता है कि उस वस्तु से सूर्य के प्रकाश का कौन सा रंग परावर्तित होकर हमारी आंखों तक पहुंच रहा है। उदाहरण के लिए सेब या टमाटर का रंग लाल इसलिए दिखता है कि इनके द्वारा सूर्य के प्रकाश में से लाल रंग परावर्तित कर दिया जाता है और शेष रंग सोख लिए जाते हैं। इसी प्रकार घास हरे रंग को परावर्तित कर देती है और शेष रंगों को अवशोषित कर लेती है। किसी वस्तु का सफेद दिखाई देना यह बताता है कि वह वस्तु प्रकाश के सभी रंगों को परावर्तित कर देती है। कोई कमीज़ सफेद इसलिए दिखती है कि वह सूर्य के प्रकाश के सभी रंगों को परावर्तित कर देती है। यदि हम सफेद कमीज पर लाल प्रकाश डालें तो लाल दिखाई देने लगेगी और हरा प्रकाश डालें तो हरी दिखाई देने लगेगी क्योंकि यह लाल और हरे रंगों को परावर्तित करती है। इस पर जिस भी रंग का प्रकाश पड़ेगा यह उसी रंग की दिखाई देने लगेगी। जब कोई वस्तु सूर्य के प्रकाश के सभी रंगों को अवशोषित कर लेती है तो उसका रंग काला दिखाई देता है। ब्लैक बोर्ड इसलिए काला दिखता है कि वह सभी रंगों को अवशोषित कर लेता है और कोई भी रंग परावर्तित नहीं करता है।



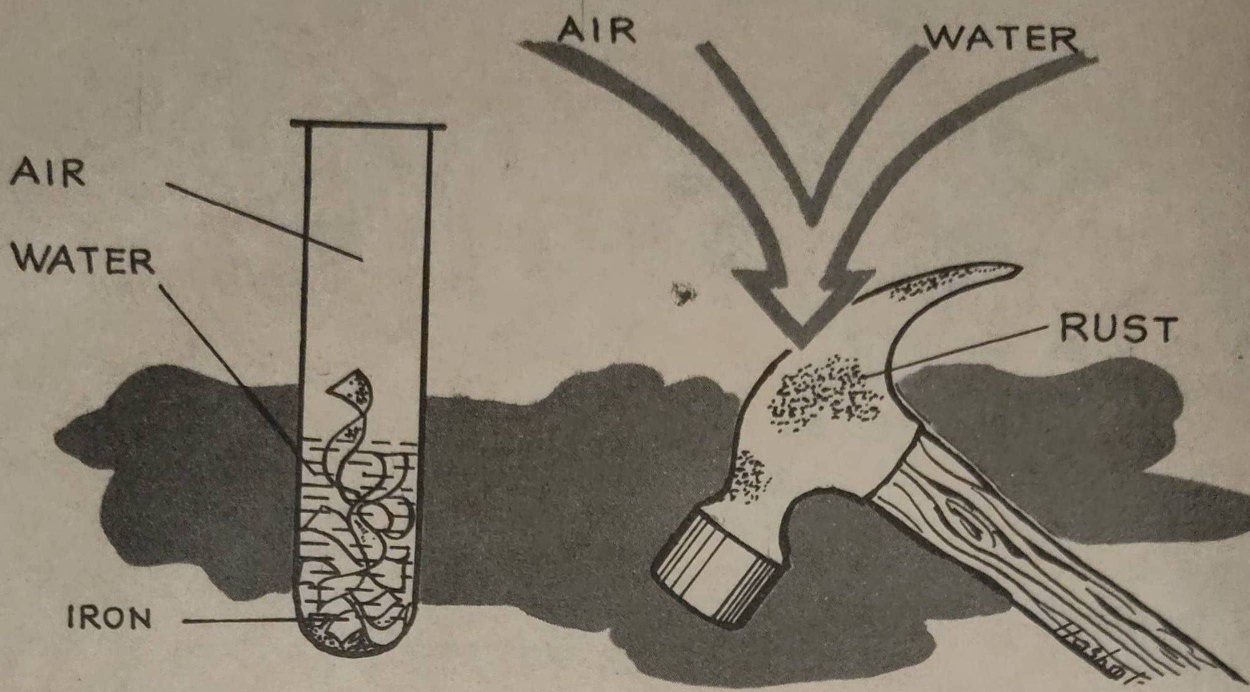


डबलरोटी में छेद क्यों होते हैं?

संसार के लगभग सभी देशों में डबलरोटी को एक प्रमुख खाद्य पदार्थ के रूप में इस्तेमाल किया जाता है। अलग-अलग देशों में डबलरोटी अलग-अलग पदार्थों से बनाई जाती है। अधिकतर डबलरोटी गेहूं के आटे या मैदे से बनाई जाती है। किन्तु कुछ स्थानों पर यह चावल, आलू, मटर, जौ आदि के आटे से भी बनाई जाती है।

लिखित प्रमाणों के अनुसार डबलरोटी बनाने की शुरुआत ईसा से लगभग 3000 वर्ष पूर्व मिस्र में हुई थी। खमीर (Yeast) का आविष्कार भी वहीं हुआ था। आजकल डबलरोटी के निर्माण में गेहूं से बनी मैदा को पानी के साथ गूंध लिया जाता है। इसमें थोड़ा सा खमीर मिला देते हैं। खमीर एक प्रकार का फफूंद (Fungus) होता है। मैदा की गर्मी और नमी के कारण यह बड़ी तेजी से बढ़ता है। इसके बढ़ने में कुछ गैस पैदा होती है और इसके बुलबुलों के कारण गुंधी हुई मैदा का आयतन भी बढ़ जाता है। जब इसे गर्म भट्ठियों में सेंका जाता है तो ये गैस के बुलबुले फूट-फूट कर डबलरोटी में छोटे-छोटे छेद पैदा कर देते हैं। इसी खमीर के कारण डबलरोटी में गंध और स्वाद पैदा हो जाता है। इन छेदों को किसी भी डबलरोटी के टुकड़ों में देखा जा सकता है।

केक में भी छोटे-छोटे छेद होते हैं, लेकिन ये छेद खमीर के कारण नहीं होते बल्कि बेकिंग सोडा की वजह से होते हैं। केक में टारटेरिक ऐसिड और सोडियम बाइकार्बोनेट का मिश्रण मिलाते हैं जिसे बेकिंग सोडा कहते हैं। जब इन दोनों को मिलाकर आटे के साथ गीला करके पकाया जाता है तो कार्बनडाइआक्साइड गैस निकलती है। इसी गैस के बुलबुलों के टूटने से केक में छोटे-छोटे छेद हो जाते हैं।



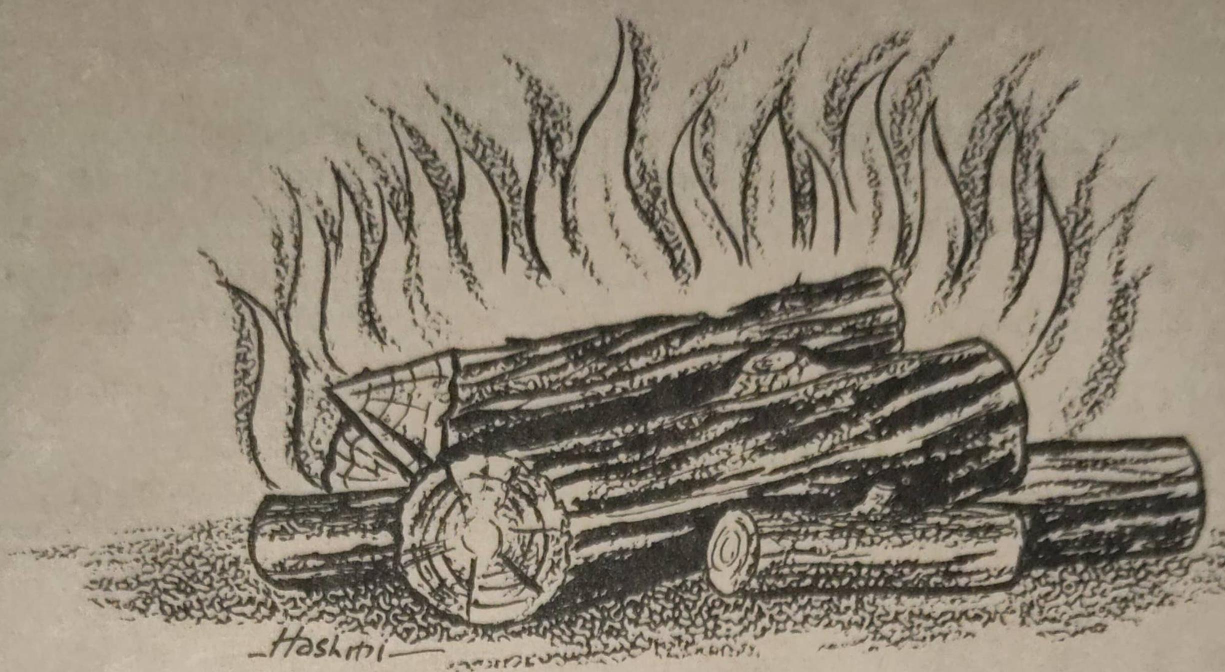
लोहे पर जंग कैसे लगता है ?

लोहे के चाकू, हथौड़े, पेंचकस या किसी अन्य औजार को किसी नमी वाले स्थान में कुछ दिन रख दिया जाये तो इन चीजों पर क़त्थई (Brown) रंग की एक परत सी जम जाती है। इसी को जंग लगना कहते हैं। क्या तुम जानते हो कि जंग क्या है और यह लोहे पर किस प्रकार लगता है ?

जंग वास्तव में लोहे का आक्साइड (Oxide of iron) है। जब लोहे के परमाणु आक्सीजन से मिलते यानी संयोग (Combine) करते हैं तो लोहे का आक्साइड बनता है। लोहे के परमाणुओं का आक्सीजन से मिलना आक्सीकरण (Oxidation) की क्रिया कहलाती है। लोहे पर जंग लगने के लिए आक्सीजन और नमी का होना अत्यंत आवश्यक है। सूखे स्थान पर लोहा आक्सीजन से संयोग नहीं करता। नमी और आक्सीजन की उपस्थिति में ही लोहे के परमाणु धीरे-धीरे आक्सीजन से मिलकर लोहे का आक्साइड बनाते रहते हैं और जंग लगने की क्रिया जारी रहती है।

जब लोहे की किसी वस्तु पर जंग लगना शुरू हो जाता है तो धीरे-धीरे यह वस्तु की सारी सतह पर फैल जाता है। जंग पानी को सोखता है और यह पानी उस वस्तु के दूसरे हिस्सों के परमाणुओं को आक्साइड बनने में मदद करता है।

जंग लगने को रोकना वैज्ञानिकों के लिए एक बहुत बड़ी समस्या रही है क्योंकि लोहे से बनी मशीनें, रेलगाड़ियाँ, मोटर, साइकिल, जहाज आदि हजारों चीजें जंग लगने के कारण जल्दी ही खराब हो जाती हैं। लोहे पर जंग लगने को पेन्ट (Paint) या किसी प्लास्टिक की पतली परत चढ़ा कर कुछ हद तक रोका जा सकता है। पेन्ट या प्लास्टिक की पतली परत के कारण लोहे के परमाणु पानी के संपर्क में नहीं आ पाते, इसलिए आक्सीजन लोहे से संयोग नहीं कर पाती और जंग नहीं लग पाता।



आग क्या है ?

गुफाओं में रहने वाले आदि मानव को जब आग का ज्ञान हुआ और उसने इसे इस्तेमाल करना शुरू किया तो उसने देखा कि यह उसके लिये एक प्रकार का वरदान थी। शुरू-शुरू में मनुष्य आग से डरता था, लेकिन बाद में उसने आग की पूजा करनी शुरू की। आज भी आग हमारे जीवन के लिए अत्यन्त आवश्यक है। इसी से हमें गर्मी मिलती है, इसी से हमारा भोजन पकता है और अनेकों ईंधनों को जलाने से ही हमारी मशीनें चलती हैं। क्या तुम जानते हो आग क्या है, चीजें क्यों जलती हैं और जलने से गर्मी क्यों पैदा होती है?

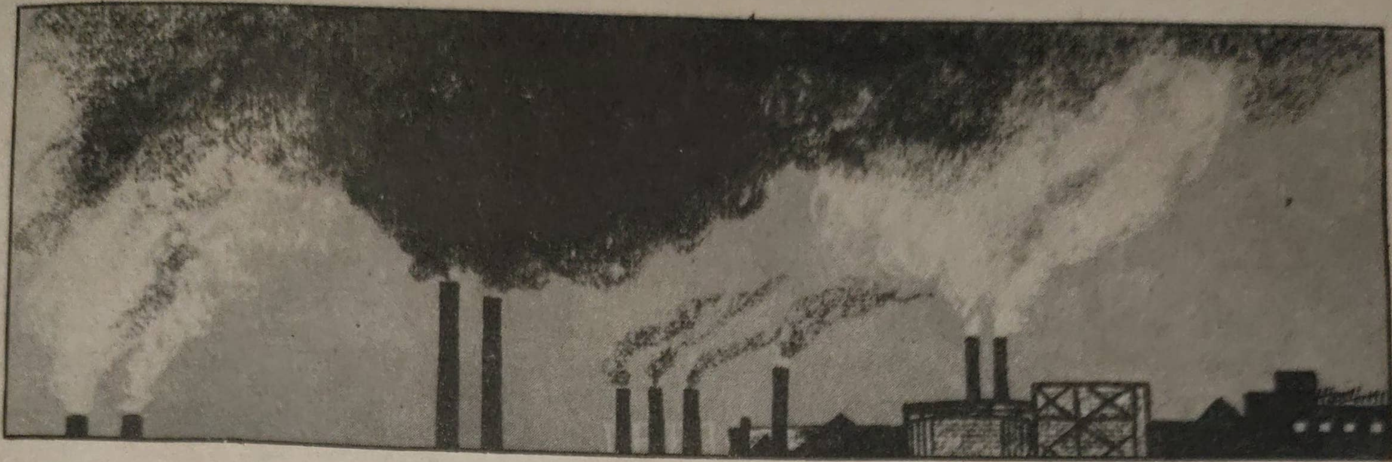
18वीं सदी के अंत तक इन प्रश्नों का कोई उत्तर नहीं था, लेकिन आज का विज्ञान इन सभी प्रश्नों के उत्तर देने में समर्थ है। आग की प्रकृति को समझने के क्षेत्र में फ्रांस के रसायनशास्त्री ऐन्तोइने लैवोसिये (Antoine Lavoiser) का काम उल्लेखनीय है।

आग आक्सीजन और ईंधन के बीच में होने वाली एक ऐसी रासायनिक क्रिया का परिणाम है, जो हमें ज्वाला या लौ के रूप में दिखाई देती है। आग पैदा होने वाली किसी भी क्रिया में दो पदार्थों के संयोग (Combination) से एक या एक से अधिक नए पदार्थ बनते हैं। लकड़ी, कोयला, पैट्रोल, मिट्टी का तेल आदि सभी सामान्य ईंधनों में मुख्य रूप से कार्बन और हाइड्रोजन होते हैं। जब ये पदार्थ जलते हैं तो आक्सीजन से संयोग करके कार्बनडाइआक्साइड और पानी बनाते हैं। ज्वाला में कार्बन के चमकते कण और धूल के कण जो आग की गर्मी से लाल हो जाते हैं,हमें दिखाई देते हैं। अब प्रश्न उठता है कि चीजें जलती क्यों हैं? जलने के लिए ऊष्मा की आवश्यकता होती है। किसी भी ईंधन के जलने के लिए यह जरूरी है कि उसे इसके ज्वलनांक (Ignition Point) तक गर्म किया जाए। जैसे ही यह स्थिति पहुंचती है ईंधन जलना शुरू हो जाता है। इस क्रिया में पैदा हुई ऊष्मा जलने की इस क्रिया को ईंधन के समाप्त होने तक जारी रखती है।

जलने की क्रिया में गर्मी क्यों पैदा होती है? आक्सीजन के अणुओं द्वारा ईंधन के अणु तोड़ दिए जाते है। इन टूटे हुए अणुओं से आक्सीजन संयोग करती है और संयोग करने से ऊर्जा पैदा होती है, जो हमें ऊष्मा के रूप में मिलती है।

जलना या दहन (Combustion) दो प्रकार का होता है। एक तेज दहन और दूसरा मन्द दहन। तेज दहन में ऊष्मा और प्रकाश दोनों ही पैदा होते हैं। ईंधनों का जलना तेज दहन का उदाहरण है। मन्द दहन में आक्सीकरण की क्रिया धीरे-धीरे होती है। इसमें जितनी ऊष्मा पैदा होती है उतनी ही वातावरण में जाती रहती है। इस दहन में ज्वाला पैदा नहीं होती। इस प्रकार की मन्द दहन की क्रियाएं हमारे शरीर में भोजन के आक्सीकरण में होती रहती हैं। इन क्रियाओं में पैदा हुई ऊर्जा से हमारे शरीर को गर्मी प्राप्त होती है।

प्रयोगों से यह देखा गया है कि किसी पदार्थ के जलने के बाद उसका वजन बढ़ जाता हैं, क्योंकि जलने की क्रिया में आक्सीजन संयोग कर जाती है। यद्यपि देखने में हमें लगता है कि जलने के बाद पदार्थ समाप्त हो गया है, लेकिन ऐसा नहीं होता। यदि राख, गैसें, धुआं, आदि सभी का वजन लें तो इनका कुल भार जलने वाले पदार्थ से अधिक होगा।



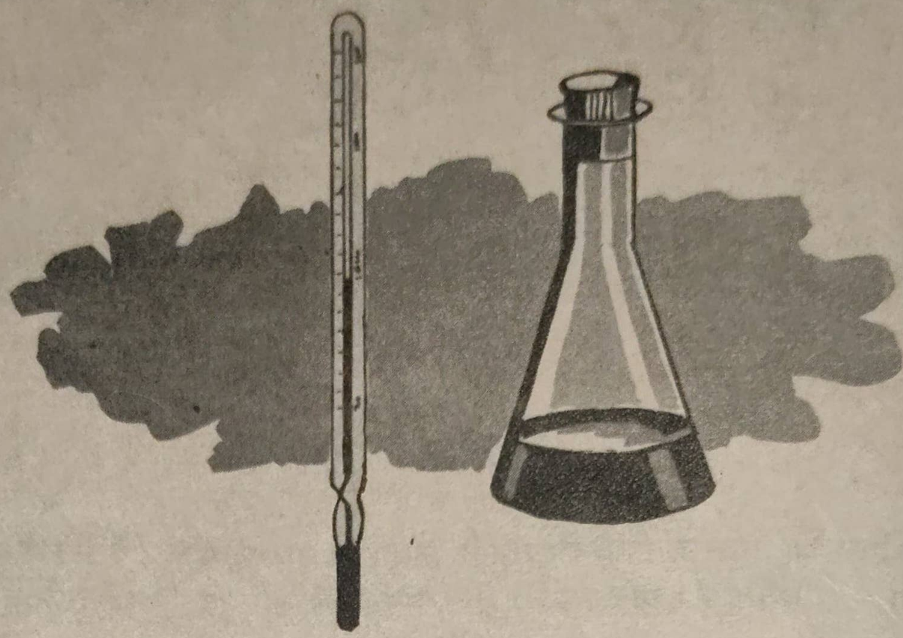
धुआं क्या है ?

जब लकड़ी, कोयला या उपले जलते हैं तो धुआं निकलता है। वास्तव में कुछ ईंधनों के पूरी तरह से न जलने के कारण ही धुआं बनता है। यदि ईंधन पूरी तरह से जल जाए तो धुआं पैदा नहीं होगा।

अधिकतर ईंधनों में कार्बन, हाइड्रोजन, आक्सीजन,नाइट्रोजन और थोड़ी मात्रा में गंधक होता है। यदि इन ईंधनों का पूर्ण दहन हो जाए तो हमें जलने के फलस्वरूप कार्बनडाइआक्साइड, जलवाष्प, और नाइट्रोजन प्राप्त होंगे। सल्फर के जलने से कुछ मात्रा में सल्फर डाइआक्साइड गैस भी निकलती है। ईंधनों के पूरी तरह जलने के लिए बहुत अधिक आक्सीजन की आवश्यकता होती है क्योंकि जलना भी आक्सीकरण (Oxidation) की ही क्रिया है जो आक्सीजन द्वारा पूरी होती है। जलने के समय आक्सीजन की मात्रा की कमी के कारण ईंधन पूरी तरह नहीं जल पाते और ईंधनों के अधूरे जलने के कारण ही धुआं निकलता है उसमें मुख्य रूप से कार्बनडाइआक्साइड और कार्बन के कण होते हैं। यदि धुएं में पदार्थ के अधजले कणों की संख्या अधिक होती है तो इसका रंग गहरा भूरा या काला हो जाता है। कार्बन के सूक्ष्म कण चिमनियों की दीवारों पर जमा होते रहते हैं। इन्हें कालिख या काजल कहते हैं।

धुएं से हमें बहुत सी हानियां हैं। इससे स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है। दीवारों पर कालापन आ जाता है। शहरों में अधिक धुएं के कारण वायुप्रदूषण हो जाता है। यदि बड़े-बड़े शहरों में हवा धुएं को इधर-उधर न फैलाए तो शायद रोज ही कोहरे का वातावरण फैला रहे। धुएं के प्रभाव से फेफड़े और हृदय-सम्बन्धी बहुत से रोग पैदा हो जाते हैं। फैक्टरियों की चिमनियों से निकलने वाले धुएं को समाप्त करने के लिए आज वैज्ञानिक बहुत से तरीकों को प्रयोग में ला रहे हैं।

कुछ कामों में धुआं हमारे लिए उपयोगी भी है। सेब के बगीचों को पाले से बचाने के लिए धुआं दिया जाता है। युद्धकाल में फौजों को दुश्मनों की दृष्टि से बचाने के लिए भी धुआं हमारी मदद करता है। धुएं के कण वर्षा की बूँदों को बनाने में भी सहायता करते हैं।

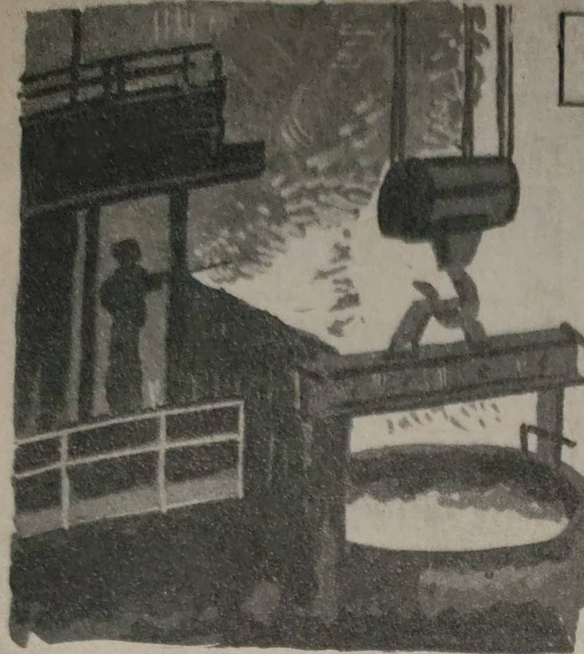


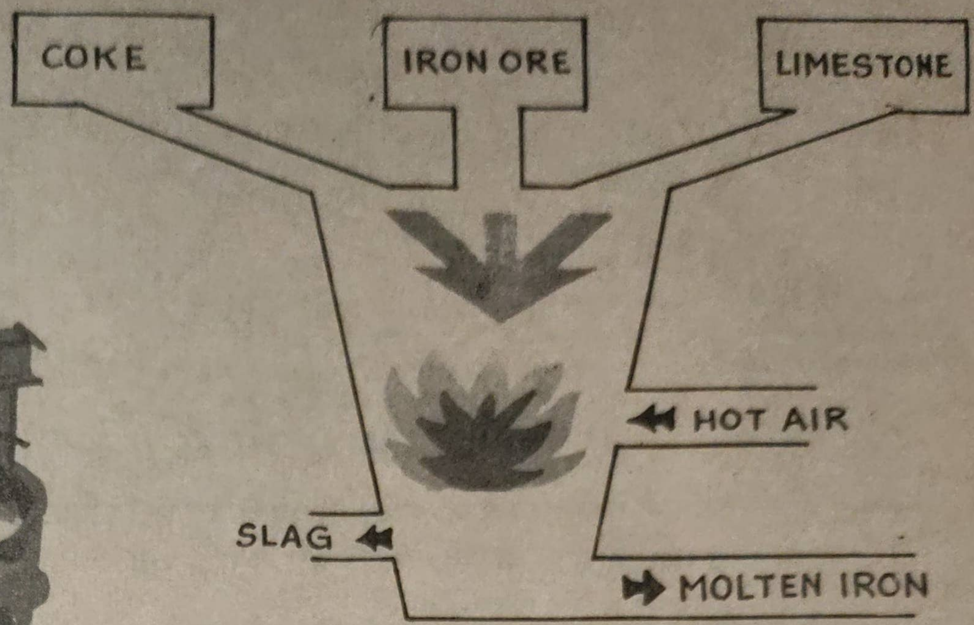
क्या कोई धातु तरल भी होती है ?

साधारण तापमान पर सभी धातुएं ठोस अवस्था में मिलती हैं, लेकिन पारा (Mercury) एक ऐसी धातु है जो द्रव अवस्था में मिलती है। इसे क्विक सिलवर (Quick Silver) के नाम से भी पुकारते हैं। धातुओं के कुछ विशेष गुण होते हैं, वे सभी गुण पारे में भी मौजूद हैं। यह ऊष्मा और विद्युत का अच्छा चालक है। यह –39°C तापमान पर ठोस अवस्था में आ जाता है और 359°C पर उबलने लगता है। कांच के बर्तन में रखने पर यह उसकी दीवारों से पानी की तरह चिपकता नहीं है। यह चांदी की तरह एक चमकदार धातु है। इन सभी गुणों के कारण पारा हमारे लिए बहुत ही उपयोगी है।

इसे तापमापियों (Thermometers) और वायुदाबमापियों (Barometers) में प्रयोग किया जाता है। यद्यपि पारा एक ज़हरीली धातु है फिर भी इसे बहुत सी दवाओं के निर्माण में इस्तेमाल किया जाता है। इससे बहुत सी कीटाणु नाशक औषधियाँ भी बनाई जाती हैं। प्रतिवर्ष संसार के कुल उत्पादन का एक तिहाई भाग पारा औषधि-निर्माण में इस्तेमाल किया जाता है।

पारा प्रकृति में संयुक्त अवस्था में मिलता है। इसका प्रमुख अयस्क सिनेबार (Cinnabar) है। सिनेबार आमतौर पर चट्टानों से प्राप्त होता है। इसका रंग लाल होता है। प्राचीन काल में सिनेबार का प्रयोग सूखे लाल रंग (Pigments) बनाने में होता था। बहुत पहले जब कीमियागर (Alchemist) कृत्रिम तरीकों से सोना बनाने का प्रयास कर रहे थे तब भी वे पारे को अपने हर परीक्षण में इस्तेमाल करते थे। आजकल पारे का इस्तेमाल बहुत से पेन्ट (Paints), कास्टिक सोडा (Caustic Soda) के निर्माण और विद्युत उपकरणों में होता है।





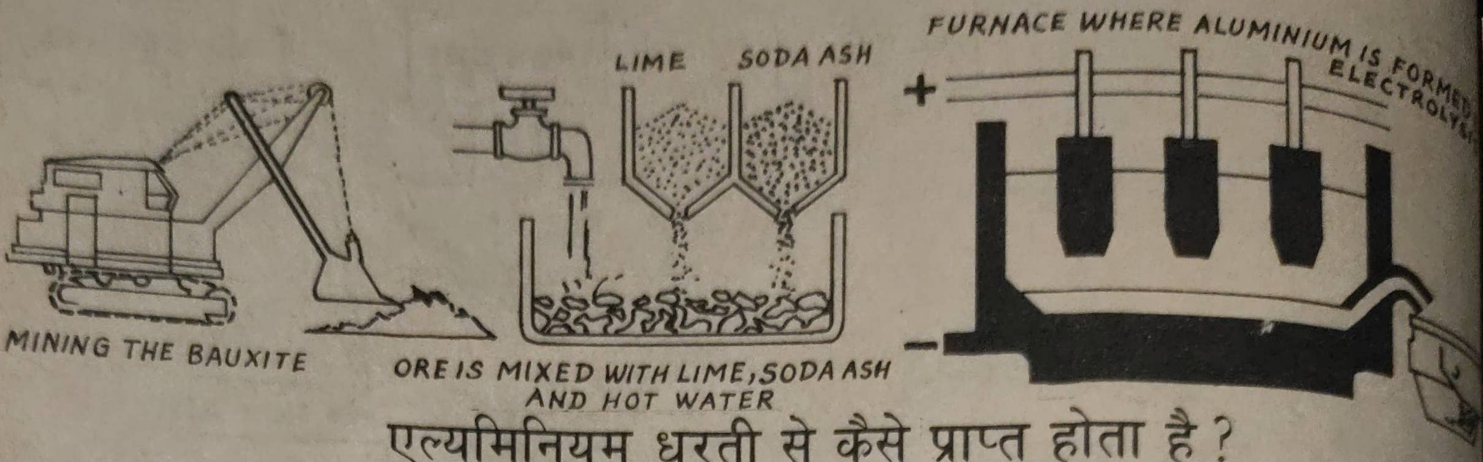
जमीन से लोहा कैसे प्राप्त होता है ?

लोहा पृथ्वी पर सब जगह पाया जाता है। यह केवल खनिजों (Minerals) में ही नहीं, बल्कि जानवरों और पेड़-पौधों में भी होता है। यहां तक कि हमारे शरीर में भी लोहे का कुछ अंश होता है।

पृथ्वी की पपड़ी का 5% भाग लोहा है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि पृथ्वी के केन्द्र में बहुत सारा लोहा है। पृथ्वी की पपड़ी में लोहा दूसरे पदार्थों से मिले-जुले रूप (Combined state)में मिलता है। मैगनेटाइट (Magnetite), हेमाटाइट (Hematite), लिमोनाइट (Lemonite), साइडेराइट (Siderite) और पाइराइट्स (Pyrites) लोहे के मुख्य खनिज हैं। भारत में लोहे के अयस्क (Ore) मुख्य रूप से बिहार और उड़ीसा में मिलते हैं। इन खनिजों से लोहा प्राप्त किया जाता है। इन खनिजों को बारीक पीसकर, कोयला और चूना पत्थर के साथ मिला कर एक भट्टी में गर्म किया जाता है। पिघला हुआ लोहा भट्टी की तली से पानी की तरह बाहर आता है जो ठंडा होने पर ठोस हो जाता है। इस प्रकार से प्राप्न होने वाले लोहे को पिग आयरन (Pig Iron) कहते हैं। इसमें 5% कार्बन होता है। इसी लोहे में कार्बन की मात्रा को .2 से 2 प्रतिशत तक कम करके स्टील में बदल लिया जाता है। स्टील हमारे लिए बहुत ही उपयोगी है।

आज संसार में लोहे का इस्तेमाल सबसे अधिक होता है। संसार का कोई उद्योग ऐसा नहीं है जिसमें लोहा किसी न किसी रूप में इस्तेमाल न होता हो। हमारे दिन-प्रतिदिन की बहुत सी वस्तुएं जैसे चाकू, छुरी, कैंची, ताले, चिमटा, तवा, बाल्टी आदि सभी लोहे से बनाए जाते हैं। जलयान, वायुयान, रेलगाड़ी, मोटरगाड़ी, कार, स्कूटर, रिक्शा, साइकिल आदि भी लोहे से बनाए जाते हैं। लोहा इमारतों के निर्माण में बहुत अधिक इस्तेमाल हो रहा है। इसे पुलों के निर्माण में भी प्रयोग किया जाता है। इससे अनेकों प्रकार के पाइप, जैनरेटर, नट, बोल्ट आदि सभी चीजें बनाई जाती हैं।

स्टेनलेस स्टील आजकल बहुत ही उपयोगी सिद्ध हो रहा है। इस से बहुत तरह के बर्तन बनाए जाते हैं। स्टेनलेस स्टील की कई किस्में हैं। अधिकतर प्रयोग में आने वाले स्टेनलेस स्टील में 18% क्रोमियम (Chromium), 8% निकेल (Nickel) और शेष स्टील होता है। भारत में निकेल कम मात्रा में मिलता है इसलिए यहां बनने वाले स्टेनलेस स्टील में निकेल के स्थान पर मैंगनीज(Manganese) मिलाया जाता है। स्टेनलेस स्टील पर जंग (Rust) नहीं लगता। इस पर हल्के अम्लों और क्षारों (Acids and alkalies) का भी प्रभाव नहीं होता। इससे ब्लेड और घड़ियों के केस भी बनाये जाते हैं।



एल्युमिनियम धरती से कैसे प्राप्त होता है ?

एल्युमिनियम एक ऐसी धातु है जो पृथ्वी की पपड़ी में 7 से 8 प्रतिशत तक मिलती है। अधिकता से मिलने वाले तत्वों में इसका तीसरा स्थान है। पहले और दूसरे स्थान पर क्रमशः आक्सीजन और सिलिकान आते हैं।

यह स्वतन्त्र अवस्था में नहीं मिलता बल्कि संयुक्त अवस्था में मिलता है। बौक्साइट (Bauxite) इस धातु का मुख्य अयस्क (Ore) है। इस अयस्क में 20 से 30 प्रतिशत तक एल्युमिनियम होता है। एल्युमिनियम का यह यौगिक मुख्य रूप से अमरीका, घाना, भारत, फ्रांस, युगोस्लाविया आदि देशों में मिलता है।

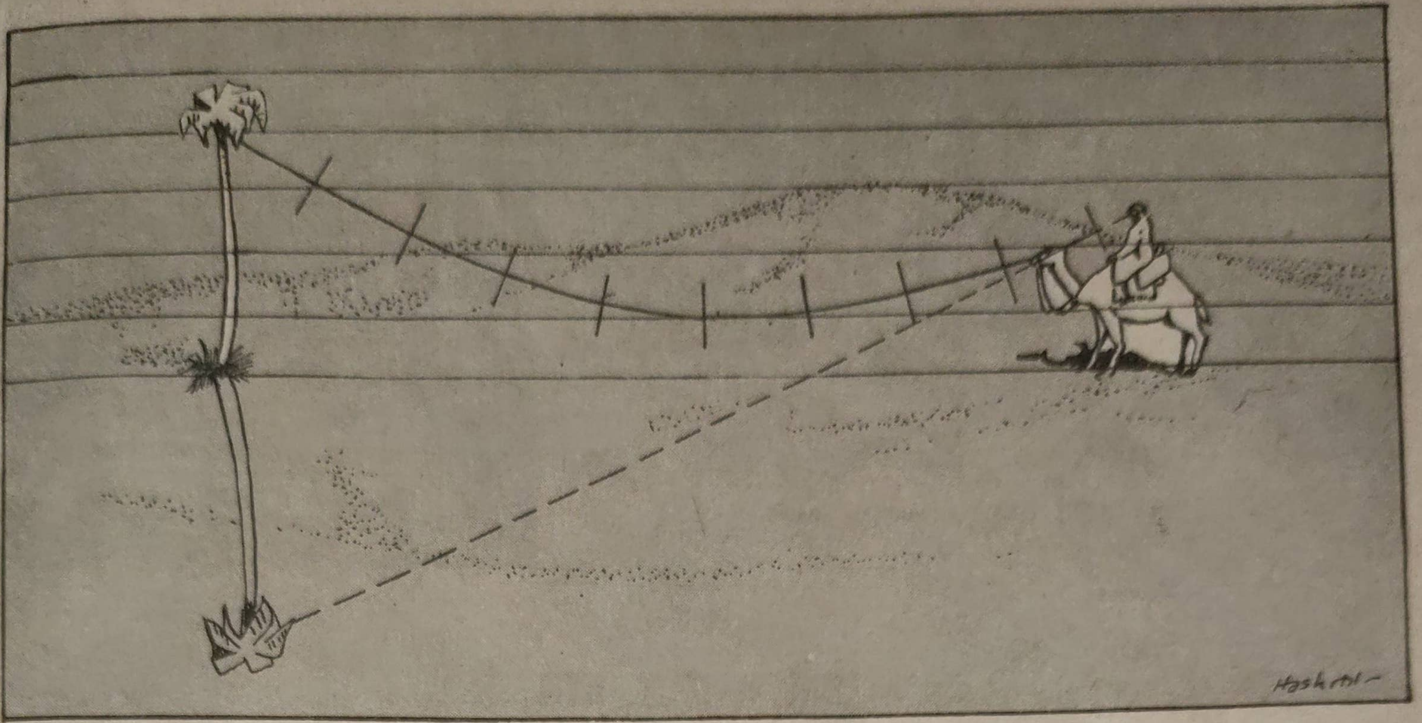
एल्युमिनियम की खानें होती हैं। इन खानों से बौक्साइट प्राप्त किया जाता है। बौक्साइट से इस धातु को प्राप्त करने के कई तरीके हैं। एक तरीके में इसे इलेक्ट्रोलाइसिस द्वारा प्राप्त किया जाता है। बौक्साइट को पीसकर बारीक कर लिया जाता है। इस पाउडर को गर्म कास्टिक सोडा के साथ मिलाया जाता है। ऐसा करने से सोडियम एल्युमिनेट और कास्टिक सोडा का विलयन प्राप्त हो जाता है। इस विलयन से शुष्क एल्युमिना प्राप्त कर लिया जाता है। एल्युमिना को पिघले हुये क्रोयोलाइट में घोलकर लगभग 1000° सेल्सियस पर इलेक्ट्रोलाइसिस की जाती है। इलेक्ट्रोलाइसिस के लिए धातु का बहुत बड़ा टैन्क होता है। इसके तल में कार्बन का कैथोड और ऊपर से कार्बन की छड़ों को एनोड़ के रूप में प्रयोग में लेकर विद्युत धारा गुजारी जाती है जिससे एल्युमिनियम प्राप्त हो जाता है।

एल्युमिनियम एक मज़बूत, मुलायम, हल्की और चाँदी जैसे रंग की बहुत ही उपयोगी धातु है। इसके तार खींचे जा सकते हैं और चादरें बनाई जा सकती हैं। इसके कागज जैसे पतले वर्क (Leaves) बनाये जा सकते हैं। इस पर वायु और नमी का अधिक प्रभाव नहीं होता है।

हल्केपन और मजबूती के गुण के कारण इससे वायुयान, जलयान, रेल, मोटर आदि के बहुत से हिस्सों का निर्माण किया जाता है। इससे बहुत सी सजावट की वस्तुएं भी बनाई जाती हैं। यह ऊष्मा की सुचालक (Good Conductor) है इसलिये इससे भोजन पकाने के बहुत से बर्तन बनाये जाते हैं। यह विद्युत की भी सुचालक है इसलिये इसे बिजली के तार बनाने में भी प्रयोग किया जाता है। एल्युमिनियम का पाउडर बहुत से पेंट बनाने के काम आता है। धातु क्षय (Corrosion) रोकने के लिये इन पेंटों को प्रयोग में लाया जाता है। कई देशों में इस धातु के सिक्के भी बनाये जाते हैं। हमारे देश में भी एल्युमिनियम के सिक्कों का प्रचलन है।

ड्यूरालूमिन (Duralumin) इस धातु की एक मुख्य मिश्र धातु (Alloy) है। इसमें 4% तांबा और कुछ मैंगनीज, मैगनीशियम और सिलिकान होते हैं। इसका उपयोग अन्तरिक्षयानों और राकेटों के कई कलपुर्जों के निर्माण में होता है।

इस प्रकार एल्युमिनियम संसार की बहुत ही उपयोगी धातुओं की श्रेणी में आती है। मशीन-निर्माण का शायद ही कोई ऐसा क्षेत्र होगा जिसमें इस धातु को प्रयोग में न लाया जा रहा हो।

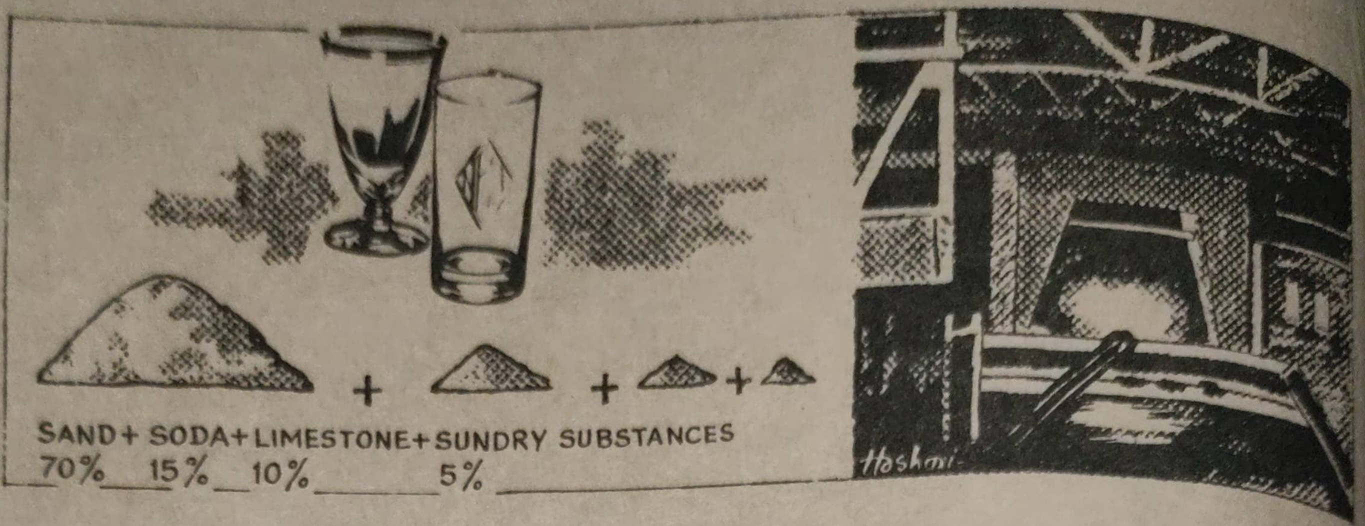


मरीचिका या मृग-तृष्णा क्या है?

गर्मी के दिनों में रेगिस्तान में यात्रियों को ऐसा आभास होता है कि कुछ दूरी पर पानी भरा है, लेकिन उस स्थान पर पहुंचने पर पानी का नामो-निशान नहीं होता। रेगिस्तान में हिरणों को भी किसी दूर के स्थान पर पानी होने का ऐसा ही आभास होता है, लेकिन जब हिरण उस स्थान पर दौड़ता हुआ पहुंचता है तो वहां उसे पानी नहीं मिलता पानी के इसी भ्रम में हिरण इधर-उधर भागता है, लेकिन पानी न होने के कारण वह भटक-भटक कर मर जाता है। कभी-कभी गर्मियों के दिनों में पक्की सड़क पर चलते हुए भी ऐसा लगता है कि सड़क के आगे कुछ दूरी पर पानी भरा है, लेकिन वास्तव में वहां पानी नहीं होता। यह केवल हमारी आँखों का भ्रम होता है। इस दृष्टिभ्रम को मरीचिका या मृगतृष्णा (Mirage) कहते हैं। क्या तुम जानते हो कि मरीचिका क्या है और क्यों होती है?

मरीचिका या मृगतृष्णा प्रकाश के पूर्ण आन्तरिक परावर्तन (Total Internal Reflection) के कारण होती है। गर्मियों के मौसम में रेगिस्तानों में धरती की सतह बहुत गर्म हो जाती है। इससे धरती की सतह के पास की वायु तो गर्म हो जाती है लेकिन ऊपर की वायु अधिक गर्म नहीं हो पाती। गर्म वायु ठंडी वायु की तुलना में हल्की होती है। इस प्रकार धरती की सतह के पास की वायु हल्की हो जाती है लेकिन सतह से कुछ ऊँचाई तक वायु भारी ही रहती है। विज्ञान के शब्दों में हल्की वायु का वर्तनांक (Refractive Index) भारी वायु से कम होता है। इस प्रकार कुछ ऊँचाई तक वायु का वर्तनांक बढ़ता जाता है।

ऐसे वातावरण में पेड़-पौधों से आने वाली प्रकाश की किरणें जब अधिक अपवर्तनांक से कम अपवर्तनांक की ओर जाती हैं तो अपने मार्ग से विचलित हो जाती हैं। इसे प्रकाश का अपवर्तन (refraction) कहते हैं। जैस-जैसे किरणें आगे बढ़ती हैं वैसे ही वैसे उनका वर्तन कोण (Angle of Refraction) बढ़ता जाता है। एक स्थिति ऐसी आती है जब वर्तन कोण 90° से बड़ा हो जाता है। ऐसी स्थिति में प्रकाश उसी माध्यम में पूरी तरह से परावर्तित हो जाता है। इसे हम प्रकाश का पूर्ण आन्तरिक परावर्तन (Total Internal Reflection) कहते हैं। इस परावर्तन के कारण पेड़-पौधों की परछाइयां उल्टी दिखने लगती हैं। वे ठीक ऐसे दिखती हैं जैसे पानी में बन रही हों। इससे देखने वाले को पानी का भ्रम हो जाता है। इसी को हम मरीचिका या मृगतृष्णा कहते हैं।



कांच कैसे बनाया जाता है ?

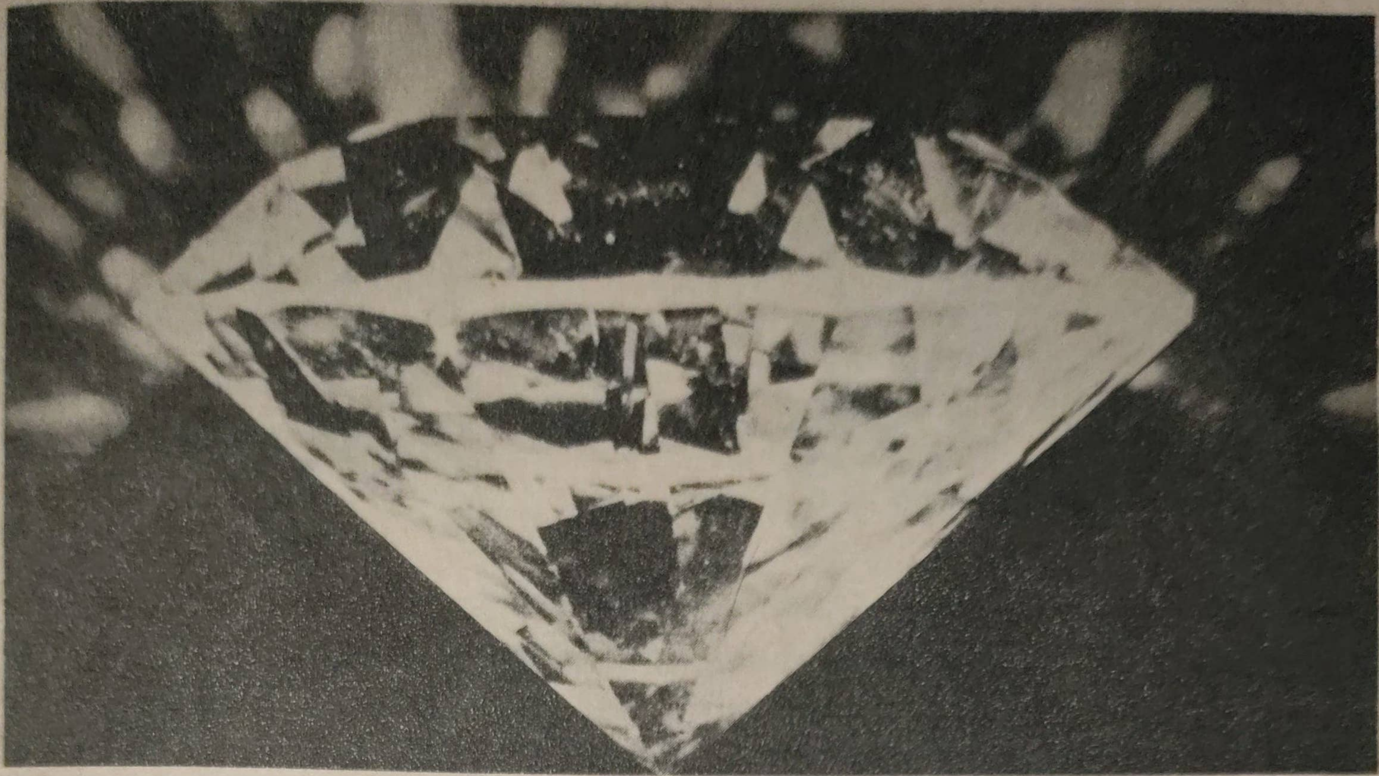
आज जीवन का शायद ही कोई ऐसा क्षेत्र होगा जिसमें कांच को किसी न किसी रूप में प्रयोग न किया जाता हो। मकानों की खिड़कियों में कांच की चादरें लगाई जाती हैं व रेल, मोटर, जहाज सभी की खिड़कियों में कांच का इस्तेमाल होता है। पानी पीने का गिलास, घर के सजावटी सामान, तरह-तरह की बोतलें, धूप और नजर के चश्मे, चेहरा देखने के शीशे, प्रयोगशालाओं में काम आने वाले फ्लास्क, बीकर, टेस्ट ट्यूब आदि लाखों चीजें कांच से बनाई जाती हैं। रोशनी पैदा करने वाले बल्ब, ट्यूब, थर्मस फ्लास्क भी कांच से ही बनाए जाते हैं। जिधर भी हम नजर दौड़ाते हैं उधर ही जीवन में काम आने वाली कांच से बनी कोई न कोई चीज दिखाई देती है। क्या तुम जानते हो कि यह उपयोगी पदार्थ कांच कैसे बनाया जाता है?

कांच के निर्माण की कला बहुत पुरानी है। यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि कांच बनाना मनुष्य ने कब सीखा। मिस्र में कांच से बने कुछ दाने (Bead) मिलें हैं जो ईसा से 2500 वर्ष पूर्व बनाए गए थे। बेबीलोनिया (Babylonia) में ईसा से 2600 वर्ष पूर्व बनाई गई एक नीले रंग की कांच की छड़ मिली है। इन सब तथ्यों से यह स्पष्ट हो जाता है कि कांच का निर्माण ईसा से लगभग 2600 वर्ष पूर्व लोगों को आता था।

कांच के निर्माण में मुख्य रूप से सिलिका (Silica), सोडियम कार्बोनेट और कैल्शियम कार्बोनेट का मिश्रण प्रयोग में लाया जाता है। इन पदार्थों को भली-भांति पीसकर मिला लिया जाता है और बड़ी-बड़ी भट्ठियों में पिघलाया जाता है। जब इन पदार्थों का मिश्रण पिघल कर एक हो जाता है तो इसे चादरों या छड़ों के रूप में ढाल लिया जाता है। इस प्रकार बना ठोस पदार्थ ही कांच होता है।

कांच की अनेकों किस्में हैं। अलग-अलग किस्म का कांच बनाने के लिए ऊपर वाले मिश्रण में कुछ दूसरे पदार्थ मिलाकर पिघलाया जाता है। आमतौर पर कांच निर्माण उद्योग में काम आने वाले दूसरे पदार्थों में मुख्य रूप से मैग्नीशियम आक्साइड, बोरिक आक्साइड, एल्यूमिनियम आक्साइड, जिन्क आक्साइड, लेड आक्साइड आदि हैं।

कांच को रंगीन बनाने के लिए तांबा, लोहा, सेलेनियम, क्रोमियम, कोबाल्ट आदि धातुओं के आक्साइड प्रयोग किए जाते हैं। इन पदार्थों को मिलाकर अलग-अलग रंग का कांच बनाया जाता है। उदाहरण के लिए कोबाल्ट के लवण मिलाने से नीले रंग का कांच बनता है। क्रोमियम या तांबे के यौगिकों से हरा रंग पैदा होता है और सेलेनियम से लाल रंग का कांच बनाया जाता है।



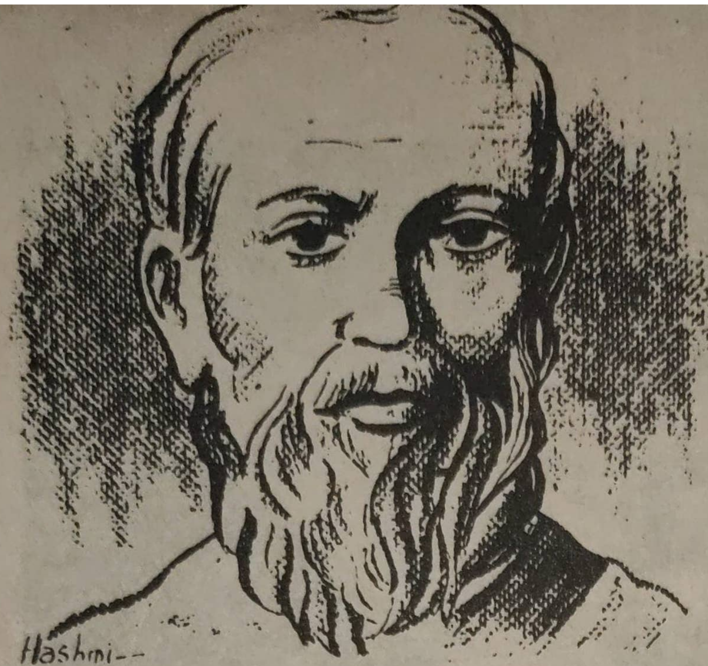
हीरा क्या है ?

हीरा एक बहुत ही कीमती वस्तु है। यह संसार के सभी पदार्थों की तुलना में सबसे अधिक सख्त (hard) होता है। यह इतना सख्त होता है कि इसे किसी दूसरी धातु से नहीं काटा जा सकता। हीरे को केवल हीरा ही काट सकता है। इसे काटने के लिए इसी का पाउडर प्रयोग में लाया जाता है। हीरा वास्तव में कार्बन का एक मणिभीय (Crystalline) रूप है जो खानों से प्राप्त होता है। यह लगभग 900° सेन्टीग्रेड तापमान पर धीरे-धीरे जलने लगता है और इसमें उपस्थित कार्बन वायुमंडल की आक्सीजन से मिलकर कार्बनडाइआक्साइड गैस में बदल जाता है। 1000° सेन्टीग्रेड तापमान पर जलकर यह ग्रेफाइट में बदल जाता है। इससे अधिक तापमान पर यह शीघ्रता से ग्रेफाइट में बदल जाता है।

हीरा ऊष्मा का सबसे अच्छा सुचालक है। जैसे ही इसके एक सिरे को गर्म करते हैं वैसे ही दूसरा सिरा गर्म हो जाता है। इसकी ऊष्मा-चालकता तांबे से भी पांच गुनी अधिक है, लेकिन यह बिजली का कुचालक है।

सन् 1955 तक हीरा केवल खानों से ही प्राप्त होता था। लेकिन इसके बाद हीरे का निर्माण कुछ कृत्रिम विधियों से भी होने लगा है। खानों से मिलने वाले हीरे को प्राकृतिक हीरा (Natural diamond) कहा जाता है और कृत्रिम तरीकों से बनाए गए हीरों को कृत्रिम हीरे (Artificial diamond) के नाम से पुकारा जाता है। प्राकृतिक रूप से मिलने वाला हीरा सबसे अधिक अफ्रीका में मिलता है। संसार के 95% हीरे यहीं से प्राप्त होते हैं। खानों से प्राप्त हीरों को विशेष आकृतियों में तराशा जाता है। इन तराशे हुए हीरों पर पॉलिश की जाती है। हीरे की पॉलिश सैकड़ों वर्षों तक खराब नहीं होती।

कृत्रिम विधि से हीरा सबसे पहले जेनरल इलेक्ट्रिक कम्पनी ने सन् 1955 में बनाया था। कृत्रिम विधियों में ग्रेफाइट से हीरा बनाया जाता है। ग्रेफाइट को बहुत ही उच्च दबाव पर लगभग 3000° सेन्टीग्रेड तक गर्म किया जाता है। ऐसा करने पर ग्रेफाइट हीरे में बदल जाता है। कृत्रिम तरीकों से बने हीरे प्राकृतिक हीरों से बहुत से गुणों में मिलते-जुलते हैं। इस तरीके से बने हीरों का इस्तेमाल आभूषण बनाने और उद्योगों में किया जाता है।



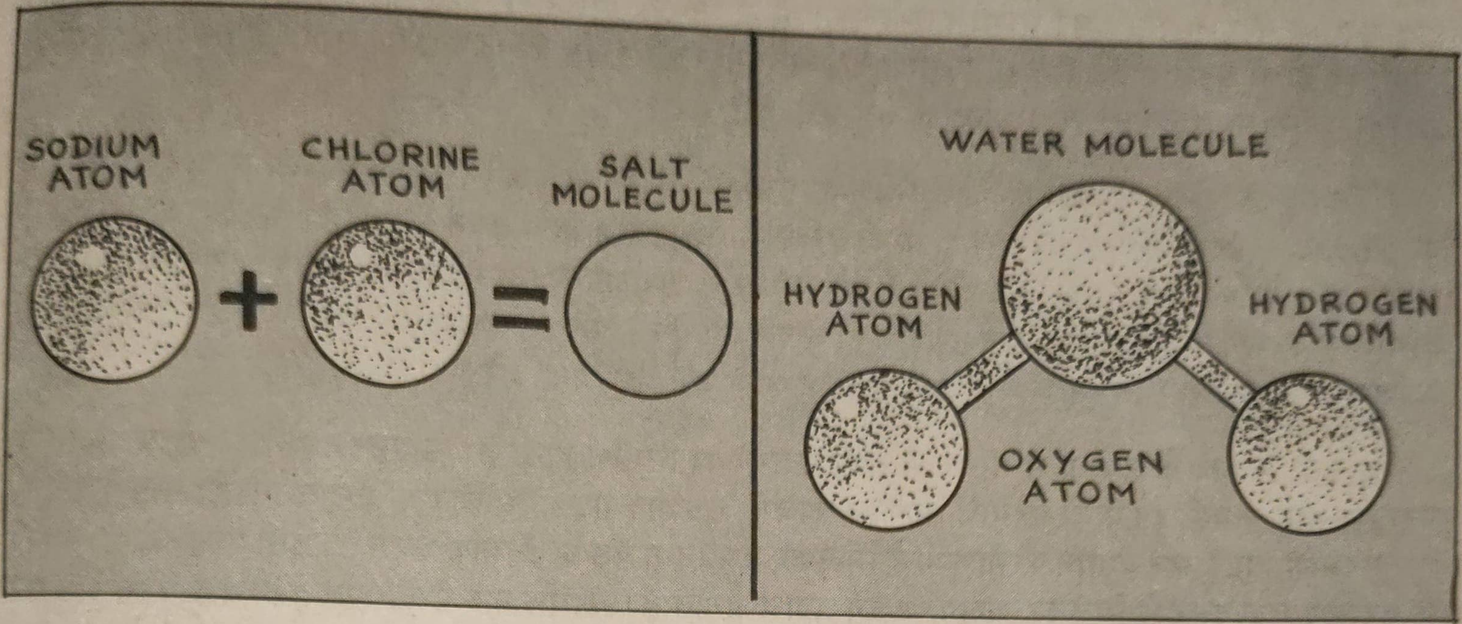
सुकरात कौन थे ?

सुकरात को संसार के महान दार्शनिकों में गिना जाता है। इनका जन्म ईसा से 470 वर्ष पूर्व यूनान के एथेन्स (Athens) शहर में हुआ था। इनके पिता सोफ्रोनिस्कस (Sophroniscus) एक पत्थर तराशने वाले (sculptor) व्यक्ति थे और मां फिनारेटे (Phaenarete) एक नर्स थीं। इनके प्रारंभिक जीवन के विषय में अधिक जानकारी नहीं हैं लेकिन युवावस्था के बारे में बताया जाता है कि इनकी ख्याति सारे शहरों में फैली हुई थी।

सुकरात देखने में बहुत ही भद्दे थे। इनकी चपटी नाक और उभरी आंखों से चेहरा बहुत ही बदसूरत दिखता था। लेकिन इनमें अपूर्व प्रतिभा थी। कोई भी व्यक्ति इनसे किसी भी विषय पर तर्क कर सकता था। एक बार किसी व्यक्ति ने अपने मित्र से पूछा कि क्या सुकरात जैसी अपूर्व प्रतिभा का कोई व्यक्ति है,तो उस मित्र ने कहा कि बुद्धिमत्ता (Wisdom) में उनकी बराबरी करने वाला दूसरा कोई व्यक्ति नहीं है। वह अकसर बाजार में खड़े होकर लोगों से 'जीवन के सही रास्तों' के विषय में तर्क किया करते थे। जब वे लोगों को भांति-भांति की चीजें खरीदते हुए देखते थे तो सोचा करते थे,"मैं कितनी चीजों के बिना रह सकता हूँ।"

सुकरात का विश्वास था कि मनुष्य सभी बुरे कार्य अपनी अज्ञानता के कारण ही करता है, यदि मनुष्य को यह पता चल जाए कि सही क्या है, तो वह कभी भी गलत काम नहीं करेगा। उनका कहना था कि गुणों की प्राप्ति ही ज्ञान है। कोई भी व्यक्ति जानकर बुरा नहीं करता है। उनका कहना था कि बुराई करने से बेहतर बुराई को सहन करना है। उन्होंने न्याय और प्रेम की सही परिभाषाएं लोगों को समझाईं और बताया कि अपनी आत्मा को अच्छे से अच्छा बनाने की कोशिश करनी चाहिए। वे कहते थे, अपने को जानने की कोशिश करो। सुकरात ने कोई पुस्तक नहीं लिखी। उनकी शिक्षाओं के विषय में अधिकतर जानकारी उनके शिष्य प्लेटो (Plato) से ही प्राप्त हुई है। उन्होंने अपनी शिक्षाओं से लोगों में एक आत्मविश्वास पैदा किया। उनके जीवन काल में ही उनके बहुत से अनुयायी हो गए थे।

एथेन्स के अधिकारी वर्ग के लोग सुकरात की प्रसिद्धि और शिक्षाओं को पसन्द नहीं करते थे। उन्होंने नाराज होकर उनपर दो अभियोग लगाये। पहला अभियोग यह था कि वे शहर के नवयुवकों को गलत रास्ते पर ले जा रहे हैं। दूसरा वे उन धार्मिक विचारों और देवी-देवताओं की अवहेलना करते हैं जिनकी शहर के लोग पूजा करते हैं। इन अभियोगों के फलस्वरूप उन्हें मृत्यु दण्ड दिया गया। एथेन्स में उन दिनों मृत्युदण्ड में फांसी नहीं दी जाती थी, बल्कि हैमलोक नामक विष पिलाया जाता था। कुछ दिन वे जेल में रहे। जिस दिन उन्हें मृत्युदण्ड के लिये हैमलोक विष का प्याला पीना था, उनके बहुत से अनुयायी उन्हें घेरे हुए थे। वे हंसते-हंसते विष का प्याला पी गये। जब वे विष पी रहे थे, तो उनके दोस्तों की आंखों में आंसू थे, परंतु उनके होठों पर हंसी थी।



कुछ ही तत्वों से लाखों पदार्थ कैसे बन जाते हैं?

प्रकृति में मिलनेवाले तत्वों की संख्या 92 है। यद्यपि वैज्ञानिकों ने अब तक 105 तत्वों का पता लगा लिया है, लेकिन 92 के बाद के 13 तत्व कृत्रिम विधियों द्वारा ही बनाए गए हैं। 92 तत्व ही ऐसे हैं जो स्थायी अवस्था (Stable state) में रह सकते हैं। शेष 13 तत्व स्थायी अवस्था में नहीं रह सकते। इन 92 तत्वों के परमाणु भी 92 प्रकार के हैं। लेकिन धरती पर हमें लाखों प्रकार के पदार्थ मिलते हैं। क्या तुम जानते हो ये सभी पदार्थ इन कुछ ही तत्वों से कैसे बनते हैं?

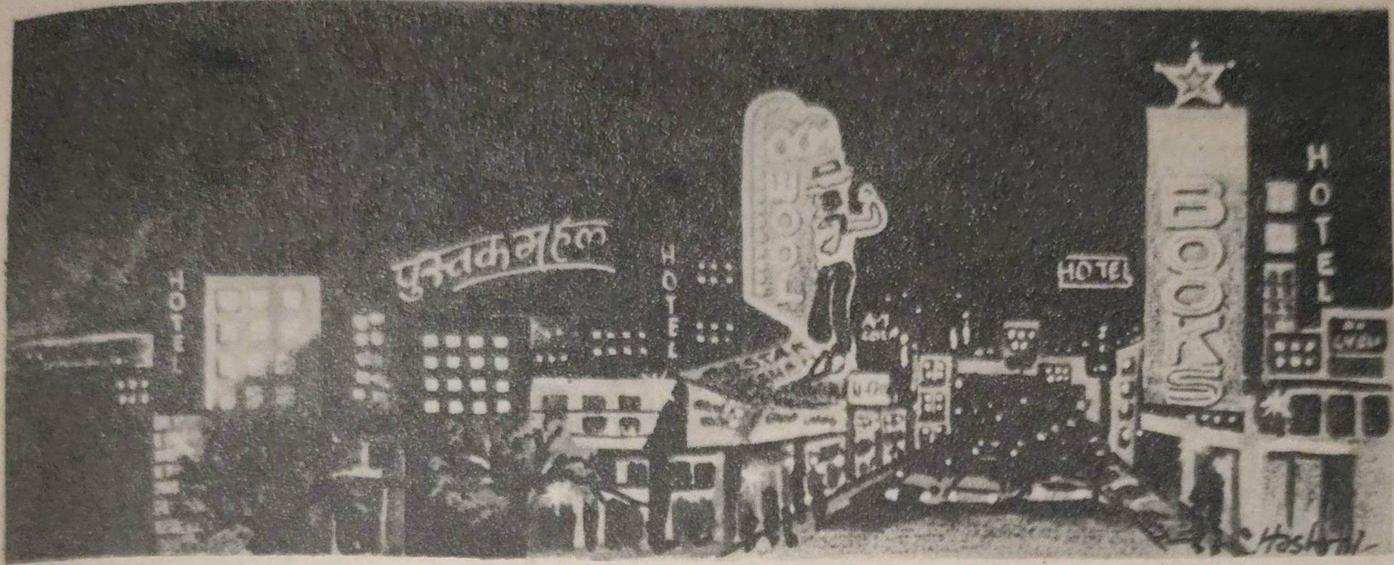
ब्रह्माण्ड में मिलने वाले सभी पदार्थों का निर्माण इन्हीं 92 प्रकार के परमाणुओं के द्वारा होता है। इन्हीं 92 प्रकार के परमाणुओं में से अलग-अलग परमाणु एक दूसरे से भिन्न-भिन्न अनुपातों में मिलकर असंख्य पदार्थों का निर्माण करते रहते हैं। यहां सभी तत्वों का नाम देना तो मुश्किल है लेकिन कुछ मुख्य-मुख्य तत्व इस प्रकार हैं। लोहा, सोना, चांदी, तांबा, एल्यूमिनियम, सोडियम, पोटाशियम आदि धातु तत्व हैं। इसी प्रकार आक्सीजन, नाइट्रोजन, क्लोरीन, कार्बन, सल्फर आदि अधातु तत्व हैं। ये सभी पदार्थ परमाणुओं से मिलकर बने हैं। एक पदार्थ के सभी परमाणु एक से होते हैं। परमाणु एक दूसरे से मिलकर अणुओं (Molecules) की रचना करते हैं। उदाहरण के लिए हाइड्रोजन के दो परमाणुओं और आक्सीजन के एक परमाणु के मिलने से पानी का एक अणु बनता है। पानी के असंख्यों अणु मिलकर अधिक मात्रा में पानी बनाते हैं। इसी प्रकार सोडियम और क्लोरीन का एक-एक परमाणु मिलकर नमक का एक अणु बनाते हैं।

अब प्रश्न उठता है कि ये परमाणु एक दूसरे से किस प्रकार संयोग करते हैं। परमाणुओं के एक दूसरे से मिलने के मुख्य रूप से दो तरीके हैं। इन दोनों तरीकों को जानने के लिए हमें परमाणु की बनावट के विषय में जानना जरूरी है। प्रत्येक परमाणु का केन्द्रीय भाग धनात्मक आवेशित (Positively Charged) होता है। इस भाग को नाभिक (Nucleus) कहते हैं। नाभिक के चारों ओर इलेक्ट्रोन अलग-अलग कक्षाओं में घूमते रहते हैं। इलेक्ट्रोन

पर ऋणात्मक आवेश होता है। पहले तरीके के संयोग में जब एक परमाणु दूसरे से मिलता है तो यह अपने कुछ इलेक्ट्रोन दूसरे परमाणु को देकर एक बन्ध (Bond) बनाता है जिससे एक नए पदार्थ का निर्माण होता है। दूसरे तरीके में एक परमाणु के इलेक्ट्रोन दूसरे परमाणु के इलेक्ट्रोनों से आपसी साझेदारी करके बन्ध बनाते हैं। मिलने के इन दोनों तरीकों में परमाणु की बाहरी कक्षा के इलेक्ट्रोन ही हिस्सा लेते हैं। अब प्रश्न उठता है कि इलेक्ट्रोनों के आदान-प्रदान या साझेदारी से नए पदार्थ कैसे बन जाते हैं।

नमक के निर्माण में सोडियम के परमाणु का एक इलेक्ट्रोन क्लोरीन के परमाणु में चला जाता है। इलेक्ट्रोन के इस आदान-प्रदान में दोनों परमाणुओं के बीच एक आकर्षण बल काम करने लगता है। इसी आकर्षण बल के कारण दोनों परमाणु साथ-साथ बंध जाते हैं और नमक के अणुओं का निर्माण हो जाता है। इसी प्रकार पानी के निर्माण में आक्सीजन और हाइड्रोजन परमाणुओं के इलेक्ट्रोनों की आपसी साझेदारी से आकर्षण बल पैदा हो जाता है जिससे ये परमाणु साथ-साथ बंध जाते हैं और पानी का अणु बना देते हैं।

इसी प्रकार के संयोगों से संसार के सभी पदार्थों का निर्माण होता है। उदाहरण के लिए कार्बन का एक परमाणु और आक्सीजन के दो परमाणु मिलकर कार्बन-डाइआक्साइड गैस का एक अणु बनाते हैं। नाइट्रोजन का एक परमाणु हाइड्रोजन के तीन परमाणुओं से मिलकर अमोनिया गैस का निर्माण करते हैं। इसी प्रकार ये 92 प्रकार के परमाणु एक दूसरे से मिलकर अलग-अलग पदार्थ बनाते हैं। कार्बन एक ऐसा तत्व है जिसके परमाणु दूसरे परमाणुओं से मिलकर सबसे अधिक प्रकार के पदार्थों का निर्माण करते हैं। कार्बन और दूसरे तत्वों के संयोग से बने पदार्थों को कार्बनिक पदार्थ (Organic material) कहा जाता है।

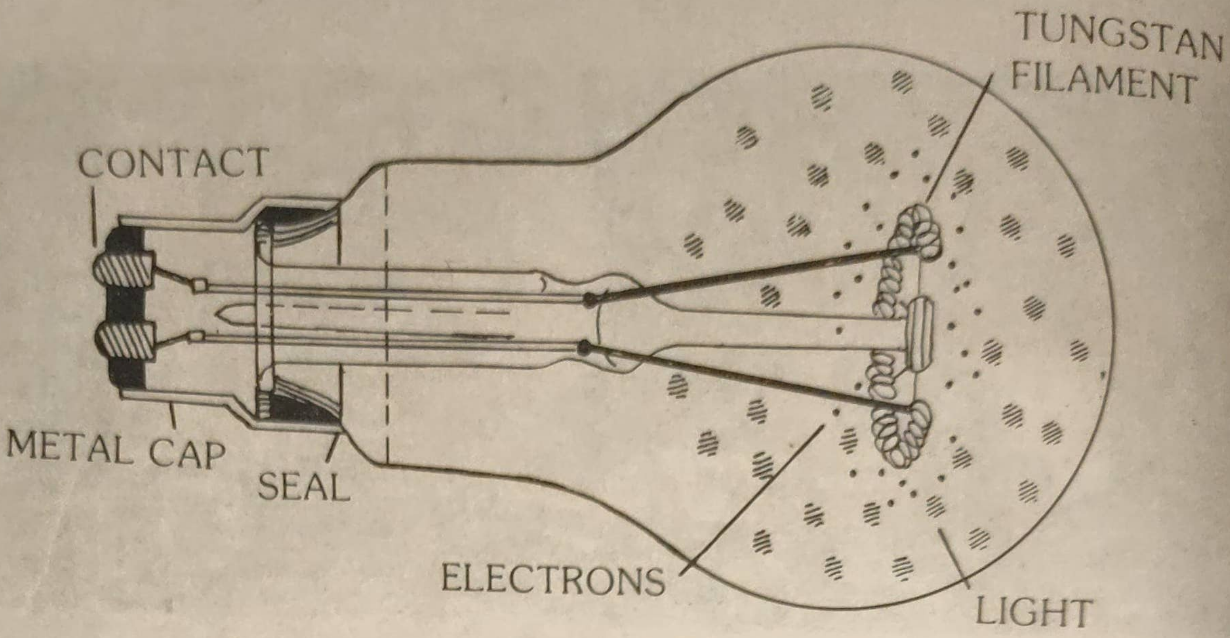


विज्ञापन-पट्ट कैसे चमकते हैं?

रात्रि के समय अलग-अलग रंगों के चमकते हुए भांति-भांति के विज्ञापन-पट शहरी बाजारों में दूर से ही दिखाई देते हैं। इनकी चमक और सुन्दरता के कारण हमारी नजर इनको देखने के लिए उठ जाती है। इनमें कुछ का रंग लाल होता है तो कुछ का रंग हरा। कुछ विज्ञापन पट्टों से नीले रंग की रोशनी भी निकलती है। क्या तुम जानते हो कि ये विज्ञापन पट्ट कैसे चमकते हैं?

ये सभी विज्ञापन-पट्ट गैसों की विद्युत विसर्जन की क्रिया द्वारा उत्पन्न रोशनी के कारण चमकते रहते हैं। विज्ञापन पट्ट में जिन अक्षरों को प्रदर्शित करना होता है उन अक्षरों को कांच की पतली नलिकाओं से बना लिया जाता है। हम जानते हैं कि गर्म करके कांच की नलिकाओं को मनचाहे रूप में मोड़ा जा सकता है। इन नलिकाओं को विज्ञापन के अक्षरों के रूप में मोड़ लिया जाता है। नलिकाओं से बने इन अक्षरों के सिरों पर धातु के इलेक्ट्रोड लगा दिए जाते हैं। निर्वात पम्प (Vacuum pump) से इनके अन्दर की हवा निकालकर निऑन (Neon) या आर्गन (Argon) गैस भर दी जाती है। जब इन इलेक्ट्रोडो पर उच्च विभवान्तर (High voltage) पर विद्युतधारा प्रवाहित की जाती है तो गैस की विद्युत विसर्जन क्रिया द्वारा रंगीन रोशनी निकलने लगती है। इसी रोशनी से अक्षर चमकने लगते हैं।

विज्ञापन-पट्ट के अक्षरों का रंग नलिकाओं में भरी जाने वाली गैस पर निर्भर करता है। यदि अक्षरों की नलिकाओं में निऑन गैस भरी है तो विज्ञापन-पट्ट के अक्षर लाल रंग के प्रकाश से चमकने लगेंगे। यदि अक्षरों में आर्गन, निऑन तथा पारे की वाष्प भर कर विद्युतधारा प्रवाहित की जाए तो अक्षर हरे रंग में चमकने लगते हैं। इसी प्रकार नील-लोहित रंग की कांच की नली में आर्गन, निऑन और पारे की वाष्प भरी जाए तो विज्ञापन-पट्ट नीले रंग में चमकने लगेगा। दूसरे रंगों के लिए गैसों के दूसरे मिश्रण प्रयोग में लाए जाते हैं। व्यापारी लोग अपनी वस्तुओं की बिक्री बढ़ाने के लिए विज्ञापन-पट्टों द्वारा लोगों का ध्यान आकर्षित करते रहते हैं।



बिजली के बल्ब से प्रकाश कैसे पैदा होता है ?

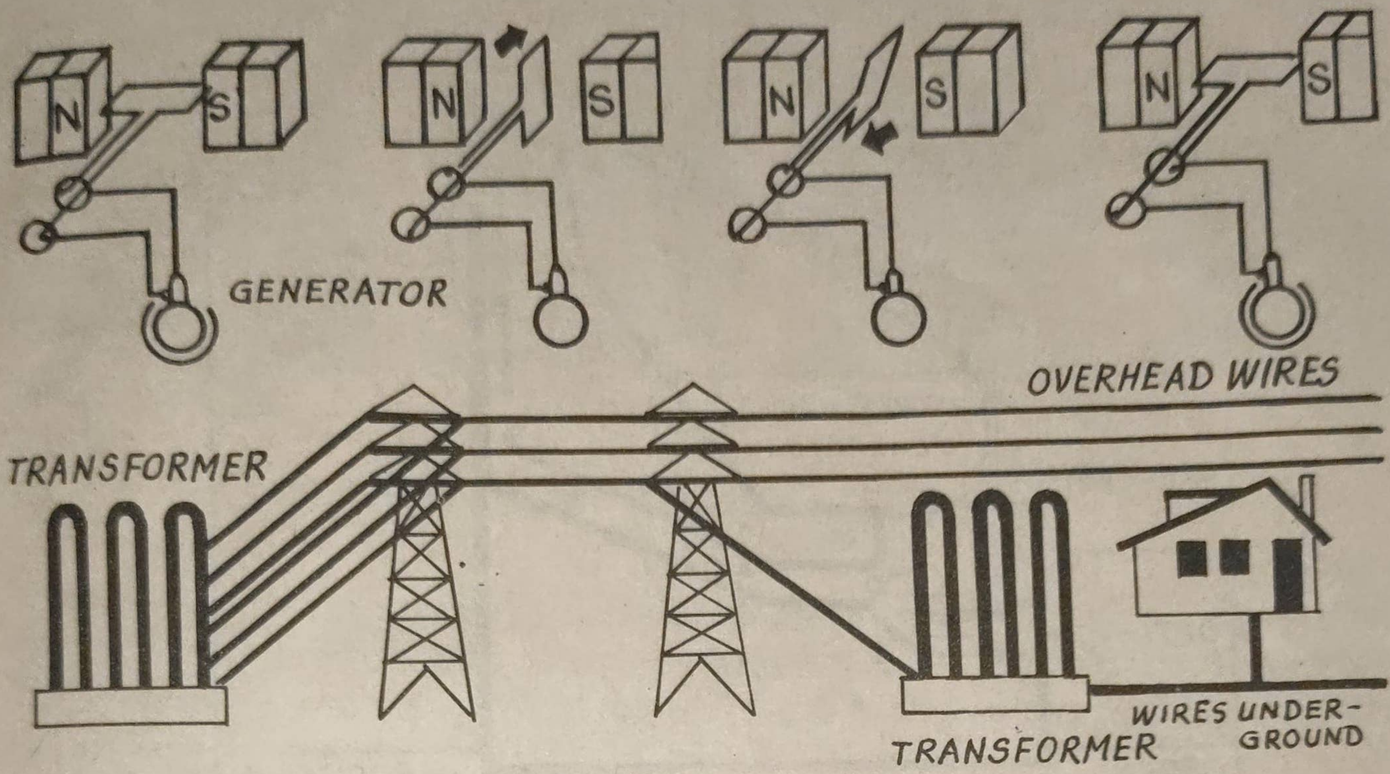
रात्रि के गहन अंधकार में जब हम किसी अंधेरे कमरे में बिजली का स्विच खोलते हैं तो सारा कमरा बल्ब के प्रकाश से जगमगा उठता है। कमरे में रखी सभी वस्तुएं साफ-साफ दिखाई देने लगती हैं। क्या तुम जानते हो कि बल्ब से प्रकाश कैसे पैदा होता है?

संसार का सबसे पहला बल्ब अमरीका के वैज्ञानिक थॉमस एडीसन (Thomas Edison) ने सन् 1878 में बनाया था। इस बल्ब के निर्माण में इस सिद्धांत का प्रयोग किया गया था कि तारों में विद्युत धारा प्रवाहित करने पर ऊष्मा और प्रकाश पैदा होते हैं। बिजली के बल्ब में विद्युत ऊर्जा, प्रकाश और ऊष्मा में बदल जाती है। ऐसे लैम्पों को तापदीप्ति (Incandescent) लैम्प कहते हैं। एडीसन के बल्ब में प्लैटिनम धातु का अत्यन्त पतला तार कुण्डली के रूप में एक कांच के बल्ब में बन्द कर दिया गया था। जब इस तार के दोनों सिरे विद्युतधारा से जोड़े जाते थे तो तार गर्म हो जाता था जिसके फलस्वरूप यह लाल होकर चमकने लगता था। एडीसन द्वारा बनाए गए लैम्प अधिक दिनों तक प्रयोग में न लाए जा सके क्योंकि प्लैटिनम धातु बहुत मंहगी पड़ती थी।

इसके बाद इस बल्ब में प्रयोग होने वाले फिलामेन्टों के पदार्थों में बहुत से परिवर्तन किए गए। कुछ दिनों तक कार्बन फिलामेन्ट प्रयोग में लाया गया, इसके पश्चात् टगस्टन और टेन्टालम धातुओं के फिलामेन्ट प्रयोग में आने लगे। इन धातुओं का गलनांक अधिक होने के कारण इनसे बने फिलामेन्ट आसानी से टूटते नहीं हैं। विद्युत वोल्टता के परिवर्तनों का भी इन पर अधिक असर नहीं पड़ता।

आधुनिक बल्बों में टंगस्टन धातु से बने फिलामेन्ट को एक कांच के बल्ब में बन्द कर दिया जाता है। इनको पिघलने से बचाने के लिए बल्ब के अन्दर नाइट्रोजन और आर्गन गैस भर दी जाती है। तार के दोनों सिरों को बल्ब की टोपी से जोड़ दिया जाता है। दोनों तारों के आपसी सम्पर्क को खत्म करने के लिए टोपी पर विद्युत अवरोधी पदार्थ लगा दिया जाता है। जब बल्ब में विद्युतधारा बहती है तो टंगस्टन धातु का फिलामेन्ट लाल होकर सफेद हो जाता है। यही फिलामेन्ट हमें रोशनी देता है।

बल्ब का प्रयोग करते समय इसे हिलाना नहीं चाहिए क्योंकि ऐसा करने से फिलामेन्ट टूटने का डर रहता है। फिलामेन्ट टूट जाने पर बल्ब हमारे किसी काम का नहीं रहता। बल्बों को होल्डर में लगाते समय बिजली का स्विच बन्द रखना चाहिए, नहीं तो झटका लगने का डर रहता है।

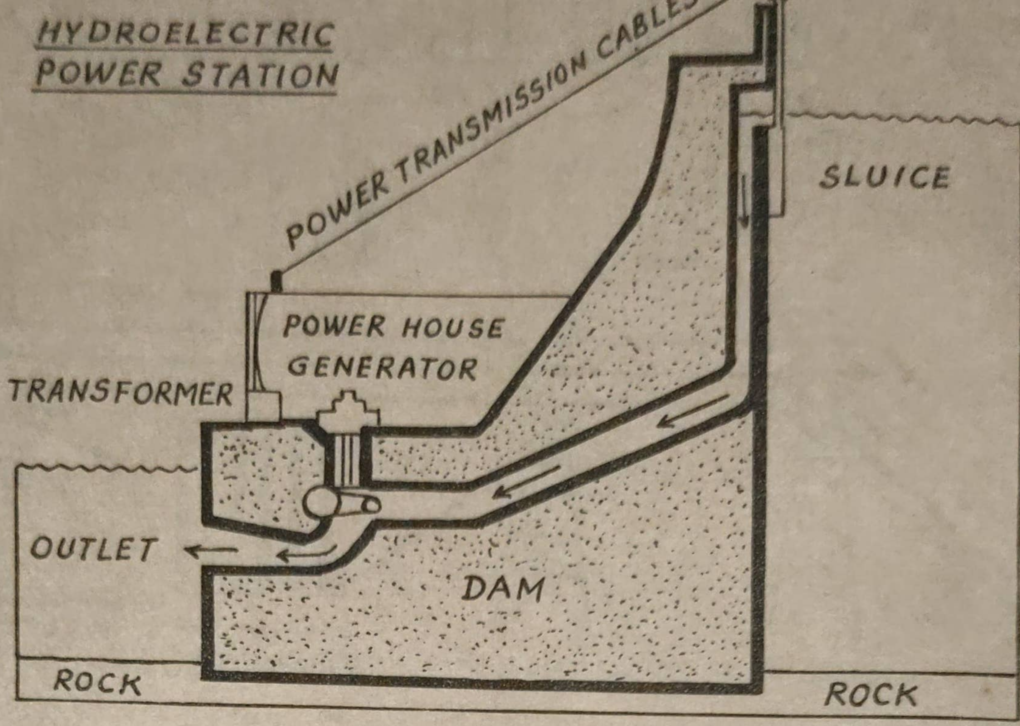


बिजली कैसे पैदा की जाती है?

विद्युत ऊर्जा मानव जीवन के लिए इतनी आवश्यक हो गई है कि अब तो इसके बिना काम चलना असम्भव सा लगता है। संसार के सभी उद्योगों में काम आने वाली लगभग सभी मशीनें बिजली से ही चलती हैं। रेल, मोटर, हवाईजहाज सभी में विद्युत ऊर्जा की आवश्यकता होती है। प्रकाश पैदा करने के लिए बिजली हमारे लिए एक वरदान सिद्ध हुई है। क्या तुम जानते हो कि बिजली कैसे पैदा की जाती है?

बिजली पैदा करने वाली मशीनों को डायनमो (Dynamo) या जेनेरेटर (Generator) कहते हैं। डायनमों में एक विशाल चुम्बक होता है जिसके दोनों ध्रुवों (Poles) के बीच तांबे के तारों से बनी हुई एक आयताकार कुण्डली घूमती है। इस कुण्डली के दोनों सिरों का सम्बन्ध धातु के दो छल्लों से होता है। प्रत्येक छल्ला कार्बन के ब्रुश (Brush) को स्पर्श करता रहता है। कार्बन ब्रुशों से विद्युतधारा ले जाने वाले तार जुड़े होते हैं। जब तांबे के तारों की आयताकार कुण्डली चुम्बक के ध्रुवों के बीच घूमती है तो विद्युत चुम्बकीय प्रेरणा (Electromagnetic Induction) द्वारा बिजली पैदा होती है जो धातु के छल्लों से स्पर्श करने वाले कार्बन ब्रुशों से होती हुई बिजली के तारों में चली जाती है। ये ही तार हमारे घरों और फैक्टरियों तक आते हैं। इस प्रकार बिजली हम तक पहुंच जाती है।

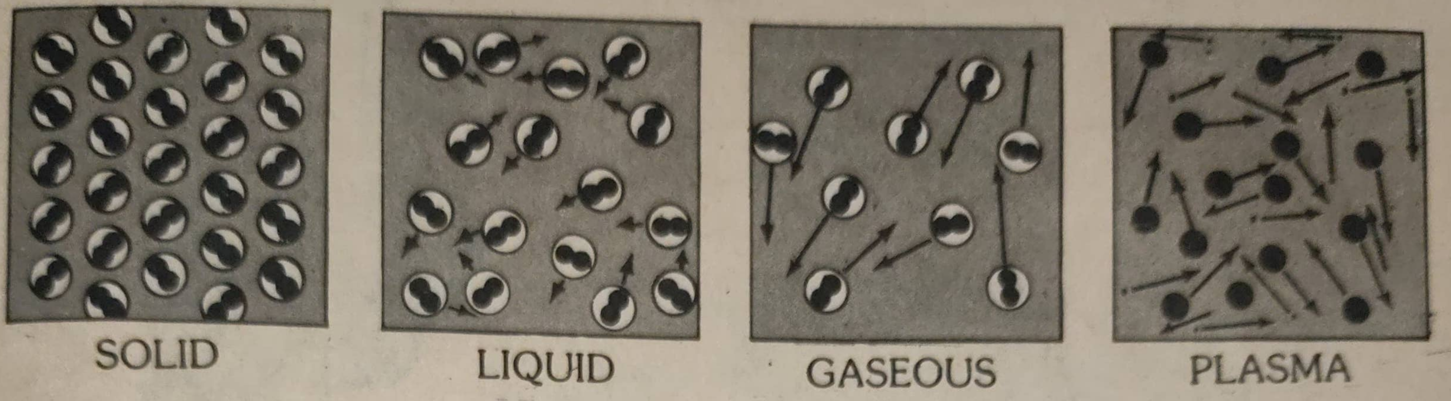
अब प्रश्न उठता है कि डायनमों में तांबे के तारों की कुण्डली को कैसे घुमाया जाता है? इसको घुमाने के लिए आमतौर पर दो तरीके काम में लाए जाते हैं। पहले तरीके में नदियों पर बांध बनाकर पानी को बहुत ऊंचाई से गिराया जाता है। यह पानी टरबाइन के ब्लेडों पर गिरता है जिससे इसकी धुरी घूमने लगती है। टरबाइन की धुरी का सम्बन्ध जेनरेटर की कुण्डली के धुरे से होता है। टरबाइन के चलने से यह कुण्डली भी घूमने लगती है और बिजली पैदा होने लगती है। इस प्रकार से विद्युत पैदा करने वाले केन्द्रों को जल विद्युत केन्द्र (Hydel Power



Station) कहते हैं। भाखड़ा में विद्युत पैदा करने का ऐसा एक ही केन्द्र है।

दूसरे तरीके में कोयला जलाकर पानी गर्म किया जाता है। पानी से बनी भाप को टरबाइन के ब्लेडों पर डाला जाता है जिससे टरबाइन घूमने लगती है। टरबाइन का सम्बन्ध डायनमो से होता है जिससे तांबे के तारों की कुण्डली चुम्बक के ध्रुवों के बीच में घूमने लगती है और बिजली पैदा होने लगती है। इस प्रकार के केन्द्रों को ताप विद्युत केन्द्र (Thermal Power Station) कहते हैं। बदरपुर और दिल्ली में ऐसे ही पावर स्टेशन हैं। जिनमें कोयला जलाकर पानी से बनी भाप से जेनेरेटरों द्वारा विद्युत उत्पादन होता है।

इन दोनों तरीकों के अतिरिक्त आजकल परमाणु ऊर्जा से भी बिजली पैदा की जा रही है। इनको परमाणु विद्युत केन्द्र (Atomic Power Reactors) कहते हैं। आज के वैज्ञानिक विद्युत की बढ़ती हुई मांग को ध्यान में रखते हुए सौर ऊर्जा और वायु से भी विद्युत पैदा करने के तरीकों के विकास में लगे हुए हैं।

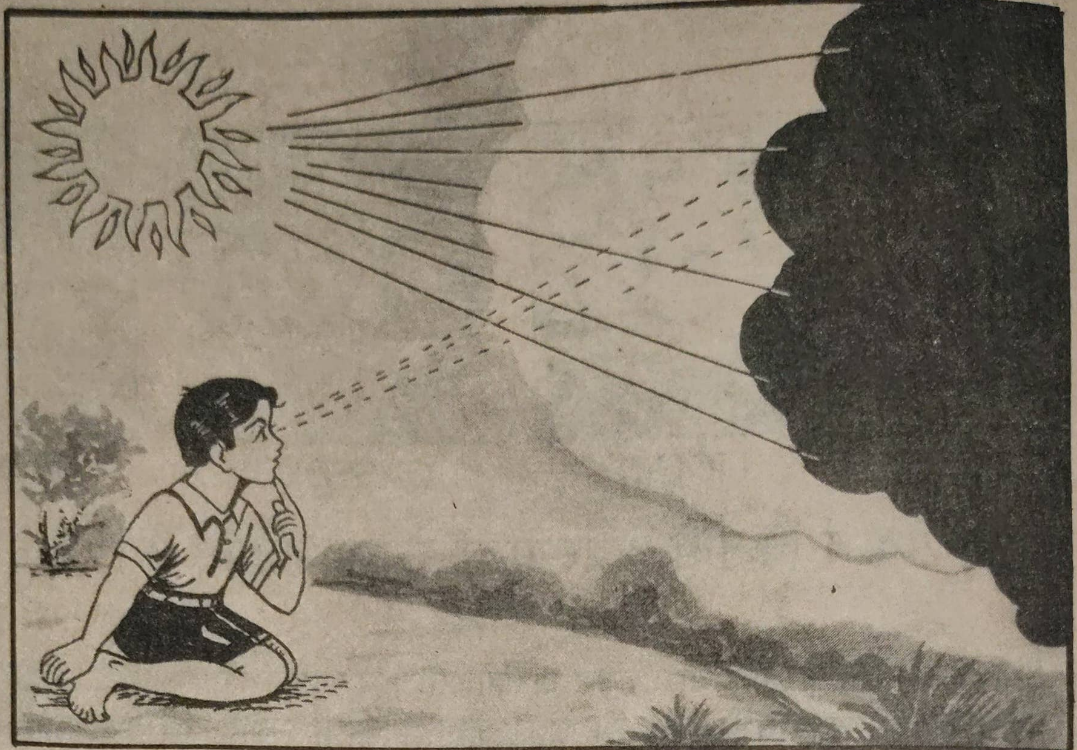


पदार्थ कितनी अवस्थाओं में रह सकता है ?

कोई भी वस्तु जो जगह घेरती है और जिसमें भार होता है द्रव्य या पदार्थ कहलाती है। लोहा, सोना, चांदी, पानी, आक्सीजन आदि सभी पदार्थ हैं। लोहा, सोना, चांदी आदि सभी ठोस अवस्था में मिलते हैं, पानी तरल अवस्था में और आक्सीजन गैसीय अवस्था में मिलती है। लेकिन ये सभी पदार्थ ठोस, तरल और गैसीय अवस्थाओं में रह सकते हैं।

ठोस अवस्था पदार्थ की वह अवस्था है जिसमें उसके अणु एक दूसरे के बहुत पास-पास आ जाते हैं। उनके बीच का आकर्षण-बल बहुत अधिक होता है। यही कारण है कि ठोसों का आकार, रूप और आयतन निश्चित होता है। तरल अवस्था में पदार्थ के अणु एक दूसरे के बहुत पास-पास नहीं होते। उनके बीच में लगने वाला बल भी कम हो जाता है। इसलिए द्रव उसी बर्तन का रूप धारण कर लेते हैं जिसमें उन्हें रखा जाता है, लेकिन उनका आयतन निश्चित रहता है। गैसीय अवस्था में पदार्थ के अणु एक दूसरे से बहुत दूर-दूर होते हैं। उनके बीच में आकर्षण-बल नाममात्र होता है। उनका आयतन निश्चित नहीं होता है। उन्हें जिस बर्तन में रखा जाता है वे उसी का आकार और आयतन धारण कर लेते हैं। संसार के सभी पदार्थ ठोस, तरल और गैसीय अवस्था में रह सकते हैं। पानी साधारण रूप में तरल अवस्था में रहता है, बर्फ बनने पर ठोस अवस्था में आ जाता है और भाप बनने पर गैसीय अवस्था में आ जाता है। इसी प्रकार आक्सीजन साधारण अवस्था में गैस है लेकिन ठंडी करने पर यह तरल और ठोस अवस्थाओं में बदल जाती है।

पदार्थ की इन तीन अवस्थाओं के अतिरिक्त एक चौथी अवस्था और भी है। इसे प्लाज्मा (Plasma) अवस्था कहते हैं। इस अवस्था में पदार्थ के परमाणु और अणु आयनित (Ionised) हो जाते हैं। इस अवस्था में धन आयन और इलेक्ट्रोन दोनों ही होते हैं। घर में जलने वाली ट्यूब लाइट में जो चीज चमकती है वह पदार्थ की प्लाज्मा अवस्था है। हमारे वायुमंडल का आयन मंडल जिससे रेडियो तरंगें परावर्तित होती हैं प्लाज्मा अवस्था में ही है। आम तौर पर तापमान के कम होने से पदार्थ ठोस अवस्था में आ जाते हैं और तापमान के बहुत अधिक बढ़ने पर वे प्लाज्मा अवस्था में आ जाते हैं।

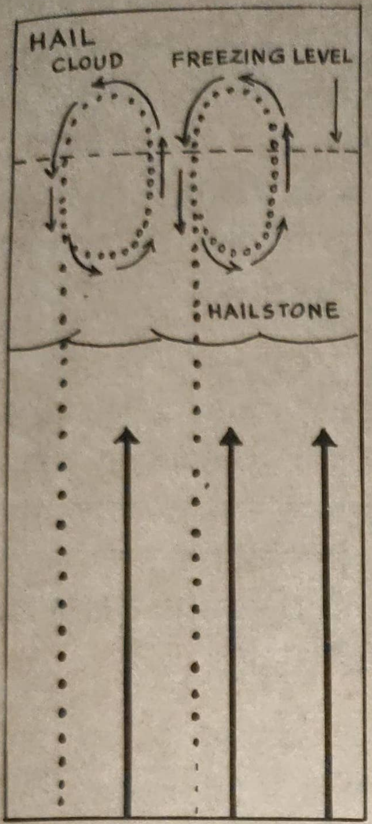


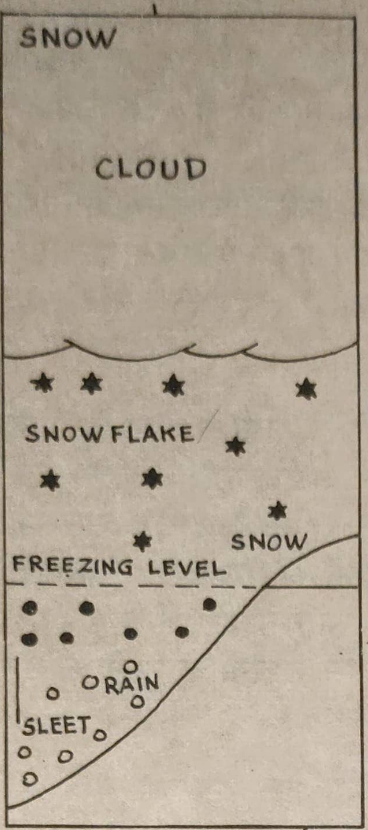
बरसने वाले बादल काले क्यों दिखाई देते हैं ?

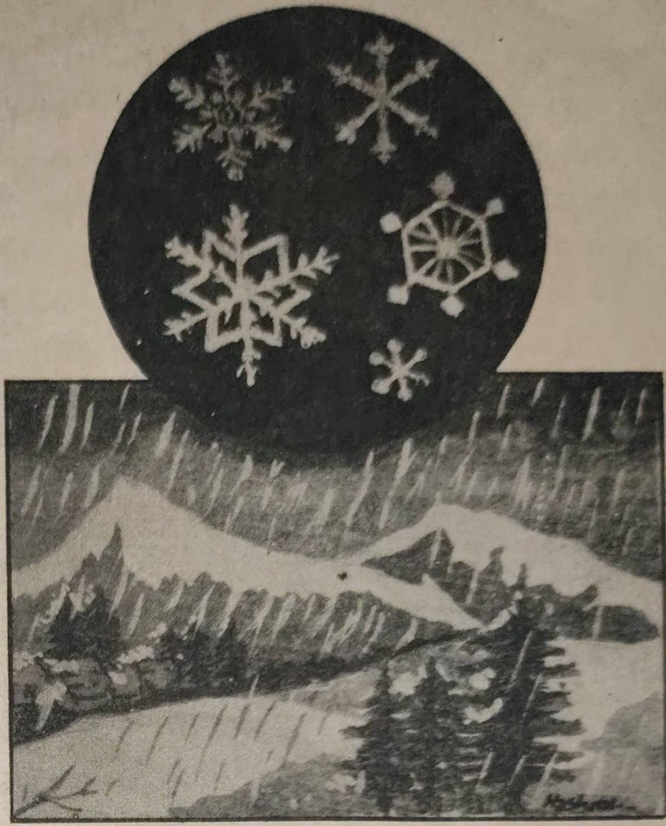
हम जानते हैं कि बादलों में पानी की असंख्य छोटी-छोटी बूंदें होती हैं। कुछ बादलों में इन बूंदों की संख्या बहुत अधिक होती है तो दूसरों में बहुत कम। कुछ बादल सफेद रंग के दिखाई देते हैं तो कुछ भूरे रंग के। बरसने वाले बादल आमतौर पर काले रंग के होते हैं। क्या तुम जानते हो कि इन बादलों का रंग काला क्यों होता है?

जब किसी वस्तु पर सूर्य का प्रकाश पड़ता है तो उसका कुछ भाग परावर्तित (Reflect) हो जाता है और कुछ वस्तु द्वारा अवशोषित (Absorb) कर लिया जाता है। चमकीली वस्तुएं अक्सर अपने ऊपर पड़ने वाले प्रकाश को परावर्तित करती हैं। यदि कोई वस्तु उस पर पड़ने वाले प्रकाश को पूर्णतया अवशोषित कर लेती है तो वह काले रंग की दिखाई देती है। वास्तव में काला रंग कोई रंग नहीं है। प्रकाश के सातों रंग जब किसी वस्तु द्वारा अवशोषित कर लिए जाते हैं तो उस वस्तु का रंग काला दिखाई देता है।

जो बादल सूर्य के प्रकाश को परावर्तित कर देते हैं, वे सफेद दिखाई देते हैं, लेकिन जो प्रकाश को अवशोषित कर लेते हैं, वे काले दिखाई देते हैं। बरसने वाले बादलों में पानी की असंख्य बूंदें होती हैं जो सूर्य के प्रकाश के सभी रंगों को अवशोषित कर लेती हैं, इसलिए बरसने वाले बादलों का रंग काला दिखाई देता है। आकाश में जब ऐसे बादलों की संख्या अधिक होती है तो दिन में भी अंधकार हो जाता है क्योंकि ये बादल सूर्य के प्रकाश को अवशोषित कर लेते हैं और उसे धरती तक नहीं आने देते। कभी-कभी आकाश में चमकीले रंग के बादल सफेद पट्टियों के रूप में दिखाई देते हैं। ये बादल बर्फ के बहुत ही छोटे-छोटे कणों से मिलकर बने होते हैं और इनकी ऊंचाई भी बहुत अधिक होती है। बर्फ के कण प्रकाश के लिए पारदर्शक होते हैं, इसलिए कांच की भांति इनमें से प्रकाश आर-पार निकल आता है। इसलिए ये चमकीले दिखाई देते हैं।







बर्फ कैसे गिरती है ?

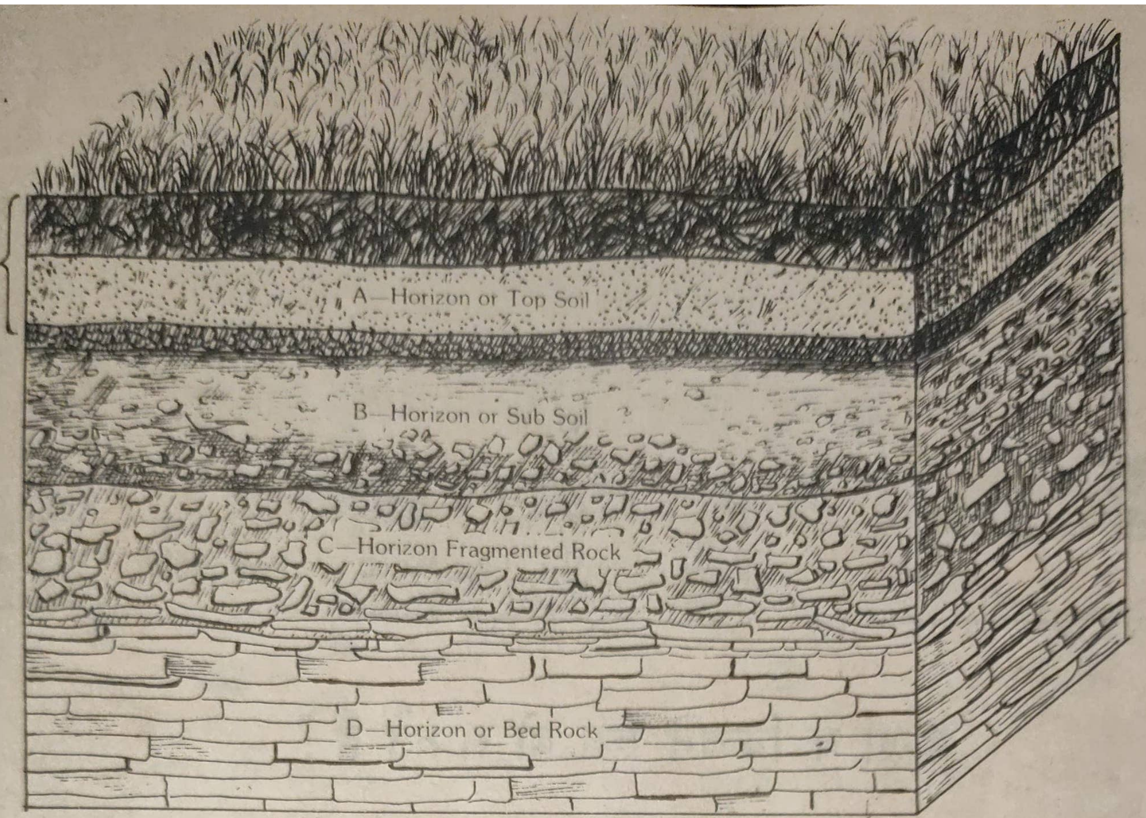
सर्दी के मौसम में पहाड़ों और ठंडे क्षेत्रों में गिरने वाली बर्फ वास्तव में पानी का ही एक जमा हुआ रूप है। जब बर्फ गिरती है तो यह रूई के छोटे-छोटे रेशों की तरह मुलायम और सफेद होती है। बर्फ के इन टुकड़ों की रचना मणिभीय (Crystalline) होती है। ये षट्भुजाकार (Hexagonal) होते हैं। (ऊपर का चित्र देखें) ये टुकड़े सूर्य के प्रकाश के सभी रंगों को परावर्तित कर देते हैं इसलिए इनका रंग सफेद दिखाई देता है। क्या तुम जानते हो बर्फ कैसे गिरती है?

गर्मी के कारण समुद्रों, नदियों, झीलों, तालाबों आदि का पानी वाष्पित होता रहता है। यह जलवाष्प हवा से हल्की होती है और हल्केपन के कारण यह वायुमण्डल में ऊपर उठती जाती है। यही वाष्प वायुमण्डल में बादलों का रूप धारण कर लेती है। हम जानते हैं कि ऊंचाई के साथ-साथ वायुमण्डल का तापमान भी काफी कम होता जाता है और कम तापमान वाले हिस्सों में अधिक जलवाष्प नहीं समा सकती। इस प्रकार बायुमण्डल के ऊपरी क्षेत्रों में जलवाष्प की मात्रा उसकी क्षमता से अधिक हो जाती है। इस स्थिति में वायुमण्डल में उपस्थित धूल और धुएँ के कणों पर जलवाष्प संघनित (Condensed) होकर ठंड के कारण बर्फ के कणों में बदल जाती है। ये कण एक दूसरे से चिपक कर बर्फ के मणिभों (Crystals) में बदल जाते हैं। जब इनका भार अधिक हो जाता है तो ये बर्फ के टुकड़ों (Snow flakes) के रूप में नीचे गिरने लगते हैं। यह बर्फ पहाड़ों की चोटियों पर जमा होती रहती है।

अब प्रश्न आता है कि बर्फ पहाड़ों पर ही क्यों गिरती है मैदानों में क्यों नहीं गिरती? किसी स्थान पर बर्फ का गिरना दो बातों पर निर्भर करता है—उस स्थान की समुद्र तल से ऊंचाई और भूमध्य रेखा से दूरी। जो स्थान

समुद्र तल से जितना अधिक ऊंचा होगा और भूमध्य रेखा से जितना अधिक दूर होगा वहां बर्फ गिरने की सम्भावना भी अधिक होगी। वायुमण्डल में जलवाष्प से बनने वाली बर्फ की मात्रा बहुत अधिक होती है,लेकिन इसका बहुत थोड़ा हिस्सा जमीन पर बर्फ के रूप में गिरता है और अधिक हिस्सा वर्षा के रूप में गिरता है। जिन क्षेत्रों का तापमान अधिक होता है उन स्थानों पर गिरने वाले बर्फ के कण वायुमण्डल में ही पिघल कर वर्षा की बूंदों का रूप धारण कर लेते हैं। लेकिन पहाड़ों के ऊपर तापमान कम होने के कारण बर्फ के गिरने वाले कण पिघल कर पानी में नहीं बदल पाते हैं बल्कि पहाड़ों के ऊपर बर्फ के रूप में ही जमा होते रहते हैं। यही बर्फ अपने दबाव के कारण सख्त होती जाती है।

बर्फ का गिरना हमारे जीवन के लिए बहुत ही उपयोगी है। पहाड़ों पर जमी बर्फ के पिघलने से ही नदियों को गर्मियों में पानी मिलता है। यही पानी खेतों की सिंचाई के काम आता है। बर्फ के टुकड़ों के बीच में वायु होती है इसलिए यह ऊष्मा की कुचालक (Bad Conductor) होती है। इसी कारण बर्फ धरती के ऊपर कम्बल का काम करती है। इसी गुण के आधार पर लोग बर्फ की चट्टानों को खोदकर घर बना लेते हैं जिनमें ठंड बहुत कम लगती है। बर्फ के प्रभावों से बचने के लिए पहाड़ी इलाकों में मकान की छतें ढालू बनाई जाती हैं जिससे गिरने वाली बर्फ खिसक-खिसक कर जमीन पर आती रहती है। इससे मकानों के टूटने का डर नहीं रहता।



मिट्टी कैसे बनती है?

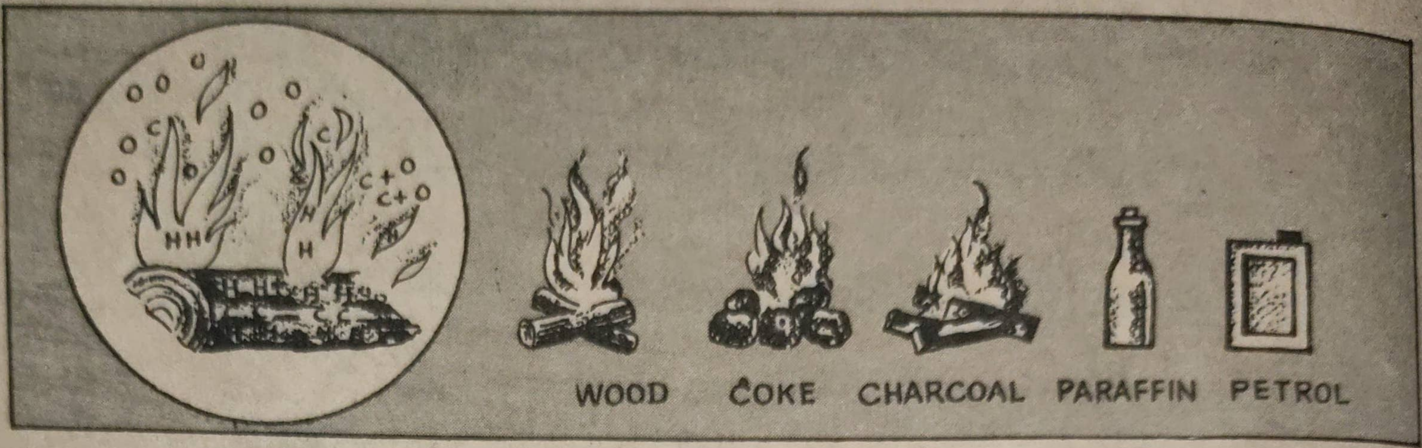
यदि हमारी पृथ्वी की सतह मिट्टी से न ढकी होती तो शायद हमारा जीवन ही संभव न होता। बिना मिट्टी के न तो पेड़-पौधे उगते और न ही जानवरों और मनुष्यों को भोजन मिलता। यही कारण है कि लोग मिट्टी को जीवनदायिनी मानते हैं।

धरती का मुलायम और पाउडर जैसा हिस्सा, जिसमें पौधे उगते हैं, मिट्टी कहलाता है। इस मिट्टी का जन्म चट्टानों के छोटे-छोटे टुकड़ों और पेड़-पौधों एवं जानवरों के सड़ने से हुआ है। यह मिट्टी कोई एक दिन में नहीं बनी है, बल्कि इसका बनने का क्रम लाखों वर्षों से ही चलता आ रहा है और आगे भी चलता रहेगा। अब प्रश्न उठता है कि मिट्टी कैसे बनती है?

लाखों वर्ष पहले मिट्टी इस रूप में नहीं थी बल्कि चट्टानों की शक्ल में थी। वर्षा, हवा, बर्फ, गर्मी, वायु से बने कार्बोनिक अम्ल आदि इन चट्टानों से लगातार टकराते रहे और उन्हें तोड़ते रहे। चट्टानें टूटते-टूटते छोटे-छोटे टुकड़ों में बदल गईं और ये छोटे-छोटे टुकड़े बालू में बदल गए। इस बालू से कीचड़ का बना। बैक्टीरिया और दूसरे सूक्ष्म जीवों ने चट्टानों से बनी बालू में उपस्थित खनिज पदार्थों को दूसरे जटिल पदार्थों में बदलना शुरू कर दिया। धीरे-धीरे धरती पर मिट्टी के वे ढेले बन गए जिन्हें हम आज अपने खेतों और बगीचों में देखते हैं।

इस प्रकार बनी मिट्टी को अधिक उपजाऊ बनाने का काम बहुत से जानवरों, पेड़-पौधों, कीड़े-मकोड़ों, केंचुओं तथा अनेकों सूक्ष्म जीवों ने किया। ये सब हमारी जमीन पर एक रासायनिक प्रयोगशाला की तरह काम करते रहे हैं। इनका मरना तथा जन्म लेना मिट्टी के निर्माण में योग देता रहा।

मिट्टी को चार सतहों में बांटा जाता है। सबसे ऊपर की सतह को जिसमें पेड़-पौधे उगते हैं, ऊपरी सतह (Top Soil) या A-हॉरीजन (Horizon) कहते हैं। इस सतह में कार्बनिक पदार्थों और ह्यूमस की अधिक मात्रा होती है। इससे निचली सतह को B-हॉरीजन या सब-सोइल (Sub-Soil) कहते हैं। इसमें खनिज पदार्थों की बहुतायत होती है। किसान हल जोतकर इन दोनों परतों को मिला लेते हैं। तीसरी परत को C-हॉरीजन कहते हैं। इसमें पत्थरों के छोटे-छोटे टुकड़े होते हैं। सबसे निचली परत को D-हॉरीजन या बैड-रौक कहते हैं। इसमें पत्थर ही पत्थर होते हैं। ये चारों परतें ऊपर के चित्र में दिखाई गई हैं।



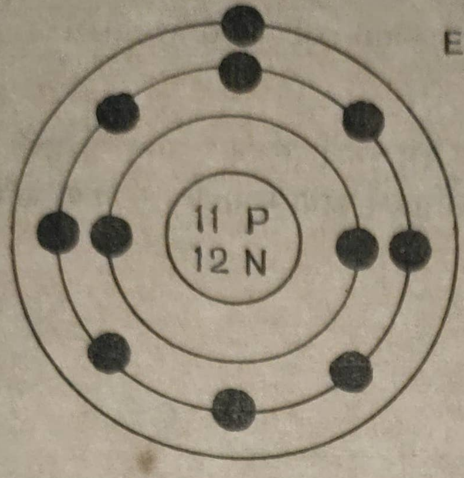
ऊर्जा के कितने रूप हो सकते हैं?

विज्ञान के अनुसार काम करने की क्षमता को ऊर्जा कहते हैं। दुनिया के समस्त कार्य ऊर्जा के कारण ही होते हैं। रेल या मोटर का चलना, बिजली के बल्ब का जलना, नदियों का बहना, कोयला या पेट्रोल का जलना, आवाज का पैदा होना, सब ऊर्जा के कारण ही होता है। ऊर्जा के आठ रूप होते हैं। ये हैं—यांत्रिक ऊर्जा (Mechanical Energy), ऊष्मा ऊर्जा (Heat Energy), प्रकाश ऊर्जा (Light Energy), विद्युत ऊर्जा (Electrical Energy), ध्वनि ऊर्जा (Sound Energy), चुम्बकीय ऊर्जा (Magnetic Energy), रासायनिक ऊर्जा (Chemical Energy) और परमाणु ऊर्जा (Atomic Energy)।

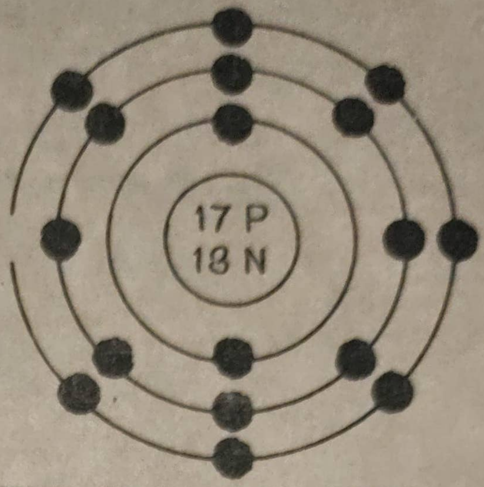
ऊर्जा को एक रूप से दूसरे रूप में बदला जा सकता है, लेकिन इसे न तो पैदा किया जा सकता है और न ही नष्ट किया जा सकता है। समस्त ब्रह्माण्ड की ऊर्जा निश्चित है, केवल इसका रूप बदलता रहता है। अब प्रश्न उठता है कि ऊर्जा के ये बदलते रूप कौन से हैं?

रेलगाड़ी, बस, कार या स्कूटर के चलाने के लिए ऊष्मा ऊर्जा यांत्रिक ऊर्जा में बदल जाती है। पेट्रोल या डीजल के जलने पर इन पदार्थों में मौजूद रासायनिक ऊर्जा ऊष्मा में बदल जाती है। इसी ऊष्मा या गर्मी से ये वाहन चलते हैं। बिजली के बल्ब में विद्युत ऊर्जा ऊष्मा तथा प्रकाश ऊर्जा में बदल जाती है। टेलीफोन के माउथ पीस (Mouth Piece) पर बोलने पर ध्वनि ऊर्जा विद्युत ऊर्जा में बदल जाती है और ईअर पीस (Ear piece) पर यही विद्युत ऊर्जा फिर से ध्वनि ऊर्जा में बदल जाती है। कोयले के जलने पर इसमें निहित रासायनिक ऊर्जा गर्मी में बदल जाती है। परमाणु भट्टी से बिजली का उत्पादन वास्तव में परमाणु ऊर्जा को विद्युत ऊर्जा में बदल कर ही होता है। हमारे शरीर में होने वाली रासायनिक क्रियाएं ऊष्मा ऊर्जा पैदा करती रहती हैं जिससे हमारा शरीर गर्म रहता है। संसार की सभी क्रियाओं में ऊर्जा किसी एक रूप से दूसरे रूप में बदलती रहती है।

ELECTRON



THE SODIUM ATOM



THE CHLORINE ATOM

परमाणु की संरचना क्या है?

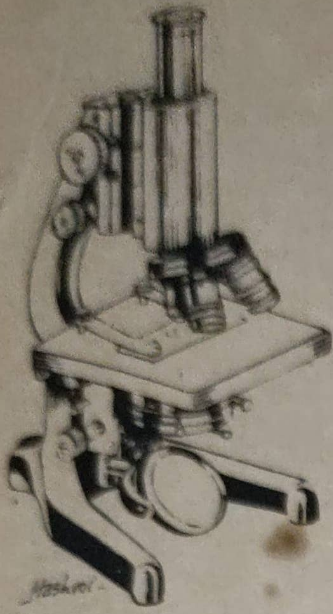
प्राचीन काल के दार्शनिकों का विचार था कि प्रत्येक पदार्थ छोटे-छोटे कणों से मिलकर बना है। परन्तु इस धारणा की पुष्टि के लिए उनके पास कोई प्रयोगात्मक प्रमाण न था। सर्वप्रथम सन् 1803 में डाल्टन नामक वैज्ञानिक ने परमाणु सिद्धांत दिया। इस सिद्धांत के अनुसार प्रत्येक पदार्थ छोटे-छोटे कणों से मिलकर बना है जिन्हें परमाणु कहते हैं। परमाणु को न तो नष्ट किया जा सकता है और न ही पैदा। एक ही तत्व के सभी परमाणु एक से होते हैं तथा अलग-अलग तत्वों के परमाणु अलग-अलग होते हैं। परमाणु को तोड़ा नहीं जा सकता। लेकिन आधुनिक अनुसंधानों के आधार पर डाल्टन की ये सभी धारणाएं आज गलत सिद्ध हो गई हैं। परमाणु द्रव्य का सबसे छोटा कण नहीं है, बल्कि यह भी दूसरे छोटे-छोटे कणों से मिलकर बना है। क्या तुम जानते हो परमाणु की आंतरिक संरचना क्या है?

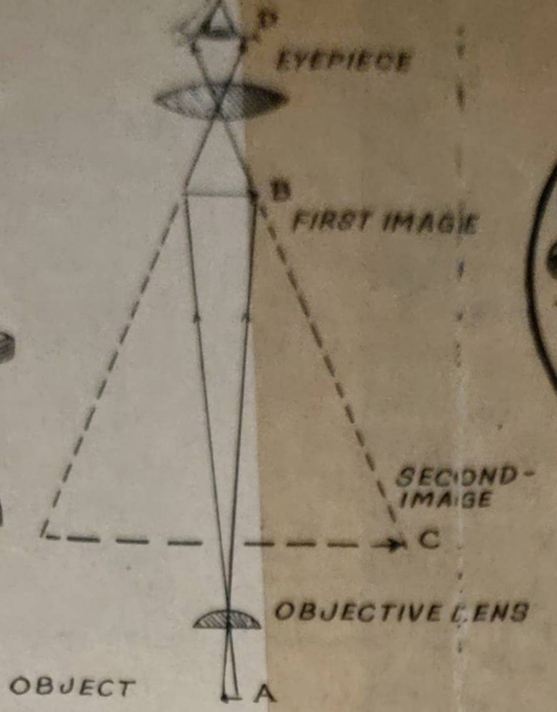
परमाणु की तुलना सौर परिवार से की जा सकती है। जिस प्रकार सूर्य सौर परिवार का केन्द्र है और बहुत से ग्रह उसका चक्कर लगाते हैं, ठीक उसी प्रकार परमाणु के केन्द्र पर धनात्मक आवेशित नाभिक (Positively charged nucleus) होता है जिसके चारों ओर ऋणात्मक आवेशित इलेक्ट्रोन अपनी-अपनी कक्षाओं में घूमते रहते हैं। परमाणु का लगभग समस्त द्रव्यमान (Mass) धनात्मक नाभिक में ही केन्द्रित रहता है। नाभिक का आकार लगभग 10^{-12} सेंटीमीटर होता है। नाभिक भी दो प्रकार के कणों से मिलकर बना है। इन कणों को प्रोटोन (Proton) और न्यूट्रोन (Neutron) कहते हैं। प्रोटोनों पर धनात्मक आवेश होता है और न्यूट्रोन उदासीन कण होते हैं। प्रोटोन और न्यूट्रोन का भार लगभग एक समान होता है। ये कण नाभिकीय बलों (Nuclear forces) द्वारा नाभिक के रूप में एक जगह रहते हैं।

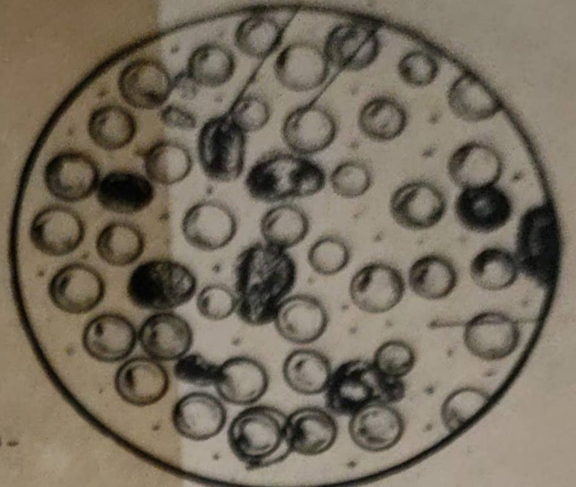
नाभिक के चारों ओर घूमने वाले इलेक्ट्रोनों की अलग-अलग कक्षाएं होती हैं। पहली कक्षा में दो इलेक्ट्रोन होते हैं, दूसरी में आठ, तीसरी में अठारह, चौथी में बत्तीस आदि-आदि। इलेक्ट्रोनों की ये कक्षाएं वृत्ताकार या अण्डाकार होती हैं। वाह्य कक्षा में उपस्थित इलेक्ट्रोनों को संयोजी इलेक्ट्रोन (Valency electron) कहते हैं।

किसी भी तत्व के गुण संयोजी इलेक्ट्रोनों की संख्या पर निर्भर करते हैं। जब किसी परमाणु को ऊर्जा दी जाती है तो वाह्य कक्षा में उपस्थित इलेक्ट्रोन ऊर्जा का अवशोषण करके ऊपरी कक्षाओं में चले जाते हैं। ऊपरी कक्षाओं से इलेक्ट्रोन जब अपनी मूल कक्षाओं में लौटते हैं तो ऊर्जा का उत्सर्जन (Emission of Radiation) प्रकाश के रूप में होता है।

आज के वैज्ञानिकों ने परमाणुओं को तोड़कर विनाशकारी परमाणु बम बना लिए हैं। परमाणु से नाभिकीय क्रियाओं द्वारा बिजली पैदा की जा रही है। नाभिकीय भट्टियों को दूसरे शांतिपूर्ण कार्यों में भी प्रयोग किया जा रहा है।







सूक्ष्मदर्शी से छोटी वस्तुयें बड़ी कैसे दिखती हैं?

सूक्ष्मदर्शी (Microscope) एक ऐसा यंत्र है जो खाली आंख से न दिखने वाली बहुत ही छोटी वस्तुओं को बड़ा करके दिखाता है। इसकी सहायता से बैक्टीरियां, जीवित प्राणियों की कोशिकाओं और दूसरी सूक्ष्म चीजों को बड़ा करके देखा जाता है तथा उनकी बनावट का अध्ययन किया जाता है। विज्ञान प्रयोगशालाओं में सूक्ष्म वस्तुओं की बनावट के अध्ययन के लिए यह एक बहुत ही उपयोगी यंत्र है। क्या तुम जानते हो कि सूक्ष्मदर्शी से छोटी-छोटी वस्तुएं बड़ी कैसे दिखने लगती हैं?

किसी भी सूक्ष्मदर्शी में दो लेन्स होते हैं जो एक खोखली नली के दोनों सिरों पर लगाए जाते हैं। इन लेन्सों को आगे-पीछे किया जा सकता है। जो लेन्स वस्तु की ओर होता है उसे अभिदृश्यक लेन्स (Objective lens) कहते हैं। इसकी फोकस दूरी (Focal length) बहुत ही कम होती है। दूसरा लेन्स जो आंख की ओर होता है, नेत्रिका लेन्स (Eye-piece) कहलाता है। इसकी फोकस दूरी कुछ अधिक होती है। जिस वस्तु को देखना होता है उसे अभिदृश्यक लेन्स के पास A स्थिति में सूक्ष्मदर्शी के प्लेटफार्म पर रखा जाता है। इस लेन्स के द्वारा वस्तु का B स्थिति पर एक वास्तविक बड़ा प्रतिबिम्ब (Real image) बन जाता है। अब यह प्रतिबिम्ब नेत्रिका लेन्स के लिए वस्तु का काम करता है। नेत्रिका लेन्स द्वारा इसका बहुत बड़ा और काल्पनिक प्रतिबिम्ब C स्थिति पर बन जाता है। यही प्रतिबिम्ब आंख के लिए वस्तु के रूप में काम करता है और इसका प्रतिबिम्ब आंख के रेटिना D पर बन जाता है (ऊपर का चित्र देखें)। इस प्रकार छोटी सी वस्तु आंख को बहुत बड़ी दिखाई देने लगती है और उसकी सूक्ष्म रचनाएं बड़ी होकर स्पष्ट हो जाती हैं। सूक्ष्मदर्शी की सहायता से वस्तुओं को उनके वास्तविक आकार से 1000 गुना तक बड़ा करके देखा जा सकता है। इन यन्त्रों द्वारा जिस वस्तु को देखना होता है उस पर प्रकाश डाला जाता है। अतः इन यंत्रों को प्रकाशीय सूक्ष्मदर्शी (Optical Microscope) कहते हैं। आज, अनेकों प्रकार के प्रकाशीय सूक्ष्मदर्शी बाजार में उपलब्ध हैं जो सूक्ष्म जगत् के अध्ययन के लिए विज्ञान के विद्यार्थियों और अनुसन्धानकर्त्ताओं द्वारा प्रयोग किए जाते हैं।



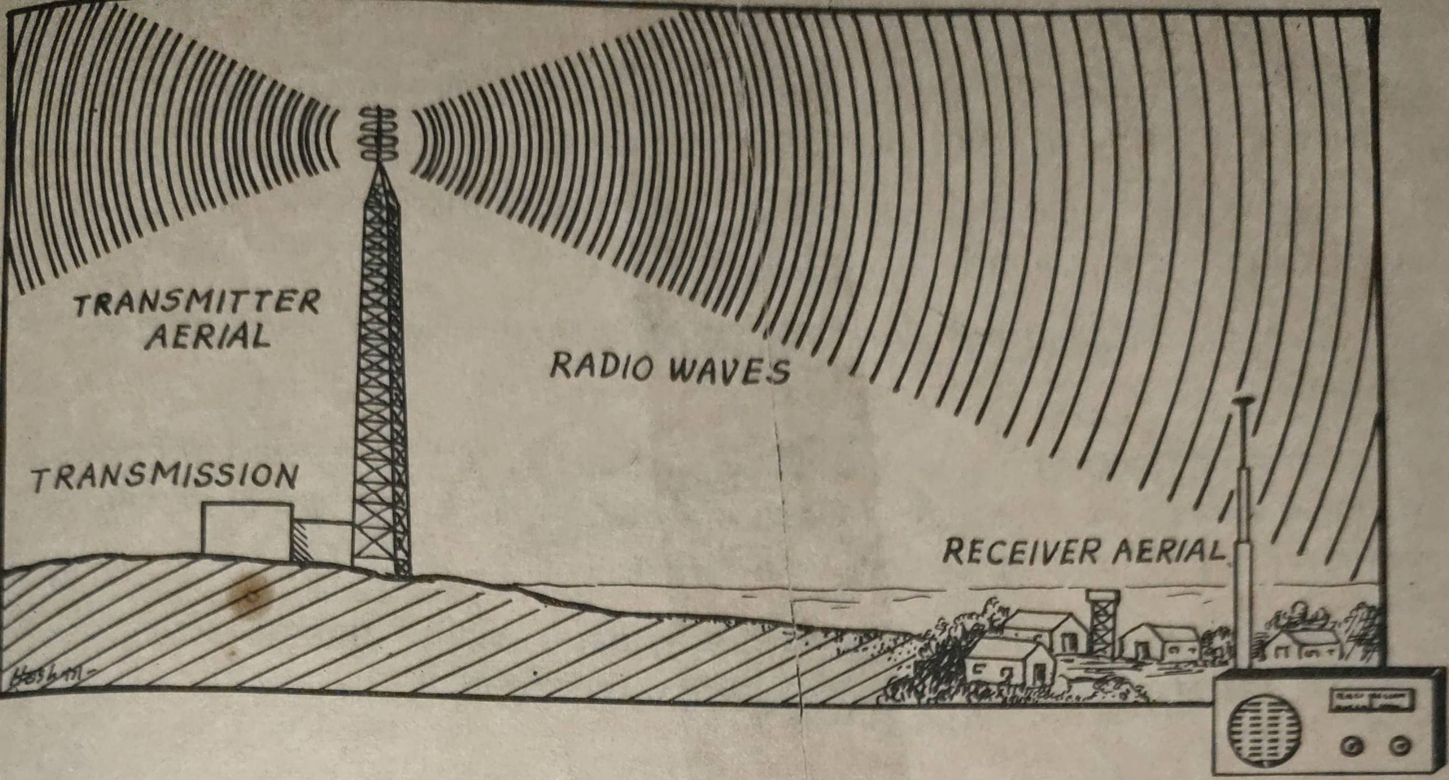
हाइड्रोजन बम क्या है?

परमाणु बम बन जाने के बाद वैज्ञानिक एक ऐसे बम के निर्माण की कल्पना करने लगे जो इससे कहीं अधिक शक्तिशाली हो। आखिर उन्होंने महान विनाशकारी हाइड्रोजन बम बना ही डाला। सबसे पहला हाइड्रोजन बम सन् 1952 में अमरीका के वैज्ञानिकों ने बनाया। यह बम परमाणु बम से 1000 गुना अधिक शक्तिशाली था। क्या तुम जानते हो कि हाइड्रोजन बम क्या है?

हाइड्रोजन बम नाभिकीय संगलन (Nuclear Fusion) की क्रिया पर आधारित है। नाभिकीय संगलन में हाइड्रोजन के चार नाभिकों को मिलाया जाता है जिससे हीलियम का एक नाभिक बनता है। इस क्रिया में बहुत अधिक ताप पैदा होता है। नाभिकीय संगलन की क्रियाएं सूर्य और दूसरे तारों में भी होती रहती हैं जिनसे अपार ऊर्जा पैदा होती रहती है।

हाइड्रोजन बम का खोल एक बहुत ही मजबूत मिश्र धातु (Alloy) से बनाया जाता है। इस खोल के अन्दर हाइड्रोजन के दो आइसोटोप ड्यूटीरियम और ट्राइटियम रखे जाते हैं। इसी खोल के अन्दर संगलन क्रिया शुरू करने के लिए एक परमाणु बम रखा जाता है। जब परमाणु बम का विस्फोट कराया जाता है तो लाखों डिगरी सेन्टीग्रेड का तापमान पैदा हो जाता है। इस उच्च तापमान पर ड्यूटीरियम और ट्राइटियम का संगलन शुरू हो जाता है। इस क्रिया से बहुत अधिक ऊष्मा पैदा होती है। यह क्रिया एक सेकिन्ड के दस लाखवें भाग में पूरी हो जाती है। इस क्रिया में हीलियम के नाभिक के अलावा न्यूट्रोन भी पैदा होते हैं जो यूरेनियम का विखंडन करते रहते हैं। इस कारण और भी ऊर्जा पैदा होती रहती है। यही कारण है कि यह बम बहुत विनाशकारी हो जाता है।

हाइड्रोजन बम का निर्माण अब तक अमरीका, रूस, इंग्लैंड, फ्रांस और चीन द्वारा किया जा चुका है। रूस ने सन् 1961 में जिस हाइड्रोजन बम का परीक्षण किया था उसकी विस्फोट शक्ति 58 मेगाटन टी०एन०टी० (TNT) के बराबर थी।



रेडियों तरंगें हमारे लिए किस प्रकार उपयोगी हैं?

आज हम अपने रेडियो या ट्रान्जिस्टर में जो भी कार्यक्रम सुनते हैं वे सब रेडियो तरंगों की ही देन हैं। इन तरंगों के जरिए ही संसार के किसी भी हिस्से में होने वाली घटना की खबर हम तक क्षणभर में पहुंच जाती है। संसार के सभी रेडियो स्टेशन इन्हीं तरंगों को प्रयोग में लाकर भांति-भांति के कार्यक्रम हम तक पहुंचाते हैं। अनेकों प्रकार के गाने, समाचार, नाटक, खेलों का आंखों देखा हाल, संगीत के मन मुग्ध करने वाले स्वर, सभी इन्हीं रेडियो तरंगों की सहायता से हम तक पहुंचते हैं। इन तरंगों के साथ सन्देशों को रेडियो ट्रांसमीटर से प्रसारित किया जाता है जो हमारे रेडियो और ट्रान्जिस्टरों द्वारा प्राप्त कर लिए जाते हैं। रेडियो तरंगों को अनेक संचरण व्यवस्थाओं में प्रयोग में लाया जाता है। हवाई अड्डे और उड़ते हुए हवाई जहाज से इन रेडियो तरंगों के द्वारा ही सम्पर्क रखा जाता है। आप हवाई अड्डे से उड़ते हुए हवाई जहाज तक कोई भी सन्देश आसानी से पहुंचा सकते हैं। इन सन्देशों द्वारा हवाई जहाज को बहुत सी दुर्घटनाओं से बचाया जा सकता है।

ये रेडियो तरंगें विद्युत-चुम्बकीय विकिरण हैं जो प्रकाश के वेग से चलती हैं। बाहरी अन्तरिक्ष में उड़ने वाले राकेट और उपग्रह जमीन से सम्पर्क इन्हीं तरंगों के माध्यम से रख पाते हैं। उपग्रहों की स्थिति, अन्तरिक्षयानों में बैठे हुए आदमियों से बातचीत, सब इन्हीं तरंगों के प्रयोग के द्वारा होता है। ये तरंगें वायु एवं निर्वात—दोनों माध्यम से होकर जा सकती हैं। पृथ्वी तथा जल के अन्दर ये तरंगें कुछ मीटर तक ही जा सकती हैं।

सागर में चलने वाले जहाज जब किसी दूसरे जहाज को कोई सन्देश भेजते हैं तो इन्हीं तरंगों की सहायता लेते हैं। प्रत्येक जहाज में रेडियो ट्रांसमीटर तथा रिसीवर लगे होते हैं जो एक जहाज का सन्देश दूसरे जहाज तक ले जाते हैं।

ब्रह्मांड में स्थित खगोलीय पिण्डों से जो रेडियो तरंगें अनवरत रूप से आ रही हैं उनकी जानकारी के लिए

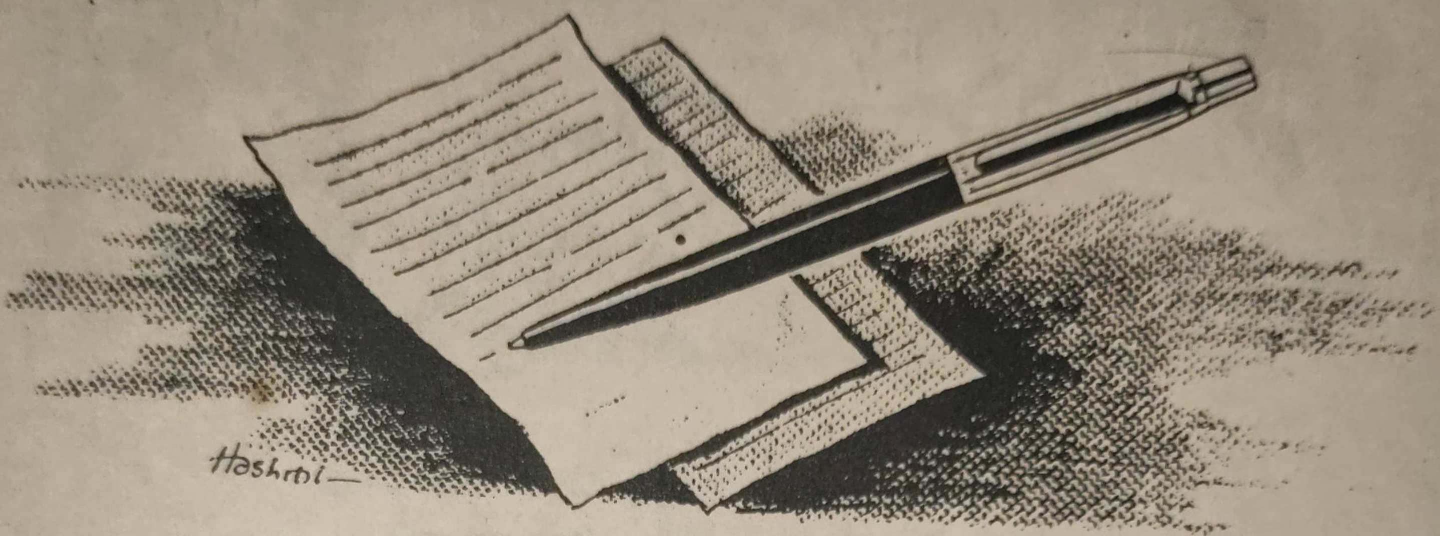
वैज्ञानिक तरह-तरह के रेडियो टेलिस्कोप प्रयोग में लाते हैं। इन टेलिस्कोपों की सहायता से यह पता लग जाता है कि आकाश में कौन से ऐसे ग्रह, नक्षत्र एवं तारे हैं जिनसे रेडियो तरंगें आ रही हैं।

रेडियो तरंगों का उपयोग पुलिस द्वारा सुरक्षा साधनों में भी किया जाता है। उनके पास ऐसे यन्त्र होते हैं जो चलती गाड़ियों से एक जगह से दूसरी जगह सन्देश भेज सकते हैं तथा सन्देश प्राप्त कर सकते हैं।

आग बुझाने वाले दमकल केन्द्रों द्वारा आग की दुर्घटनाओं में सहायता के लिए भी रेडियो तरंगों को प्रयोग में लाया जाता है।

इन्हीं तरंगों की सहायता से यातायात नियंत्रण भी किया जाता है। आज ऐसे-ऐसे यन्त्रों का विकास कर लिया गया है जो नियंत्रण-केन्द्र से ही चलती हुई कारों का वेग पता कर लेते हैं। आज के वैज्ञानिकों ने ऐसे-ऐसे उपग्रह बना लिए हैं जिनको रेडियो संचरण के प्रयोग में लाया जा रहा है।

अन्त में हम यह कह सकते हैं कि रेडियो तरंगों की सहायता से आज का विस्तृत संसार छोटा हो गया है क्योंकि हम आज कोई भी सन्देश दूर स्थित स्थानों तक क्षणभर में पहुंचा देते हैं।



बॉल-पॉइन्ट पेन का आविष्कार कैसे हुआ ?

बॉल-पॉइन्ट (Ball-point) पेन का प्रथम नमूना (Model) आज से लगभग 80 वर्ष पहले पेटेन्ट कराया गया था, लेकिन सन् 1943 तक आज जैसा सफल बॉल-पॉइन्ट पेन निर्मित न हो पाया था। उन्हीं दिनों अमरीका की वायु सेना ने एक विशेष प्रकार के पेन की माँग की जो वायुयान कर्मचारियों द्वारा उड़ते हुए हवाई जहाजों में प्रयोग किया जा सके। उनको एक ऐसे पेन की आवश्यकता थी, जो ऊँचाई पर उड़ते हुए हवाई ज़हाज में दबाव परिवर्तन के कारण स्याही न छोड़े। इस प्रकार का पेन केवल बॉल-पॉइन्ट पेन ही हो सकता है। इस मांग के बाद इस पेन का विकास किया गया। इसके बाद यह इतना प्रचलित हो गया कि आम लोग भी इसे प्रयोग में लाने लगे।

बॉल-पॉइन्ट पेन में धातु या प्लास्टिक का ढाँचा होता है। इसमें एक टोपी, स्प्रिंग, स्याही की रिफिल और रिफिल में लगी हुई धातु की एक छोटी सी गोली होती है। इसकी टोपी लिखने वाले बिन्दु को सुरक्षित रखती है। स्प्रिंग की सहायता से लिखने वाले बिन्दु को ऊपर-नीचे किया जाता है। स्याही का रिफिल पौलीथीन का बना होता है, जिसमें स्याही भरी होती है।

बॉल-पॉइन्ट पेन में प्रयोग होने वाली स्याही में विशेष पदार्थ मिले होते हैं, जिससे यह बहुत गाढ़ी हो जाती है। यह स्याही पेन में से लीक (Leak) नहीं करती। इसका बहाव ऐसा होता है जो बिना टूटी हुई रेखाएं खींचता है।

बॉल-पॉइन्ट पेन के हमें कई लाभ हैं। इसके प्रयोग में दवात की आवश्यकता नहीं होती और न ही स्याही को सुखाने के लिए सोखता (Blotting paper) की आवश्यकता होती है। इस पेन से तेजी के साथ लिखा जा सकता है। इसकी स्याही कागज पर फैलती नहीं है और न ही इसके लिखे अक्षरों पर पानी का प्रभाव पड़ता है। इसके प्रयोग के कुछ नुकसान भी हैं। इससे पेन की भांति अक्षरों को इच्छानुसार मोटा-पतला नहीं कर सकते। इसके द्वारा लिखने पर हाथ को अधिक दबाव लगाना पड़ता है इसलिए लिखते-लिखते आदमी जल्दी थक जाता है।



पहिये का आविष्कार कैसे हुआ ?

पहिये का आविष्कार मनुष्य के लिये सबसे बड़ा वरदान सिद्ध हुआ है। आधुनिक यातायात के लगभग सभी साधनों में पहिये का इस्तेमाल होता है। रेल, बस, ट्रक, कार, हवाई जहाज, स्कूटर, साइकिल, रिक्शा, बैलगाड़ी आदि सभी वाहन पहिये की मदद से ही चलते हैं। पहिये की सहायता से अल्प समय में ही हम लम्बी-लम्बी दूरियां तय कर लेते हैं। पहिये के बिना इन सभी वाहनों का चलना असंभव था।

आरंभ में मनुष्य स्वयं ही बोझा ढोता था। बाद में बोझा ढोने के लिए उसने बैल, गधा, घोड़ा और ऊंटों को पालतू बनाकर इस्तेमाल करना शुरू किया। धीरे-धीरे मनुष्य ने लकड़ी के तख्तों को जानवरों की सहायता से जमीन पर घसीट कर बोझा ढोना शुरू किया। बहुत लंबे समय के बाद किसी व्यक्ति ने पेड़ के किसी तने में से गोल चकत्ती काटी और उसके केन्द्र पर छेद कर दिया। यही विश्व का सबसे पहला पहिया था। पहिये के अनुसंधान के बाद पेड़ के तने से बने दो पहियों को एक धुरे (Axle) के साथ जोड़कर एक लकड़ी के तख्ते के नीचे लगा दिया गया। इस प्रकार संसार की प्रथम बेडौल (Crude) गाड़ी का निर्माण हुआ। इस गाड़ी में पहिया और धुरा दोनों ही साथ-साथ घूमते थे। प्राप्त प्रमाणों के अनुसार पहियों का निर्माण प्राचीन मैसोपोटामिया (आज का ईराक) के लोगों ने ईसा से 3500 से 3000 वर्ष के बीच में कियां था। ये पहिये दो प्रकार के थे। एक गाड़ी का पहिया और दूसरा कुम्हार का बर्तन बनाने का पहिया।

पहिये के इस्तेमाल में अगला सुधार यह हुआ कि धुरे को स्थिर कर दिया गया। अब केवल पहिये ही घूमते थे। पहिये वाली गाड़ियों में पहले बैलगाड़ी, लड़ाई के रथ तथा चार पहिये वाली छकड़ा गाड़ियों का विकास हुआ। धीरे-धीरे पहियों में अरे (Spoke) लगाए जाने लगे। अरे-लगे पहिये का आविष्कार एशिया में ईसा से लगभग 2000 वर्ष पहले हुआ। इससे पहियों का वजन काफी कम हो गया।

समय बीतता गया और पहियों के निर्माण में अनेकों सुधार होते गए। आज तो लोहे से बने पहिये, जिन पर रबर के टायर और ट्यूब लगे होते हैं, सभी जगह इस्तेमाल होने लगे हैं। यह कहना अनुचित न होगा कि आज पहिये के सहारे ही संसार तेजी से उन्नति के पथ पर आगे बढ़ता जा रहा है।



काफी पीने की शुरुआत कैसे हुई?

काफी ताज़गी पैदा करने वाला एक पेय है। आज संसार के सभी देशों में लोग इसे बड़े चाव से पीते हैं। एक प्याला काफी पीते ही आदमी में चुस्ती और ताजगी आ जाती है। काफी के अन्दर कैफीन (Caffeine) नामक पदार्थ होता है जो थकावट दूर करता है, नींद भगाता है और चुस्ती पैदा करता है। क्या तुम जानते हो कि काफी पीने का चलन कैसे शुरू हुआ?

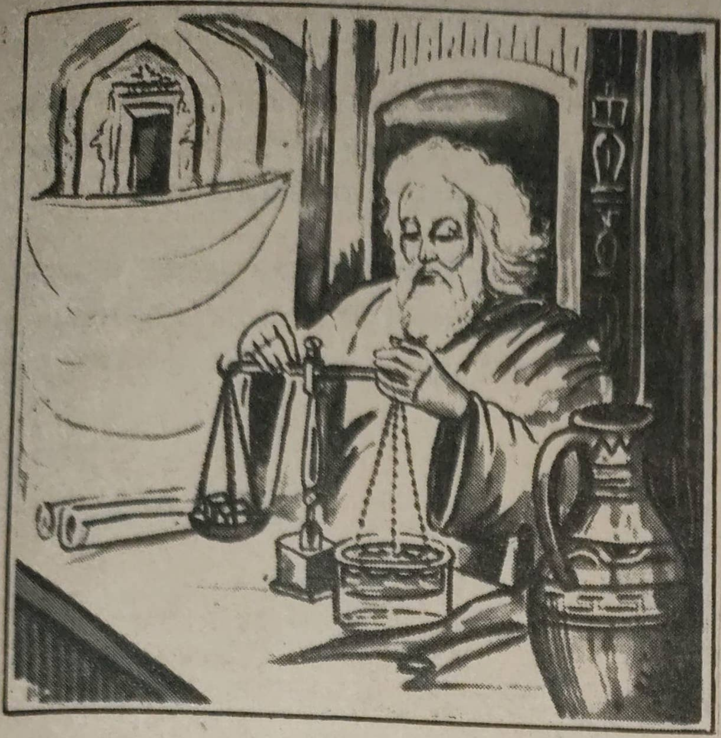
काफी की शुरुआत की कहानी बड़ी दिलचस्प है। बहुत पुरानी बात है कि अरेबिआ (Arabia) के कालदी (Kaldi) नामक गड़रिये ने एक दिन बड़ी ही विचित्र घटना देखी। उसकी भेड़-बकरियां एक सदाबहार पौधे के लाल फलों को खाकर इधर-उधर दौड़ने और कूदने लगीं। वे बच्चों की तरह नटखट हो गईं। उसने इनको देखकर निश्चय किया कि वह भी इस लाल फल को खाकर देखेगा। जब उसने यह लाल फल खाया तो वह भी एकदम तरोताजा महसूस करने लगा। उसने इस फल की बात ऐबोट (Abbot) नामक भिक्षु (Monk) को बताई। जब ऐबोट ने इस फल को खाया तो उस पर भी ऐसा ही प्रभाव हुआ। उसने इस लाल फल को पीस कर और पानी में मिलाकर मठ के दूसरे व्यक्तियों को पिलाया। इसे पीकर उन्हें भी एक विचित्र ताजगी और फुर्ती का अनुभव हुआ। यह फल काफी के पौधे का ही था।

इस कहानी की सत्यता के विषय में तो कुछ नहीं कहा जा सकता, लेकिन यह सच है कि अरेबिया के लोग प्राचीन काल से ही काफी पीते थे। सत्रहवीं सदी में काफी पीने का चलन इंग्लैंड में भी शुरू हो गया था और सन् 1650 में आक्सफोर्ड में विश्व का पहला काफी हाउस(Coffee House)खोला गया था। इसके बाद विश्व के दूसरे देशों में भी काफी पीने की शुरुआत हो गई थी।

काफी एक सदाबहार पौधें के बीजों से प्राप्त की जाती है। साधारणत: इसका पौधा लगभग 4½ मीटर ऊंचा होता है, लेकिन काफी के बगीचों में इस पौधे को 2 मीटर से अधिक नहीं बढ़ने दिया जाता है। जब यह पौधा तीन-चार साल का हो जाता है तो इस पर पहली बार फूल आते हैं। इस पर जो फल आता है वह पहले हरे रंग का होता है लेकिन छ:-सात महीने में पक कर लाल हो जाता है। इस फल से बीजों को निकाल लिया जाता है। इन बीजों को भूना (Roast) जाता है। इसके बाद इन बीजों को पीस लिया जाता है। यही पाउडर काफी के रूप में बाजार में बिकता

है। इस पाउडर से अलग-अलग तरह से पेय तैयार किया जाता है। कुछ लोग काली काफी पीते हैं तो दूसरे इसमें दूध, पानी और चीनी के साथ उबाल कर पेय बना कर पीते हैं। आजकल ठंडी काफी का चलन भी काफी बढ़ गया है।

एक प्याली काफी में लगभग 120 मिलीग्राम कैफीन होता है। यह एक उत्तेजक पदार्थ है जो ताज़गी देता है। सोने से पहले यदि काफी पी ली जाए तो कई घंटे तक इसी पदार्थ के कारण नींद नहीं आती। संसार में सबसे अधिक काफी का उत्पादन ब्राजील में होता है। दूसरा स्थान कोलम्बिया का है। इसके अतिरिक्त अफ्रीका, अमरीका और भारत सहित एशिया के कई देशों में भी क़ाफी के पौधे उगाए जाते हैं।



आर्कमिडीज ने सोने के मुकुट में मिलावट का पता कैसे लगाया ?

आर्किमिडीज़ अपने समय के महान् वैज्ञानिक थे। आज भी उनका नाम बड़े आदर से लिया जाता है। न्यूटन से पहले उनकी बराबरी करने वाला कोई दूसरा वैज्ञानिक पैदा नहीं हुआ था।

इनका जन्म ईसा से 287 वर्ष पूर्व यूनान के साइराक्यूज नगर में हुआ था। इनकी शिक्षा-दीक्षा अलेक्जेण्ड्रिया में हुई। इनके गुरु यूक्लिड जैसे महान् व्यक्ति के शिष्य रह चुके थे। इनके विषय में बहुत सी बातें प्रसिद्ध हैं।

एक बार आर्किमिडीज़ अपनी एक खोज की खुशी के कारण राज दरबार में नंगे ही भागे चले गए थे। उनके जीवन की यह घटना बड़ी ही दिलचस्प है। साइराक्यूज के राजा हियरों (Hieron) ने किसी सुनार से एक सोने का मुकुट बनवाया। मुकुट बहुत ही सुन्दर था। लेकिन राजा को यह शक हो गया कि सुनार ने इसमें कुछ मिलावट की है। राजा इसकी सुन्दरता से इतना प्रभावित था कि मुकुट को बिना तोड़े ही वह मिलावट का पता लगाना चाहता था। उसने अपने शहर के प्रसिद्ध वैज्ञानिक आर्किमिडीज़ से कहा कि मुकुट को बिना तोड़े-फोड़े मिलावट का पता लगाया जाए।

आर्किमिडीज़ के लिए यह एक नई समस्या थी। लेकिन उन्हें इस समस्या का अचानक ही हल मिल गया। एक दिन जब वह नहाने के लिए पानी के टब में घुसे तो उसमें से कुछ पानी नीचे गिर गया। वे जब टब से बाहर निकले तो उन्होंने देखा कि उसमें पानी कम हो गया है। बस, वे खुशी के मारे 'यूरेका-यूरेका (Eureka-Eureka)' चिल्ला पड़े। यूरेका का अर्थ है —पता लग गया। नहाने के टब से वे नंगे ही सड़कों पर यूरेका-यूरेका चिल्लाते हुए दौड़ पड़े और राज दरबार तक जा पहुंचे। नंगेपन को प्राचीन यूनान में आज की तरह बुरा नहीं समझा जाता था। इसी परीक्षण के आधार पर उन्होंने मुकुट में मिलावट का पता लगाया।

उन्होंने एक बर्तन को पानी से पूरा भर लिया और फिर उसमें मुकुट डुबा दिया। बर्तन से गिरे पानी को नाप लिया। बर्तन को फिर पानी से भरा और उसमें मुकुट के भार के बराबर सोना डुबाया। गिरे हुए पानी को नापकर उन्होंने देखा कि यह पहले जितना नहीं है। इससे साबित हो गया कि सुनार ने मिलावट की है। इसी खोज के आधार पर उन्होंने वस्तुओं का आपेक्षिक घनत्व (Relative Density) निकालने का तरीका निकाला।

इतना ही नहीं आर्किमिडीज ने वस्तुओं के तैरने का सिद्धांत(Law of Floatation)निकाला। उन्होंने लीवर (Lever) का सिद्धांत दिया। लीवर की सहायता से वे पानी से भरे एक जहाज को किनारे तक उठा लाए। उन्होंने पाई ग्(Pi) का मान ज्ञात किया। इस प्रकार आर्किमिडीज़ ने बहुत से नएं आविष्कार किए।

बाद में जब यूनान रोम के कब्जे में आ गया तो उन्हें बहुत दुख हुआ। एक दिन वे बालू पर बैठे-बैठे गणित की कुछ आकृतियां बना रहे थे तभी रोम के एक सिपाही ने उन्हें अपने साथ चलने की आज्ञा दी। उनके मना करने पर उस सिपाही ने उनकी हत्या कर डाली। उनकी मृत्यु ईसा से 212 वर्ष पूर्व हुई। मृत्यु के बाद उनके शरीर को बडे आदर के साथ दफनाया गया।



चाय पीने की शुरुआत कब हुई?

चाय पीने का प्रचलन आज सारी दुनिया में है। बाजार में बिकने वाली डिब्बों में बंद चाय एक प्रकार के सदाबहार पौधे (Evergreen Plant) की पत्तियों से तैयार की जाती है। इसे चाय का पौधा कहते हैं। क्या तुम जानते हो कि चाय पीने की शुरुआत कहां हुई?

चाय पीने की शुरुआत आज से लगभग 4000 वर्ष पहले चीन में हुई। यूरोप में चाय की शुरुआत केवल 300 वर्ष पहले ही हुई। 18वीं सदी के शुरू में यूरोप और उत्तरी अमरीका में चाय के बगीचे लगाने का काम शुरू हुआ। इन देशों में चाय की मांग के कारण चीन में चाय का व्यापार बहुत बढ़ गया। इंग्लैंड के लोगों ने देखा कि आसाम के जंगलों में चाय के पौधे अपने-आप ही उगते रहते हैं और इन पौधों से बनाई गई चाय का स्वाद भी काफी अच्छा है तो इस बात को देखकर उन्होंने भारत में चाय के बगीचे लगाने शुरू किए। इसके बाद लंका में चाय की खेती शुरू हुई। सन् 1940 तक लंका में इतनी चाय पैदा होने लगी कि यह देश चीन से भी आगे निकल गया।

चाय की मुख्य रूप से दो किस्में होती हैं। एक वह जो चीन में पैदा होती है और दूसरी जो भारत और लंका में पैदा होती है। चीन में पैदा होने वाला पौधा 1 मीटर तक लम्बा होता है जबकि हमारे देश में पैदा होने वाला पौधा 6 मीटर तक बढ़ सकता है। अब प्रश्न उठता है कि पौधों से चाय किस प्रकार प्राप्त की जाती है।

जब चाय का पौधा तीन साल का हो जाता है तब इसकी पत्तियां पहली बार चुनने लायक होती हैं। पौधे से केवल कलियां और बहुत छोटी पत्तियां ही चुनी जाती हैं। पत्तियां चुनने का काम औरतें करती हैं। उनकी पीठ पर टोकरियां लटकी रहती हैं। इन्हीं टोकरियों में चाय की पत्तियों को चुना जाता है। इन पत्तियों से दो प्रकार की चाय

तैयार की जाती है। हरी चाय (Green leaves) और काली चाय (Black leaves)। हरी चाय तैयार करने के लिए पत्तियों को दबाकर सुखा लिया जाता है और डिब्बों में बन्द कर दिया जाता है।

काली चाय तैयार करने के लिए पत्तियों का खुल बतनों में दो दिन कुम्हलाने के लिए छोड़ दिया जाता है। कुम्हलाई पत्तियों को रोलरों से दबाकर खमीर उठाने के लिए छोड़ दिया जाता है। खमीर उठने पर इन पत्तियों का रंग और गंध बदल जाती है। खमीर उठने के बाद पत्तियों को गर्म किया जाता है जिससे खमीर उठना बन्द हो जाता है। इन पत्तियों को एक बार फिर रोलरों से दबाया जाता है। इसके बाद गर्म कमरों में इन्हें सुखा लिया जाता है। अब इन पत्तियों की छंटाई की जाती है। बिना टूटी बड़ी-बड़ी पत्तियां एक जगह, टूटी पत्तियां दूसरी जगह और चूरा तीसरी जगह इकट्ठा कर लिया जाता है। इन तीनों को अलग-अलग डिब्बों में बन्द कर दिया जाता है। ये ही डिब्बे हमें बाजार में मिलते हैं। इनसे प्राप्त चाय को कई प्रकार से तैयार करके पेय के रूप में प्रयोग किया जाता है।

चाय की खेती मुख्य रूप से भारत, लंका, बर्मा, चीन और दक्षिण-पूर्व एशिया के देशों में की जाती है। भारत में दार्जिलिंग, आसाम, कश्मीर, कुमाऊँ, नीलगिरि आदि में चाय के बगीचे हैं। चाय भारत की प्रमुख निर्यात-सामग्री है। इंग्लैंड में चाय सबसे अधिक पी जाती है। औसतन वहां का एक आदमी एक साल में चार किलो चाय प्रयोग में लाता है जबकि अमरीका का एक आदमी केवल आधा किलो चाय ही इस्तेमाल करता है।



बिना उबला दूध जल्दी खराब क्यों हो जाता है ?

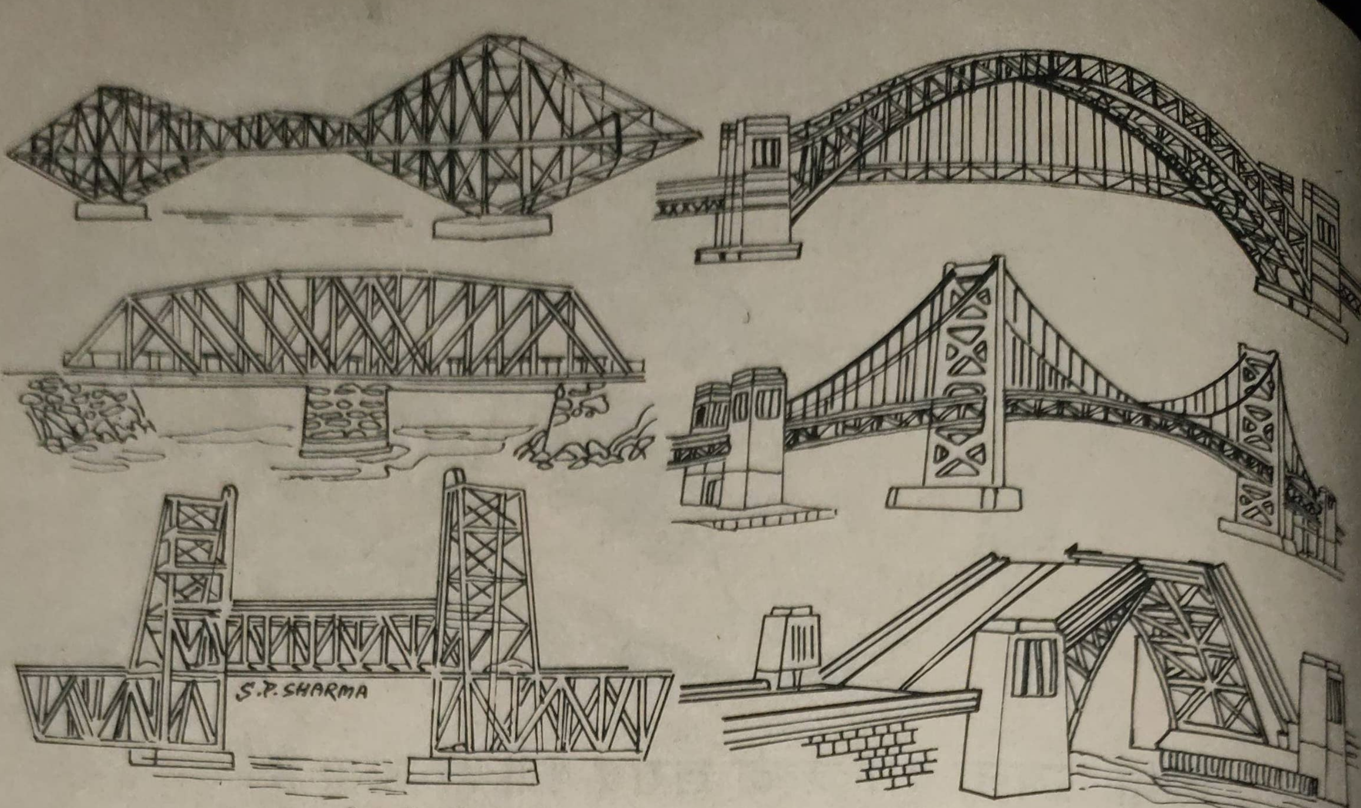
यह एक आम अनुभव की बात है कि यदि ताजा दूध कुछ देर तक न उबाला जाए तो वह फट जाता है। लेकिन दूध उबाल कर रखने पर कई घन्टों तक खराब नहीं होता। क्या तुम जानते हो ऐसा क्यों होता है?

ताज़े दुहे दूध में कई प्रकार के बैक्टीरिया होते हैं। जब दूध वायु के सम्पर्क में आता है तो इन बैक्टीरिया की कुछ ही समय में संख्या बहुत बढ़ जाती है। इन्हीं की वृद्धि के कारण दूध खट्टा हो जाता है। ये बैक्टीरिया दूध में मुख्य रूप से तीन प्रकार से आते हैं। भैंस या गाय, जिससे दूध निकाला गया है, यदि किसी रोग से पीड़ित है तो उस रोग के बैक्टीरिया दूध में आ जाते हैं। दूसरे, यदि दूध दुहने वाले व्यक्ति के कोई छूत की बीमारी है तो उस व्यक्ति से दूध मे बैक्टीरिया आ सकते हैं। तीसरे, दूध दुहने से पहले थनों को धोने के लिए प्रयोग में लाए गए पानी में भी बैक्टीरिया हो सकते हैं। यही बैक्टीरिया तेजी के साथ अधिक संख्या में पैदा होकर दूध को खट्टा कर देते हैं।

दूध को अधिक उबालने से भी उसके पोषक तत्व नष्ट हो जाते हैं। दूध को खराब होने से बचाने का सबसे उत्तम तरीका सन् 1860 में फ्रान्स के वैज्ञानिक लुइस पैस्च्योर (Louis Pasteur) ने खोजा था। इस तरीके को उनके नाम पर पास्तेरीकरण (Pasteurization) कहते हैं। बाजार में बिकने वाले मक्खन और दूध के पैकिटों पर आमतौर पर पैस्चराइज्ड बटर या मिल्क लिखा होता है। इस दूध और मक्खन को पास्तेरीकरण करके बन्द किया जाता है। अब प्रश्न उठता है कि पास्तेरीकरण क्या है?

पास्तेरीकरण की क्रिया में दूध, शराब, मक्खन आदि जैसे खराब होने वाले पदार्थों को किसी निश्चित तापमान एवं निश्चित समय तक गर्म करके बैक्टीरिया को नष्ट कर दिया जाता है। यदि दूध को 72°C तक केवल 15 सेकिण्ड तक गर्म करके ठंडा कर दिया तो भी दूध में उपस्थित बैक्टीरिया मर जाते हैं। इस तरीके से दूध को खट्टा करने वाले बैक्टीरिया तो मर ही जाते हैं साथ ही साथ तपेदिक और दूसरे रोग पैदा करने वाले बैक्टीरिया भी मर जाते हैं। इस प्रकार गर्म किए हुए दूध को बिना खराब हुए अधिक समय तक रखा जा सकता है।

आजकल पास्तेरीकरण के लिए पेय पदार्थों पर गामा किरणों या बीटा किरणें (Gamma rays or Beta rays) डालकर भी बैक्टीरिया नष्ट कर दिए जाते हैं।



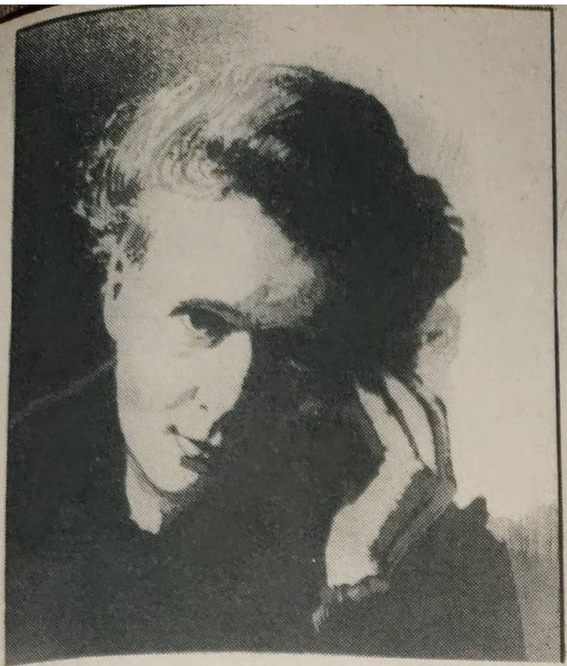
पुलों के निर्माण का प्रारम्भ कैसे हुआ ?

सम्भवतः विश्व के सबसे पहले पुल का निर्माण प्रकृति ने किया था। किसी आँधी या तूफान के कारण कोई पेड़ किसी बहती धारा के आर-पार गिर गया। वहाँ से गुजरने वाला व्यक्ति इस पेड़ पर चढ़कर धारा के दूसरे किनारे पहुँच गया। इस प्रकार उसने नदी पार करने का तरीका ढूँढ़ निकाला। इसके बाद उसने जानकर किसी पेड़ को काटकर सही स्थिति में नदी के आर-पार रख दिया जो नदी पार करने का साधन बना। इसी को प्रथम पुल का नाम दिया गया। लकड़ी से बने ऐसे पुलों का इस्तेमाल काफी समय तक होता रहा।

ऐतिहासिक तथ्यों के अनुसार ईसा से 2230 वर्ष पहले बेबीलोन (Babylon) की यूफ्रेटीज़ (Euphrates) नदी पर लकड़ी के शहतीरों (Beams) से प्रथम पुल का निर्माण किया गया। इसके बाद ईसा से 600 वर्ष पूर्व इटली की आनिओ (Anio) नदी पर पत्थरों से पुल बनाया गया। धीरे-धीरे पुलों की निर्माण कला में सुधार होते गए। सन् 1779 में इंगलैंड की सेवर्न (Severn) नदी पर प्रथम लोहे का पुल बनाया गया। सन् 1887 में लोहे और कंकरीट (Concrete) के पुल का निर्माण जर्मनी की राइन (Rhine) नदी पर किया गया। इसके बाद तो पुल निर्माण की कला में अनेकों सुधार हुए।

अब तो बहुत लंबे-लंबे पुलों का निर्माण होने लगा है। आमतौर पर आधुनिक पुलों को चार वर्गों में बाँटा जाता है। ये हैं: 1. गर्डरों से बने पुल; 2. लोहे, ईंटों और कंकरीट से बने आर्क (Arched) पुल; 3. लटकने वाले पुल (Suspension Bridges) और 4. खिसकने वाले पुल (Movable Bridges)। ऊपर के चित्र में कुछ पुल दिखाए गए हैं। आज बड़ी-बड़ी नदियों पर भी पुल बनने लगे हैं। ऐसे विशाल पुलों का निर्माण आज एक आम बात हो गई है जिनकी एक मंजिल पर बस, कार, तांगा आदि चलते हैं और दूसरी मंजिल पर रेलगाड़ी चलती है।

संसार का सबसे लम्बा पुल इंगलैंड का हम्बर एस्चुअरी ब्रिज (Humber Estuary Bridge) है। इसकी लम्बाई 1410 मीटर है। इसके निर्माण में 670 लाख पौन्ड का खर्चा आया था। संसार का सबसे चौड़ा पुल सिडनी हारबर ब्रिज (Sydney Harbour Bridge) आस्ट्रेलिया में है। इसकी लम्बाई 502.9 मीटर और चौड़ाई 48 मीटर है। अमरीका की अरकन्सास (Arkansas) नदी पर बने पुल की पानी की सतह से ऊंचाई 321 मीटर है। दुनिया में इससे ऊंचा कोई दूसरा पुल नहीं है।



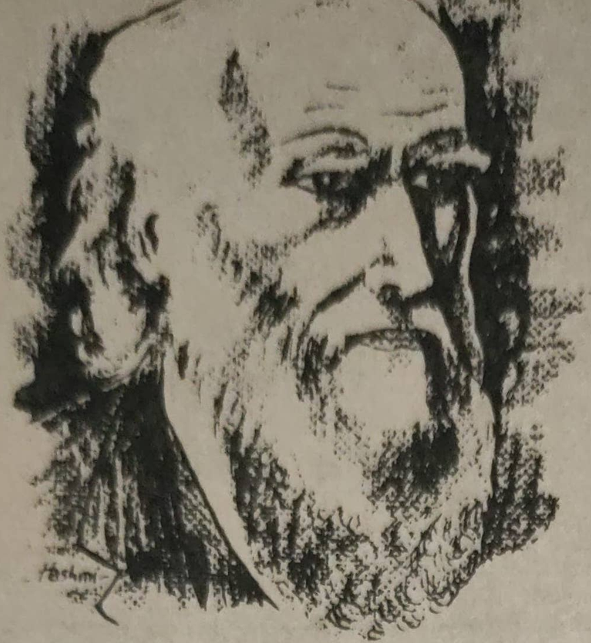
रेडियम का आविष्कार कैसे हुआ ?

रेडियम एक ऐसा विचित्र तत्व है जिससे सदा ही न दिखने वाली किरणें निकलती रहती हैं। इन क़िरणों को रेडियोधर्मी किरणें (Radio-active rays) कहते हैं और जिन तत्वों से ये किरणें निकलती हैं उन्हें रेडियो-सक्रिय तत्व (Radio-active element) कहते हैं। इन्हें अल्फा (α), बीटा (β) और गामा (γ) किरणें कहते हैं। इन किरणों के निकल जाने से रेडियम तत्व सीसा (Lead) धातु में बदल जाता है। एक ग्राम रेडियम का आधा भाग 1590 साल में सीसा धातु में बदलता है। शेष आधे ग्राम का आधा भाग अगले 1590 वर्षों में सीसा धातु में बदलता है। इस प्रकार यह क्रम चलता ही रहता है। रेडियम से निकलने वाली किरणें इतनी तीखी होती हैं कि उन बहुत सी चीजों के आर-पार निकल जाती हैं जिनमें से साधारण प्रकाश नहीं जा पाता। ये किरणें हमारे शरीर के आर-पार भी निकल जाती हैं। इनका उपयोग कैन्सर जैसे रोग के इलाज में किया जाता है। क्या तुम जानते हो कि रेडियम का आविष्कार किसने और कैसे किया?

रेडियम के आविष्कार का श्रेय पियरे क्यूरी और मैडम क्यूरी (Pierre Curie and Madam Curie) को जाता है। ये दोनों पति-पत्नी थे। रेडियम की खोज में इन दोनों ने बहुत ही परिश्रम किया। इसकी खोज की कहानी बड़ी दिलचस्प है।

सन् 1896 में हेनरी बेकेरल (Henri Becquerel) ने रेडियो-एक्टिविटी की खोज की और कहा कि यूरेनियम तत्व से एक प्रकार की अदृश्य किरणें निकलती हैं जो एक्स किरणों से भी शक्तिशाली होती हैं। सन् 1898 में मैडम क्यूरी और पियरे क्यूरी ने पता लगाया कि थोरियम (Thorium) तत्व से भी यही किरणें निकलती हैं। उसी वर्ष उन्होंने देखा कि यूरेनियम के पिच ब्लेन्ड (Pitch blende) नामक अयस्क से भी कुछ किरणें निकलती हैं। इस बात को देखकर उन्हें निश्चय हो गया कि पिच ब्लेन्ड में भी कोई रेडियो-सक्रिय पदार्थ है। बस फिर क्या था। वे दोनों पिच ब्लेन्ड से वह रेडियो-सक्रिय पदार्थ निकालने में जुट गए। उन्होंने बड़ी मेहनत और कठिनाई से पिच ब्लेन्ड प्राप्त किया। वे एक टिन के छप्पर के नीचे कड़ाहों में पिच ब्लेन्ड को गर्म करते रहते थे। उन्होंने आंधी और तूफान की कोई परवाह न की। रात और दिन वे अथक परिश्रम करते रहे। अन्त में कई टन पिच ब्लेन्ड में से वे 1/10 ग्राम रेडियम निकालने में सफल हुए। उन्होंने देखा कि यह तत्व यूरेनियम से करोड़ों गुना रेडियो-सक्रिय था।

शुद्ध रेडियम सफेद होता है। यह बड़ा भारी और सोने से हजारों गुना मूल्यवान होता है। संसार में शुद्ध रेडियम की मात्रा बहुत कम है। इससे निकलने वाली किरणें बड़ी घातक होती हैं। इसे लापरवाही से प्रयोग करने पर आदमी बुरी तरह जलकर जख्मी हो जाता है।



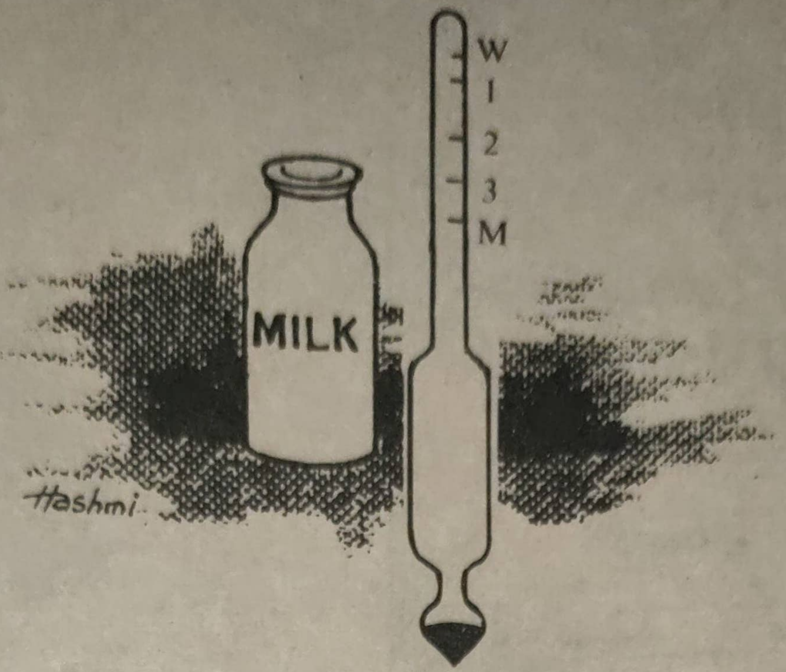
डार्विन का विकासवाद क्या है?

बहुत समय तक मनुष्य यह विश्वास करता रहा कि धरती के अलग-अलग जीवों की उत्पत्ति अलग-अलग रूपों में हुई है और इन रूपों में कोई भी परिवर्तन नहीं हुआ है। लेकिन मनुष्य की यह धारणा निर्मूल थी। चार्ल्स डार्विन प्रकृति-वैज्ञानिक (Naturalist) थे जिन्होंने यह बताया कि सभी जीवों का आज का रूप अमीबा नाम के एक सरल प्राणी से हुआ है। इसी प्राणी से करोड़ों वर्षों में जीवन के नए-नए रूप विकसित होते गए और उन्होंने धीरे-धीरे आज का रूप धारण कर लिया। इसी को हम डार्विन का विकासवाद (Theory of Evolution) कहते हैं।

चार्ल्स डार्विन का जन्म 1809 में हुआ था। उनकी शिक्षा मुख्य रूप से एडिनबरो विश्वविद्यालय (Edinburgh University) में हुई। जीव विज्ञान सम्बन्धी अध्ययनों में उनकी विशेष रुचि थी। जब वे 22 वर्ष के हुए तब उन्हें इंगलैण्ड के बीगल (Beagle) नामक समुद्री जहाज पर संसार की यात्रा करने का मौका मिला। यह जहाज विज्ञान सम्बन्धी अध्ययनों के लिए यात्रा पर निकला था। डार्विन इस जहाज पर पांच वर्षों तक बहुत से देशों में भ्रमण करते रहे। उन्होंने इस यात्रा के दौरान अनेकों जीव-जन्तुओं का अध्ययन किया। यात्रा से लौटने के बाद उन्होंने अपने अनुभवों को एक पुस्तक के रूप में प्रकाशित किया। इस पुस्तक का नाम उन्होंने 'ओरिजिन आफ स्पीसीज' (Origin of Species) रखा। सन् 1859 में इस पुस्तक का प्रथम संस्करण छपा। यह संस्करण छपते ही बिक गया।

इस पुस्तक में जीव विकास के विषय में यह बताया गया है कि मनुष्य और दूसरे प्राणियों का विकास एक ही पूर्वज से हुआ है। यह पूर्वज था एक कोशिकीय प्राणी अमीबा। धीरे-धीरे वातावरण के प्रभाव से पैदा होने वाले प्राणियों में परिवर्तन होते गए और सभी जीव आज के रूप में आ गए। डार्विन की इस पुस्तक ने जीव विकास सिद्धान्त के विषय में वैज्ञानिकों की धारणा पक्की करने में बहुत मदद की।

डार्विन ने एम्मा वेजवुड (Emma Wedgwood) नाम की महिला से शादी की थी। उनके पास काफी धन था इसलिए उन्हें अपनी जीविका के लिए कमाने की आवश्यकता नहीं थी। वे अपना सारा समय अध्ययन में ही बिताते थे। जीवन भर वे प्राणी विज्ञान की जटिल गुत्थियों को ही सुलझाते रहे। विज्ञान की सेवा करते हुए इस महान पुरुष का सन् 1882 में देहान्त हो गया। इनके चार पुत्र थे और चारों ही उच्च श्रेणी के वैज्ञानिक बने। इनमें से तीन तो रॉयल सोसाइटी ऑफ लन्दन के फैलो घोषित किए गए। आने वाली सदियां भी इस महान वैज्ञानिक को भुला नहीं पाएंगी।



दूध में पानी की मिलावट का पता कैसे लगाते हैं?

दूध में पानी की मिलावट का पता करने के लिये जिस यंत्र का प्रयोग करते हैं उसे लैक्टोमीटर (Lactometer) कहते हैं। यह कांच से बना एक बेलनाकार बर्तन होता है। इसके एक सिरे को गोलाकार कर देते हैं और दूसरे सिरे को एक पतली नलिका के रूप में लम्बा कर देते हैं। गोल हिस्से में थोड़ा सा पारा भर देते हैं ताकि यह आसानी से दूध में तैर सके। इसके बाद नली को बन्द कर दिया जाता है। इस प्रकार बने यंत्र को अब शुद्ध दूध में तैराया जाता है। इसकी नली जिस बिंदु तक दूध में डूबती है वहां चिन्ह अंकित करके एम (M) लिख दिया जाता है। अब इसे पानी में तैराया जाता है। पानी में यह कुछ अधिक डूबता है क्योंकि पानी दूध से हल्का होता है। जिस स्थान तक इसकी नली पानी में डूबती है वहां एक निशान लगाकर डब्ल्यू (W) लिख दिया जाता है। M और W के बीच में 3, 2, 1 अंक लिख दिए जाते हैं। इस प्रकार यह यंत्र दूध की शुद्धता पता करने के लिए तैयार हो जाता है।

दूध की शुद्धता की जांच करने के लिए इस यंत्र को दूध में तैराते हैं। यदि यह M निशान तक डूबता है तो दूध शुद्ध है और यदि M और W के बीच के किसी दूसरे चिन्ह तक डूबता है तो दूध में पानी की मिलावट है। यदि यह 3 वाले अंक तक डूबता है तो दूध 75% शुद्ध है। यदि यह 2 के निशान तक डूबता है तो दूध 50% शुद्ध है।

इस यंत्र से दूध की शुद्धता का काफी हद तक पता लग जाता है। लेकिन इसमें एक दोष भी है। यदि पानी मिलाए हुए दूध में इतना सपरेटा (Skimmed milk) मिला दिया जाए कि उसका घनत्व (भारीपन) शुद्ध दूध के बराबर हो जाए तो यह यंत्र धोखा दे जाएगा अर्थात् पानी और सपरेटा मिले हुए दूध में भी यह M चिन्ह तक डूबेगा। इससे जांच करने वाला व्यक्ति यही निष्कर्ष निकालेगा कि दूध शुद्ध है। इस प्रकार सपरेटा मिले हुए दूध की परख यह यंत्र नहीं कर सकता।



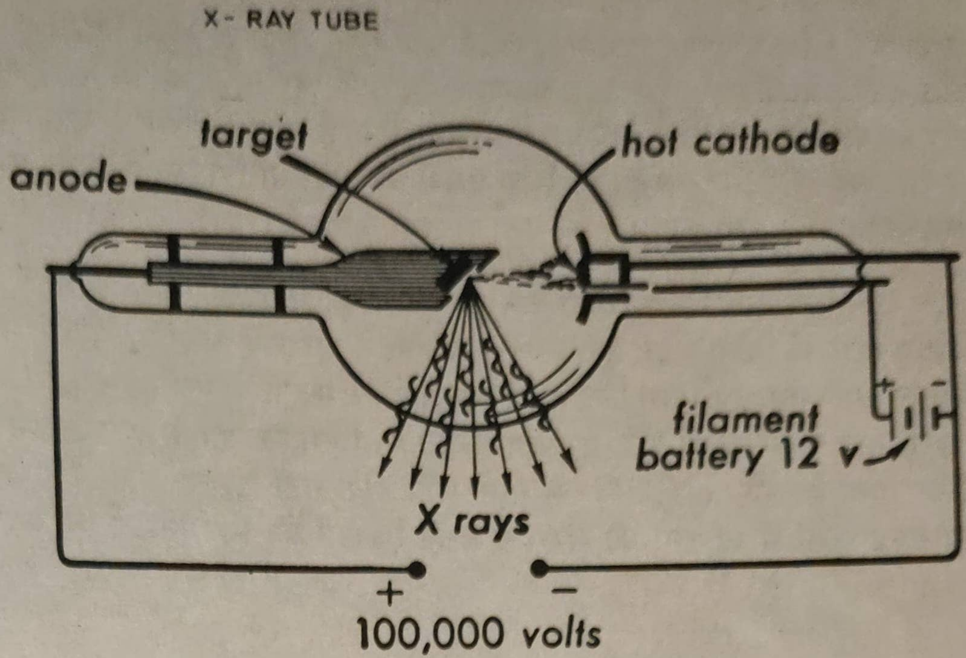
पीसा की मीनार झुकी हुई क्यों है?

इटली के पीसा (Pisa) नामक शहर में एक बहुत ही सुन्दर मीनार है जो जमीन पर सीधी खड़ी न होकर कुछ झुकी हुई है। इसका झुका होना ही लोगों के लिए एक कौतूहल का विषय रहा है। इसी कारण संसार के हजारों लोग हर वर्ष इस मीनार को देखने आते हैं। यह सफेद संगमरमर से बनी है। आधार (Base) पर इसकी दीवारों की मोटाई लगभग 4 मीटर है। इसकी आठ मंजिलें हैं और यह 55 मीटर ऊंची है। ऊपर जाने के लिए इसमें एक जीना (Stairway) है जिसमें 300 सीढ़ियां हैं। जब कोई आदमी इसकी ऊपरी मंजिल से चारों ओर देखता है तो उसे पीसा शहर और समुद्र का सुन्दर दृश्य दिखाई देता है। अब प्रश्न उठता है कि यह मीनार झुकी हुई क्यों है और झुकी होने पर भी यह गिर क्यों नहीं जाती?

यह मीनार लगभग 5 मीटर झुकी हुई है। यदि इसकी चोटी से कोई गेंद जमीन पर गिरायी जाये तो वह मीनार के आधार से 5 मीटर दूर गिरेगी। इस मीनार का निर्माण कार्य 1174 ई. में शुरू हुआ और 1350 ई. में पूरा हुआ। जब इसका निर्माण शुरू हुआ था उस समय किसी को भी उम्मीद न थी कि यह झुक जाएगी। लेकिन तीसरी मंजिल के निर्माण के समय ही यह झुकना शुरू हो गई। इसका कारण यह था कि इसकी नींव (Foundation) बालू युक्त जमीन पर रखी गयी थी। इसका एक भाग जमीन में धंस जाने से इसमें झुकाव आ गया। उस समय इसके निर्माण की योजना में कुछ परिवर्तन करके मीनार को पूरा बना दिया गया। पिछले 100 वर्षों में मीनार का झुकाव 30 सेमी० और भी बढ़ गया है।

अब प्रश्न उठता है कि यह मीनार गिर क्यों नहीं जाती। विज्ञान के एक सिद्धांत के अनुसार कोई भी वस्तु तब तक स्थिर रहती है जब तक कि उसके गुरुत्वकेन्द्र से खींची गई ऊर्ध्वाधर रेखा वस्तु के आधार से गुजरती है। गुरुत्व केन्द्र वस्तु का वह बिन्दु होता है जहां उसका समस्त द्रव्यमान (Mass) केन्द्रित रहता है। अभी तक इस मीनार के गुरुत्व केन्द्र से खींची गई ऊर्ध्वाधर रेखा आधार से गुजरती है इसलिए यह मीनार स्थिर है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि झुकते झुकते जैसे ही यह रेखा इसके आधार से बाहर निकल जायेगी यह मीनार गिर जायेगी। कुछ इंजीनियरों का विचार है कि झुकते-झुकते यह मीनार एक न एक दिन अवश्य ही गिर जायेगी।





एक्स किरणें (X-rays) क्या हैं?

एक्स किरणें प्रकाश की किरणों की तरह विद्युत चुम्बकीय तरंगें हैं। अन्तर केवल इतना है कि इनकी तरंग दैर्घ्य यानी तरंगों की लम्बाई (Wave length) प्रकाश किरणों की अपेक्षा बहुत कम होती है। तरंग दैर्घ्य कम होने के कारण इनकी आवृत्ति (Frequency) बहुत अधिक होती है। अधिक आवृत्ति के कारण इनमें निहित ऊर्जा बहुत अधिक हो जाती है। ये किरणें बड़ी सक्रिय होती हैं। ये हमारे मांस में होकर आर-पार निकल जाती हैं। ये प्रकाश के वेग से चलती हैं और इन्हें हम आंखों से नहीं देख सकते।

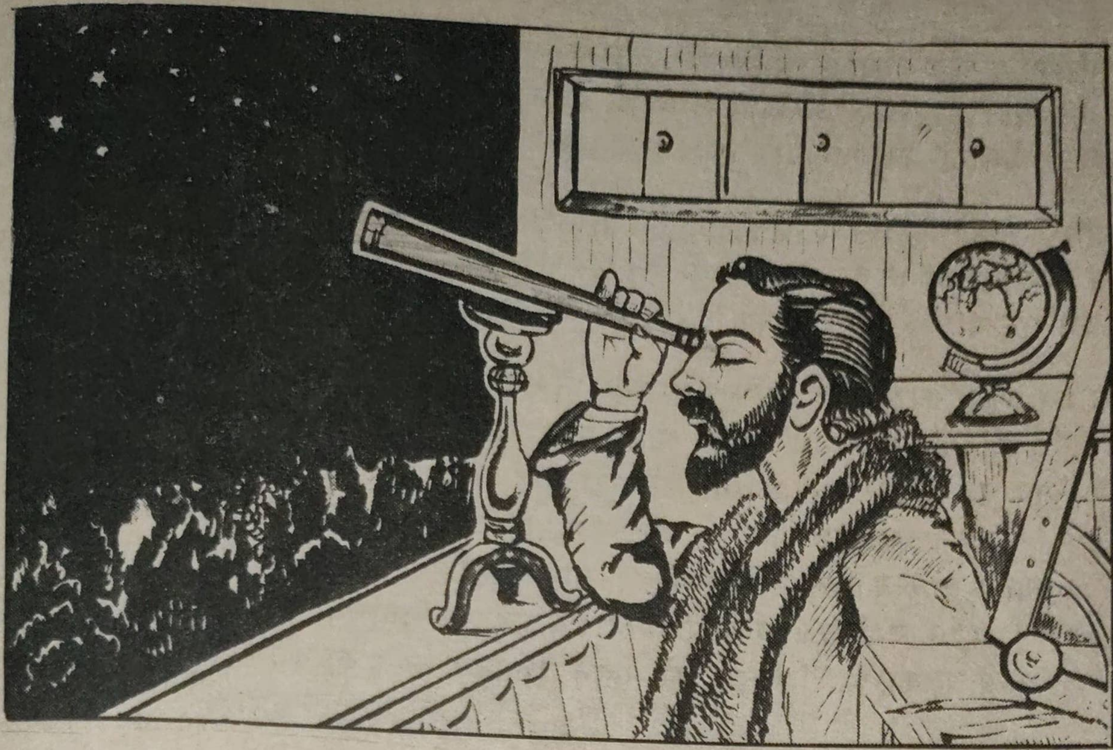
एक्स किरणों का आविष्कार जर्मनी के प्रोफेसर विल्हेल्म कॉनरॉड रोंटजन (Wilhelm Conrad Roentgen) ने सन् 1895 में किया था। उस समय तक इन किरणों के विषय में मनुष्य को कोई जानकारी नहीं थी। इसलिए इनका नाम एक्स यानी 'अज्ञात' किरणें रखा गया। रोंटजन के नाम पर इन किरणों को रोंटजन किरणें (Roentgen Rays) भी कहते हैं। इस महत्वपूर्ण आविष्कार पर सन् 1901 में भौतिकी (Physics) का प्रथम नोबेल पुरस्कार प्रो० रोंटजन को दिया गया था।

एक्स किरणें एक नलिका (Tube) में पैदा की जाती हैं जिसे एक्स-रे नलिका (X-ray tube) कहते हैं। (ऊपर का चित्र देखें) इस नलिका में निर्वात पम्प द्वारा हवा बाहर निकाल कर निम्न दबाव (Low Pressure) पैदा कर दिया जाता है। यह नलिका कठोर कांच से बनी होती है जो देखने में गोलाकार बल्ब जैसी लगती है। इस नली में दो इलेक्ट्रोड (Electrode) लगे होते हैं—ऋणात्मक इलेक्ट्रोड को कैथोड (Cathode) तथा धनात्मक इलेक्ट्रोड को एनोड (Anode) कहते हैं। जब इन इलेक्ट्रोडों को उच्च विभवान्तर (High Potential Difference) वाली विद्युत धारा से जोड़ दिया जाता है तो कैथोड से इलैक्ट्रोन निकलने लगते हैं। ये इलैक्ट्रोन जब ऐनोड के टंगस्टन (Tungsten) जैसे पदार्थ से टकराते हैं, तो एक्स किरणें पैदा होने लगती हैं जो नलिका से बाहर निकलती हैं। इन्हीं किरणों को मनुष्य बहुत से उपयोगों में लाता है।

एक्स किरणें कम घनत्व वाले पदार्थों—जैसे लकड़ी, कागज, चमड़ी, मांस और रक्त में से आर-पार निकल जाती हैं, लेकिन अधिक घनत्व वाले पदार्थों—जैसे हड्डी, लोहा, सीसा आदि में ये अवशोषित (Absorb)

हो जाती हैं। इस गुण का उपयोग करके डाक्टर लोग शरीर के अंदर टूटी या गली हुई हड्डियों, घुसी हुई गोली, गुर्दों की पथरी तथा फेफड़ों के विकारों का पता लगाते हैं। शरीर के विकार वाले भाग पर एक्स किरणें डाली जाती हैं और इनका चित्र एक फोटो फिल्म पर ले लिया जाता है। इसमें हड्डियों के स्थान पर काली छाया बनती है। इस चित्र की सहायता से टूटी हुई हड्डी, गोली या पथरी की उपस्थिति का पता लग जाता है। एक्स किरणों द्वारा फेफड़ों के चित्र लेकर क्षय रोग (T.B.) का पता लगाया जाता है।

इन किरणों की सहायता से कैंसर जैसे रोगों का भी इलाज किया जाता है। एक्स किरणों का उपयोग जासूसी विभाग द्वारा भी किया जाता है। इनकी सहायता से शरीर के अंदर छिपी सोने (Gold) जैसी मूल्यवान वस्तुओं का पता लगाया जाता है। एक्स किरणों की सहायता से भवनों या पुलों में लगे हुए लोहे के शहतीरों के अंदर उपस्थित दरारों, वायु के बुलबुलों आदि का पता लगाते हैं। एक्स किरणों के द्वारा कृत्रिम तथा वास्तविक हीरों में अंतर ज्ञात किया जाता है। सीप (Oyster) में मोती पड़ा है या नहीं, इसका पता भी एक्स किरणों से लगाते हैं। अनुसंधान प्रयोगशालाओं में मणिभों की संरचना इन्हीं किरणों की सहायता से की जाती है।



गैलिलियो को महान वैज्ञानिक क्यों कहा जाता है?

गैलिलियो गेलिली (Galileo Galilei) की गिनती विश्व के महान वैज्ञानिकों में की जाती है। वे सबसे पहले व्यक्ति थे जिन्होंने स्वयं सत्य का पता लगाकर सैंकड़ों वर्ष पहले लिखी धार्मिक पुस्तकों के कथनों को गलत सिद्ध कर दिखाया।

गैलिलियो का जन्म इटली में सन् 1564 में हुआ था। बचपन से ही विज्ञान सम्बन्धी बातों में उनकी बड़ी रुचि थी। वे विज्ञान सम्बन्धी बहुत से खिलौने बनाया करते थे। प्रकृति की हर वस्तु को बड़े ही गौर से देखने की उनकी आदत थी। कहा जाता है कि जब वे 17 वर्ष के थे तो अपने शहर पीसा के गिरजाघर में गए। शाम का वक्त था। तभी गिरजाघर के पादरी ने जंजीर से लटके लैम्प को जलाया। जलाने के बाद लैम्प आगे-पीछे झूलने लगा। लैम्प के ये झोंके छोटे होते जा रहे थे। गैलिलियो ने देखा कि झोंका चाहे बड़ा हो या छोटा, लेकिन सभी झोंकों में लगने वाला समय बराबर था। उन दिनों घड़ी तो थी नहीं। वे किस प्रकार इस सत्य का पता लगाते? तभी उन्हें एक युक्ति सूझी। उन्होंने सोचा कि नब्ज की हर धड़कन में समान समय लगता है। उन्होंने अपनी नब्ज से हर झोंके का समय ज्ञात किया और उनकी धारणा सत्य सिद्ध हुई। इस आविष्कार के आधार पर ही दीवार की पेन्डुलम घड़ियों का विकास हुआ।

गैलिलियो 23 वर्ष की उम्र में पीसा विश्वविद्यालय में अध्यापक नियुक्त हुए। दो वर्ष बाद वे वहां के सर्वश्रेष्ठ लेक्चरर घोषित किए गए। उन्हीं दिनों की बात है, उन्होंने किसी धार्मिक पुस्तक में पढ़ा कि यदि किसी एक ही ऊंचाई से विभिन्न भार की दो वस्तुओं को गिराया जाए तो भारी वस्तु हल्की वस्तु की अपेक्षा जमीन पर पहले गिरेगी। उन्होंने इस कथन को गलत सिद्ध करके दिखाया। पीसा की झुकी मीनार (Leaning Tower of Pisa) से हजारों लोगों की भीड़ के सामने उन्होंने 100 पौन्ड और 1 पौन्ड के दो गोले एक साथ गिराए और लोगों को यह दिखाकर आश्चर्यचकित कर दिया कि दोनों गोले जमीन पर एक साथ पहुंचे।

गैलिलियो ही पहले व्यक्ति थे जिन्होंने एक सफल दूरबीन (Telescope) का आविष्कार किया। अपनी दूरबीन की सहायता से उन्होंने आकाश सम्बन्धी बहुत से रहस्यों का पता लगाया। इसी दूरबीन से उन्होंने बृहस्पति के उपग्रहों का पता लगाया। उन्होंने आकाश गंगा के तारों के विषय में भी बहुत से अध्ययन किए।

गैलिलियो ने कोपर्निकस (Copernicus) के विचारों की सत्यता की पुष्टि की। कोपर्निकस का कहना था कि पृथ्वी इस ब्रह्माण्ड का केन्द्र नहीं है। पृथ्वी सौर परिवार का सदस्य है। गैलिलियो ने कहा कि यह कथन एकदम सत्य है। पृथ्वी सूर्य के चारों ओर भ्रमण करती है। गैलिलियो ने इन विचारों को कई पुस्तकों में छपवाया।

अपने इन आविष्कारों और धार्मिक पुस्तकों के कथनों को झूठा सिद्ध करने के अभियोग में गैलिलियो को चर्च के अधिकारियों के सामने प्रस्तुत होना पड़ा। उस समय उनकी काफी उम्र हो गई थी। उनसे कहा गया कि यदि वह अपने सभी कथनों को झूठा कह दें तो उन्हें माफ किया जा सकता है। इस बात के लिए गैलिलियो पर बहुत दबाव डाला गया। लेकिन गैलिलियो ने झुककर कहा, "मैं आपके हाथों में हूं। ईश्वर जानता है सत्य क्या है, लेकिन पृथ्वी ही सूर्य के चारों ओर घूमती है।" इसके बाद सन् 1637 में गैलिलियो अन्धे हो गए और जनवरी 1642 में वे ईश्वर को प्यारे हो गए। वे एक ऐसे वैज्ञानिक थे जो सत्य की खोज में जीवन भर लगे रहे। इन्हीं सब बातों के कारण गैलिलियो को महान् वैज्ञानिक कहा जाता है।

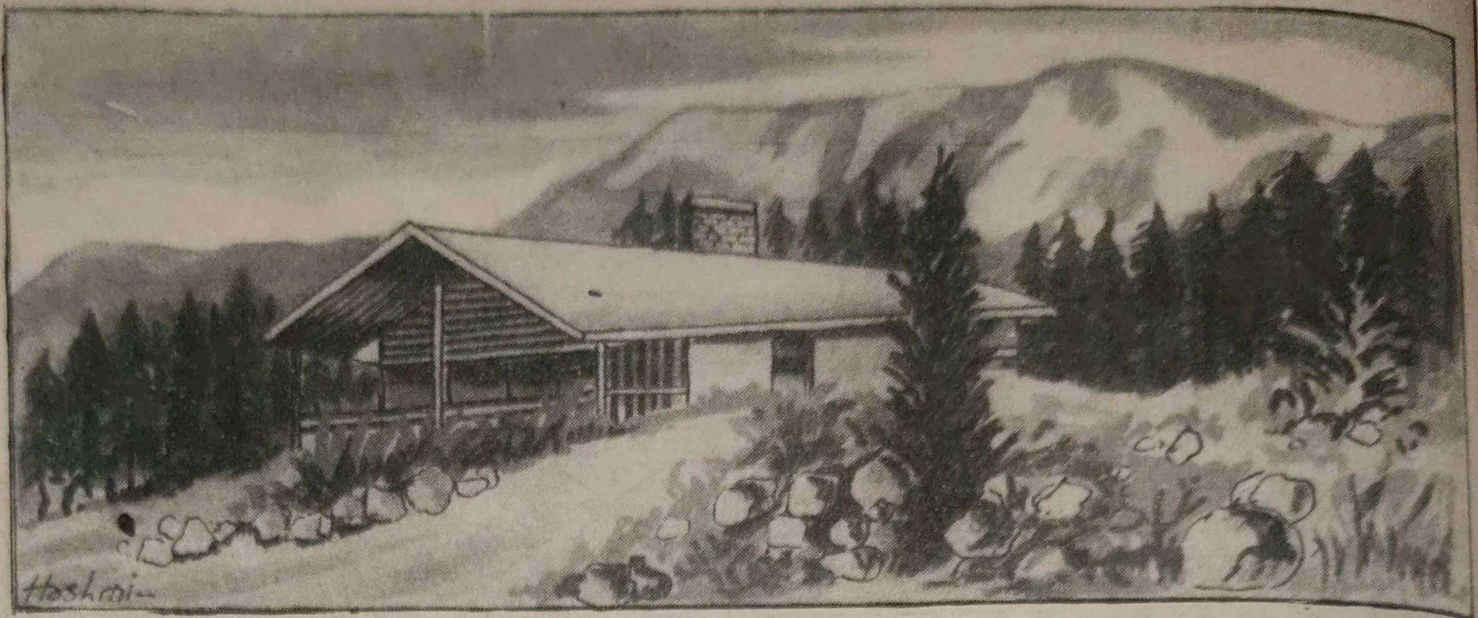


हिमखण्डों का निर्माण कैसे होता है ?

समुद्रों में तैरते हुए विशाल बर्फ के टुकड़ों को ही हिमखण्ड कहते हैं। इनका निर्माण ग्लेशियरों (glaciers) के टूटने से होता है। पहाड़ों और घाटियों से चलने वाले ग्लेशियर जब समुद्र में पहुंचते हैं तो समुद्र के पानी की लहरों और ज्वारों की टकराहट से इनके किनारे टूट-टूट कर विशाल हिमखण्डों में बदल जाते हैं। कुछ ग्लेशियर ऐसे भी होते हैं जो समुद्र में काफी दूरी तक जानें पर भी नहीं टूटते हैं और विशाल हिमखण्डों के रूप में समुद्र के पानी में तैरते रहते हैं।

हिमखण्डों का आकार अलग-अलग होता है। छोटे हिमखण्ड 5 से 6 मीटर तक लम्बे-चौड़े होते हैं लेकिन बहुत से ऐसे भी होते हैं जो सैकड़ों मीटर तक लम्बे-चौड़े होते हैं। कुछ हिमखण्ड तो आधे कि० मी० लम्बे-चौड़े होते हैं। बर्फ चूंकि समुद्र के पानी से हल्की होती है इसलिए ये हिमखण्ड पानी में तैरते रहते हैं। इनका लगभग दसवें भाग से अधिक पानी के ऊपर और 9/10 भाग से कम पानी के अन्दर डूबा रहता है। उदाहरण के लिए यदि किसी हिमखण्ड का 50 मीटर भाग समुद्र के पानी के ऊपर है तो 450 मीटर पानी के अन्दर होगा। इन हिमखण्डों में बर्फ की मात्रा बहुत अधिक होती है। कुछ हिमखण्डों में तो 200,000,000 टन तक बर्फ होती है।

ये हिमखण्ड भार अधिक होने के कारण स्वयं तो समुद्र के पानी में गति नहीं करते हैं, परंतु समुद्री धाराओं के कारण गतिशील हो जाते हैं। समुद्री जहाज़ों के लिए ये हिमखण्ड बड़े घातक होते हैं। इनसे टकराने से किसी भी जहाज को क्षति पहुंच सकती है। यद्यपि आधुनिक यंत्रों से इनकी उपस्थिति के विषय में समुद्री जहाजों को सूचना मिलती रहती है फिर भी कभी न कभी कोई दुर्घटना हो ही जाती है। 14 अप्रैल सन् 1912 को टाइटेनिक (Titanic) नामक यान एक हिमखण्ड से टकराकर चूर-चूर हो गया था। यह यान न्यूयार्क जा रहा था। इसमें उपस्थित 1513 लोगों को जान से हाथ धोना पड़ा। इसी प्रकार की एक दूसरी दुर्घटना 30 जनवरी 1959 को हुई। इसमें हन्स हेडटोफ्ट (Hans Hedtoft) नाम का यान दक्षिणी ग्रीनलैन्ड के एक हिमखण्ड से टकराकर चूर-चूर हो गया था।



घाटियां कैसे बनती हैं?

पहाड़ों के बीच समतल या ऊबड़-खाबड़ लम्बे-चौड़े स्थानों को घाटी (Valley) कहा जाता है। इन्हीं स्थानों पर कुछ लोग मकान बनाकर रहने लगते हैं। संसार के लगभग सभी पहाड़ों के बीच में इस तरह की घाटियां मिलती हैं। काश्मीर हमारे देश की एक सुन्दर घाटी है। क्या तुम जानते हो कि घाटियां किस प्रकार बनती हैं?

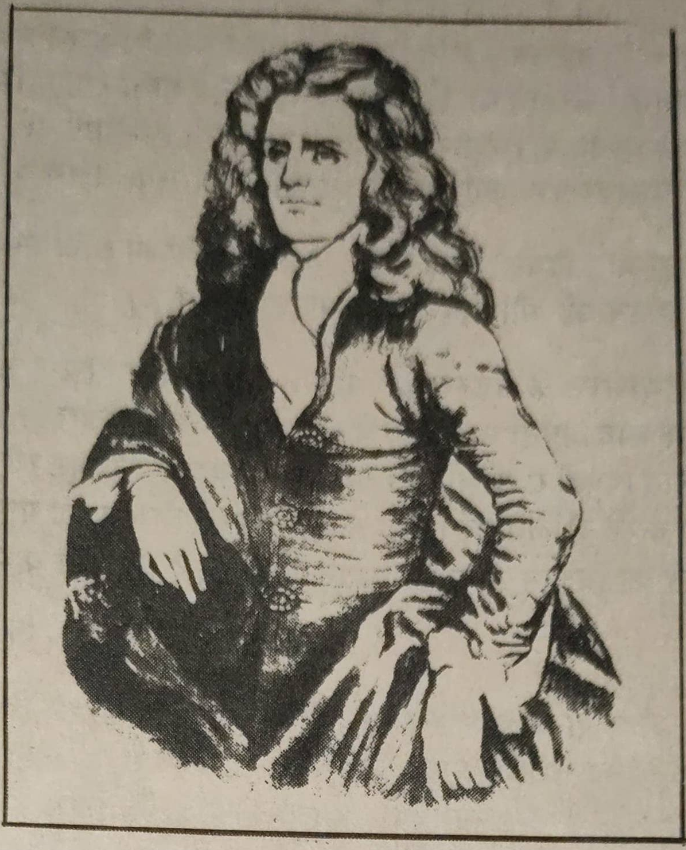
घाटियां कई प्रकार से बनती हैं। अधिकतर घाटियां नदियों द्वारा बनती हैं। पहाड़ों पर पिघली बर्फ का पानी जब एक नदी के रूप में बहने लगता है और किसी ऊंची चोटी से गिरता है तो यह पानी तेजी से बहने लगता है। तेजी के कारण इसमें इतना बल पैदा हो जाता है जो रास्ते में आने वाली पहाड़ियों को तोड़ता चला जाता है। इस प्रकार पहाड़ों के बीच में 'वी' (V) के आकार की घाटी बन जाती है। समय के साथ-साथ इसका आकार 'यू' (U) जैसा हो जाता है, यानी यह नीचे से चौड़ा हो जाता है। जब नदी में इधर-उधर से और पानी आ जाता है और नदी आगे बढ़ जाती है तो मिट्टी और पत्थरों के कारण इसकी गति धीमी हो जाती है। पर इसकी चौड़ाई बढ़ती जाती है। समय के साथ-साथ नदी के किनारे चट्टानों को काटते रहते हैं। और अंत में लंबे-चौड़े मैदान बन जाते हैं जिन्हें घाटी कहा जाता है। इनके बनने में हजारों वर्ष लग जाते हैं।

कुछ घाटियों का निर्माण ग्लेशियरों द्वारा हुआ है। ग्लेशियर एक प्रकार की बर्फ की नदी होती है जो धीरे-धीरे चलती है। रास्ते में आने वाले पत्थरों को बर्फ तोड़ती चली जाती है। इसके द्वारा पहाड़ों के बीच की जगह लगभग समतल हो जाती है। इस प्रकार 'यू' (U) के आकार की घाटियां बन जाती हैं।

कभी-कभी घाटी में बहने वाली नदी का रुख बदल जाता है जिससे नदी का बहने वाला पहला स्थान सूख जाता है। इस प्रकार से जो घाटियां बनती हैं उन्हें सूखी घाटी (Dry valley) कहते हैं।

कभी-कभी पृथ्वी की उथल-पुथल के कारण पहाड़ियां जमीन के अन्दर धंस जाती हैं और वहां घाटियां बन जाती हैं। इनको रिफ्ट घाटी (Rift valley) कहते हैं। इस प्रकार की घाटी "ग्रेट रिफ्ट वैली" (Great Rift valley) है जो 5000 कि० मी० तक फैली है। यह सीरिया (Syria) से पूर्वी अफ्रीका तक फैली हुई है।

शुरू से ही घाटियां मनुष्य के लिए बड़ी उपयोगी रही हैं। आदि-मानव ने इन्हीं में रहना शुरू किया था। प्राचीन सभ्यता का विकास इन्हीं घाटियों से शुरू हुआ था।



न्यूटन को भौतिकी का जन्मदाता क्यों कहते हैं?

सर आइज़क न्यूटन (Sir Isaac Newton) की गिनती विश्व के महानतम वैज्ञानिकों में की जाती है। इनका जन्म लिंकनशायर (Lincolnshire) के वूल्सथोर्प (Woolsthorpe) नामक गांव में सन् 1642 में हुआ था। उसी वर्ष प्रसिद्ध वैज्ञानिक गैलिलियो का स्वर्गवास हुआ था। जन्म के बाद कुछ महीनों तक तो उनके बचने की भी आशा न थी। लेकिन बड़े होकर वे संसार के महानतम् वैज्ञानिकों में से एक हुए।

उन्होंने बारह वर्ष की उम्र में स्कूल जाना शुरू किया। 18 वर्ष की उम्र में वे कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के ट्रिनिटी (Trinity) कालेज में दाखिल हुए। वहां उन्होंने गणित में अपनी प्रतिभा की छाप लगा दी। सन् 1669 में वे वहीं पर गणित के प्रोफेसर बन गए।

न्यूटन को बचपन से ही मशीनी खिलौनों का बहुत शौक था। उनके विषय में सेब की कहानी बहुत ही प्रसिद्ध है। कहा जाता है कि एक दिन न्यूटन बगीचे में सेब के पेड़ के नीचे बैठे हुए थे तभी एक सेब पेड़ से जमीन पर गिरा। सेब को गिरते देखकर न्यूटन के मन में आया कि यह सेब जमीन पर ही क्यों गिरा, आसमान की ओर क्यों न उड़ गया? यह प्रश्न उनके मस्तिष्क को बुरी तरह मथता रहा। यह उसी मंथन का परिणाम था कि न्यूटन ने अपना विश्वविख्यात "गुरुत्वाकर्षण का सिद्धांत" प्रतिपादित किया। इसी के आधार पर उन्होंने यह स्थापित किया कि पृथ्वी सभी वस्तुओं को अपने केन्द्र की ओर खींचती है,इसलिए हर फल-फूल या धरती से ऊपर की ओर फेंकी हुई वस्तुएं जमीन पर ही गिरती हैं। इतना ही नहीं, न्यूटन ने गुरुत्वाकर्षण का ब्रह्माण्ड-व्यापी नियम प्रतिपादित किया। इसके अनुसार ब्रह्माण्ड के सभी पिण्ड पारस्परिक आकर्षण के कारण अन्तरिक्ष में लटके हुए हैं।

न्यूटन ने प्रकृति के बहुत से अनजाने रहस्यों का पता लगाया। उन्होंने सबसे पहले यह बताया कि सूर्य का

प्रकाश, जो देखने में सफेद लगता है, वास्तव में सात रंगों से मिलकर बना है। एक प्रिज्म की सहायता से उन्होंने इन सातों रंगों को अलग करके दिखाया। उन्होंने यह भी सिद्ध किया कि इन सातों रंगों के मिलाने से सफेद रंग बन जाता है। गणित में न्यूटन ने बहुत काम किया। अपनी खोजों को उन्होंने प्रिन्सीपिआ (Principia) नामक पुस्तक के रूप में छपवाया। उन्होंने प्रकाश पर किए गए अनुसन्धानों को एक अलग पुस्तक में छपवाया।

न्यूटन ने विज्ञान को नया मोड़ दिया। उन्होंने गति के नियम दिए जो आज भी हमें पढ़ाए जाते हैं। इन्हीं सब महान् खोजों के आधार पर न्यूटन को भौतिकी का जन्मदाता कहते हैं।

सन् 1689 में वे पार्लियामेन्ट के सदस्य चुने गए। 1703 में वे रॉयल सोसाइटी लन्दन के अध्यक्ष (President) चुने गए। उसके बाद अपनी मृत्यु तक वे बार-बार रॉयल सोसाइटी के प्रेसीडेन्ट नियुक्त होते रहे। वृद्धावस्था में भी न्यूटन खगोलीय पिण्डों से सम्बन्धित बहुत से आविष्कारों में जुटे रहे। जब वे 85 वर्ष के थे तब भी रॉयल सोसाइटी की अध्यक्षता करने के लिए गए। वहां से लौटने पर वे बीमार पड़ गए और 20 मार्च सन् 1727 को उनका देहान्त हो गया। न्यूटन का विज्ञान में इतना महान् योगदान है, कि हम कभी भी उन्हें भुला नहीं सकते।



परमाणु बम क्या है?

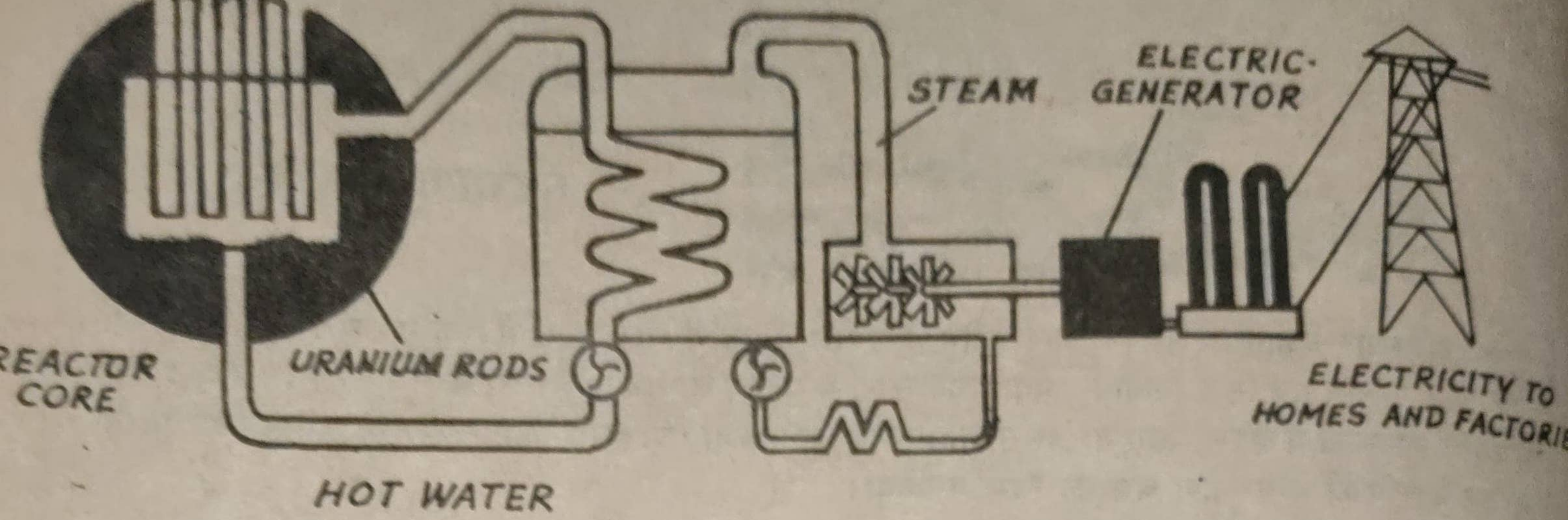
विश्वविख्यात वैज्ञानिक अल्बर्ट आइन्स्टीन ने सर्वप्रथम पदार्थ और ऊर्जा में एक सम्बन्ध स्थापित किया था। उन्होंने यह सिद्ध किया कि पदार्थ को ऊर्जा में बदला जा सकता है। उनके सूत्र के अनुसार यदि एक ग्राम पदार्थ को ऊर्जा में बदला जाए तो उससे 900 खरब जूल ऊर्जा पैदा होगी। आइन्स्टीन के इसी सूत्र को प्रयोग में लाकर वैज्ञानिकों ने परमाणु बम का निर्माण किया।

विश्व का सबसे पहला परमाणु बम अमरीका के केलीफोर्निया विश्वविद्यालय के प्रोफेसर जे०आर० ओपेनहीमर ने बनाया था। इसका सफल परीक्षण 16 जुलाई सन् 1945 को प्रात:काल साढ़े पांच बजे अलमोगोर्डो (न्यू मैक्सिको) नामक स्थान पर अमरीका में किया गया था। यह प्लूटोनियम धातु को इस्तेमाल करके बनाया गया था। जब इस बम का परीक्षण किया गया तो इसके विस्फोट से लगभग 40,000 फीट ऊंचा एक बादल सा बन गया। जिस लोहे की मीनार से इस बम का परीक्षण किया गया था विस्फोट के बाद उसका नामोनिशान न रहा, बल्कि वहां एक बहुत बड़ा गड्ढा बन गया।

परमाणु बम का विनाशकारी प्रयोग सबसे पहले द्वितीय महायुद्ध में किया गया। अमरीका ने 6 अगस्त 1945 को यूरेनियम से बना बम जापान के हीरोशिमा (Hiroshima) नामक शहर पर गिराया। ठीक इसके तीन दिन बाद प्लूटोनियम से बना दूसरा बम जापान के दूसरे शहर नागासाकी पर गिराया गया। सदियों से बसने वाले ये शहर पलभर में खंडहरों में बदल गए।

परमाणु बम नाभिकीय विखंडन (Nuclear Fission) क्रिया पर कार्य करता है। नाभिकीय विखंडन में यूरेनियम जैसे नाभिक पर न्यूट्रोन कणों की बौछार की जाती है इससे यूरेनियम का नाभिक (Nucleus) दो हिस्सों में टूट जाता है। इसके टूटने से कुछ न्यूट्रोन पैदा होते हैं और बहुत अधिक ऊर्जा पैदा होती है। यूरेनियम के एक नाभिक के टूटने से बेरियम और क्रिप्टान के दो नाभिक बनते हैं और साथ ही साथ कुछ न्यूट्रोन तथा 20 करोड़ इलेक्ट्रोन वोल्ट ऊर्जा पैदा होती है। नाभिकीय विखंडन में पैदा हुए न्यूट्रोन यूरेनियम के दूसरे नाभिकों को तोड़ते चले जाते हैं। इस प्रकार नाभिकों के टूटने की एक श्रृंखला बन जाती है जिससे अपार ऊर्जा पैदा होती है। यदि इस क्रिया को नियंत्रित न किया जाए तो यही परमाणु बम के विस्फोट का रूप धारण कर लेती है।

परमाणु बम के निर्माण में यूरेनियम-235 या प्लूटोनियम धातु को प्रयोग में लाया जाता है। इन धातुओं मे से किसी एक धातु के दो टुकड़े एक मजबूत खोल में अलग-अलग रखे जाते हैं। जब बम का विस्फोट करना होता है तो इन टुकड़ों को किसी विधि द्वारा आपस में मिला दिया जाता है। ऐसा करने पर कास्मिक किरणों (Cosmic Rays) में उपस्थित कुछ न्यूट्रोन विखंडन-क्रिया शुरू कर देते हैं। इस अनियंत्रित विखंडन प्रक्रिया में अपार ऊर्जा पैदा होती है। यही परमाणु बम का विस्फोट कहलाता है।

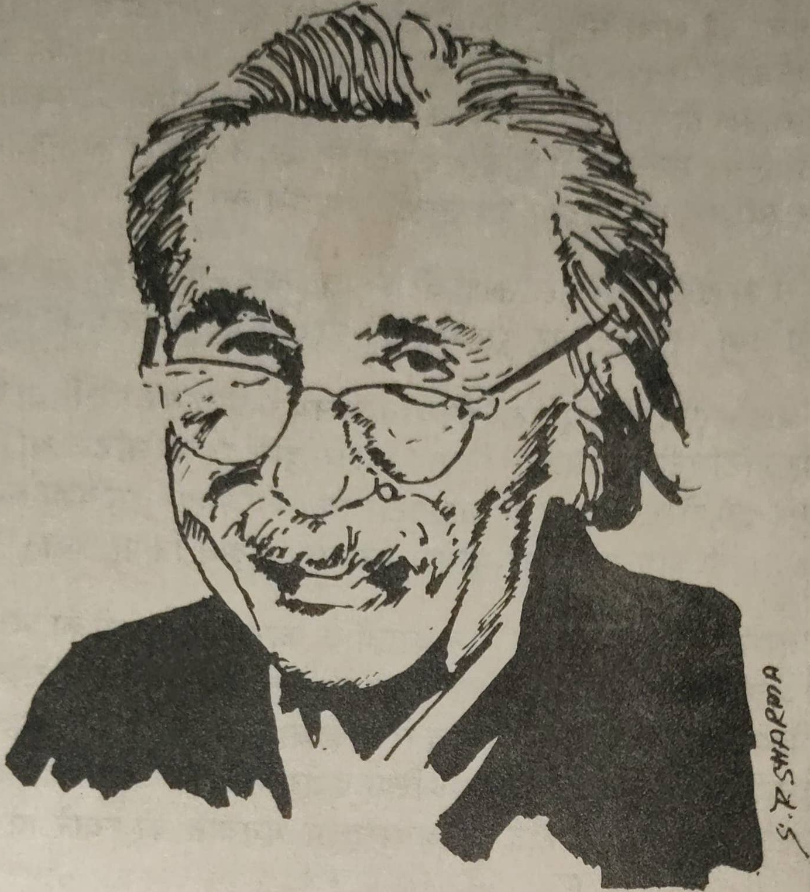


क्या पदार्थ को ऊर्जा में बदला जा सकता है ?

पदार्थ को ऊर्जा में बदलने की बात मानव के लिये एक कोरी कल्पना रही है। लेकिन सन् 1905 में विश्व-विख्यात वैज्ञानिक अलबर्ट आइन्स्टीन ने पदार्थ को ऊर्जा में बदलने का ऐतिहासिक समीकरण देकर सारे संसार में खलबली मचा दी। पदार्थ के द्रव्यमान (Mass) और ऊर्जा में एक निश्चित सम्बन्ध स्थापित करने वाला यह समीकरण है, $E=mc^2$. यहां E ऊर्जा है, m पदार्थ का द्रव्यमान है और c प्रकाश का वेग है। इस सूत्र के अनुसार यदि आधे पौन्ड पदार्थ को ऊर्जा में बदला जाए तो उससे इतनी ऊर्जा पैदा होगी जितनी 70 लाख टन डायनामाइट विस्फोटक को जलाने से पैदा होती है।

इस सूत्र का वास्तविक महत्त्व वैज्ञानिकों को सन् 1945 में पता लगा। इसी सूत्र को प्रयोग में लाकर अमरीका ने यूरेनियम धातु को ऊर्जा में बदलकर संसार का प्रथम विनाशकारी परमाणु बम बनाया था। 6 अगस्त सन् 1945 को यूरेनियम से बना परमाणु बम जापान के हीरोशिमा नगर पर गिराया गया। ठीक इसके तीन दिन बाद प्लुटोनियम धातु को ऊर्जा में बदलकर दूसरा बम जापान के नागासाकी नगर पर गिराया गया। इन बमों से लाखों लोगों की जानें चली गईं। वैज्ञानिकों के आश्चर्य का ठिकाना न रहा कि थोड़े से पदार्थ से इतनी ऊर्जा पैदा हो सकती है। बाद में इसी सूत्र के आधार पर हाइड्रोजन बम का निर्माण किया गया।

पदार्थ-ऊर्जा समीकरण के इन विनाशकारी प्रभावों को देखकर वैज्ञानिकों ने इसका प्रयोग मानव की सुख-शान्ति के लिए सोचा। इस आधार पर अनेकों प्रकार की नाभिकीय भट्ठियां (Nuclear Reactors) बनाई गईं। इन भट्ठियों में यूरेनियम धातु का नाभिकीय विखण्डन करके गर्मी पैदा की जाती है। इस अपार गर्मी से पानी को उबाल कर भाप बनाई जाती है और इस भाप से टरबाइनें चलाई जाती हैं। टरबाइनों से विद्युत डायनमो द्वारा लाखों मेगावाट (Megawatt) बिजली पैदा की जाती है। आइन्स्टीन द्वारा दिया गया पदार्थ ऊर्जा समीकरण तथा उसके अनुसार पदार्थ को ऊर्जा में बदलने के सफल वैज्ञानिक प्रयोग हमारे लिए बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुए हैं।



आइन्स्टीन को इस सदी का महानतम वैज्ञानिक क्यों कहते हैं ?

अलबर्ट आइन्स्टीन को आधुनिक भौतिक विज्ञान का जन्मदाता कहा जाता है। इस महान वैज्ञानिक का जन्म 14 मार्च 1879 को जर्मनी के उल्म (Ulm) नामक शहर में हुआ था। जब वे एक वर्ष के ही थे तभी उनका परिवार म्यूनिक चला गया। आइन्स्टीन का बचपन वहीं बीता। बचपन में वे बड़े ही शर्मीले स्वभाव के थे। उनकी मां को पिआनो बजाने का बड़ा शौक था। अपनी मां की देखा-देखी उन्हें भी पिआनो बजाने का शौक हो गया था।

बचपन से ही आइन्स्टीन को वैज्ञानिक उपकरणों में बड़ी रुचि थी। पढ़ाई-लिखाई में ये गणित में तो बहुत तेज थे लेकिन अन्य विषयों में नहीं। जब ये 15 वर्ष के हुए तब उनका परिवार इटली चला गया। वहां से इन्हें पढ़ने के लिए स्विट्ज़रलैन्ड के ज्यूरिख विश्वविद्यालय में भेजा गया। आइन्स्टीन की प्रतिभा का वास्तविक विकास वहीं हुआ। भौतिक विज्ञान और गणित में वे प्रतिभाशाली छात्रों की गिनती में आ गए।

सन् 1900 में उन्होंने अपनी शिक्षा समाप्त की। उनका विचार अध्यापक बनने का था लेकिन विचारों के अनुकूल उन्हें अध्यापक का पद न मिल पाया। हारकर उन्होंने स्विट्ज़रलैन्ड के एक पेटेन्ट ऑफिस में नौकरी कर ली। उन्हीं दिनों उन्होंने यूगोस्लाविया की मिलेवा मैरिक नाम की विज्ञान की एक छात्रा से प्रेम विवाह कर लिया। आइन्स्टीन के दो बच्चे पैदा हुए।

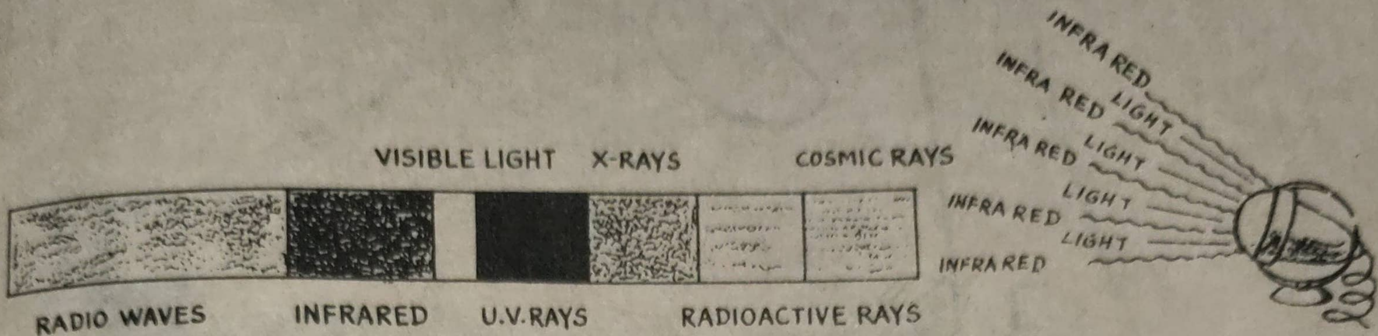
नौकरी के अतिरिक्त आइन्स्टीन को जितना समय मिलता था उसमें वे भौतिक विज्ञान की जटिल समस्याओं का अध्ययन किया करते थे। सन् 1905 में उन्होंने अपने अनुसन्धानों से सम्बन्धित पांच लेख छपवाए। इन लेखों में भौतिक विज्ञान की नई विचारधाराओं को प्रस्तुत किया गया था। इन लेखों से आइन्स्टीन विश्व के

उच्च कोटि के वैज्ञानिकों की श्रेणी में आ गए इनमें से एक लेख सापेक्षता के सिद्धांत से सम्बन्धित था। इस सिद्धांत में उन्होंने कहा था कि वस्तुओं की निरपेक्ष गति (Absolute Motion) का कोई अर्थ नहीं है। वस्तुओं की गति दूसरी वस्तुओं के सापेक्ष ही होती है। इसी लेख में उन्होंने सिद्ध किया कि द्रव्यमान, लम्बाई और समय जैसी भौतिक राशियां, जिन्हें स्थिर माना जाता है, स्थिर नहीं हैं, केवल प्रकाश का वेग ही स्थिर रहता है। सदियों से चली आने वाली ईथर माध्यम की धारणा को उन्होंने समाप्त कर दिया।

एक दूसरे लेख में उन्होंने पदार्थ और ऊर्जा की तुल्यता का सूत्र दिया था। इसी सूत्र के आधार पर सन् 1945 में परमाणु बम बनाया गया। सारा ससार इस सूत्र की सत्यता को देखकर आश्चर्यचकित रह गया।

सन् 1909 में आइन्स्टीन को ज्यूरिख विश्वविद्यालय में प्रोफेसर पद दिया गया। सन् 1916 में उन्होंने जनरल थ्योरी ऑफ रिलेटिविटी का सिद्धांत दिया। यह सिद्धांत इतना जटिल था कि इसे विश्व के केवल चार वैज्ञानिक ही समझ पाए। इस लेख के छपते ही आइन्स्टीन विश्व के महानतम् वैज्ञानिक बन गए। इन अनुसन्धानों के उपलक्ष्य में सन् 1921 में आइन्स्टीन को नोबेल पुरस्कार प्रदान किया गया।

सन् 1933 में जर्मनी पर हिटलर की तानाशाही के कारण ये अमरीका चले गए। वहां उन्हें प्रिन्स्टन विश्वविद्यालय में एक अच्छा पद दे दिया गया। सारी उम्र वे भौतिक विज्ञान की गुत्थियों को सुलझाते रहे। स्वभाव से वे बड़े कोमल थे। वे बड़े ही शान्तिप्रिय थे। युद्ध से उन्हें बहुत घृणा थी। उनका कहना था,परमाणु ऊर्जा को मानव विनाश के लिए नहीं बल्कि मानव विकास के लिए प्रयोग में लाया जाना चाहिए। सन् 1955 में विज्ञान की सेवा करते हुए ये प्रिन्स्टन अस्पताल में नींद की अवस्था में भगवान को प्यारे हो गए।



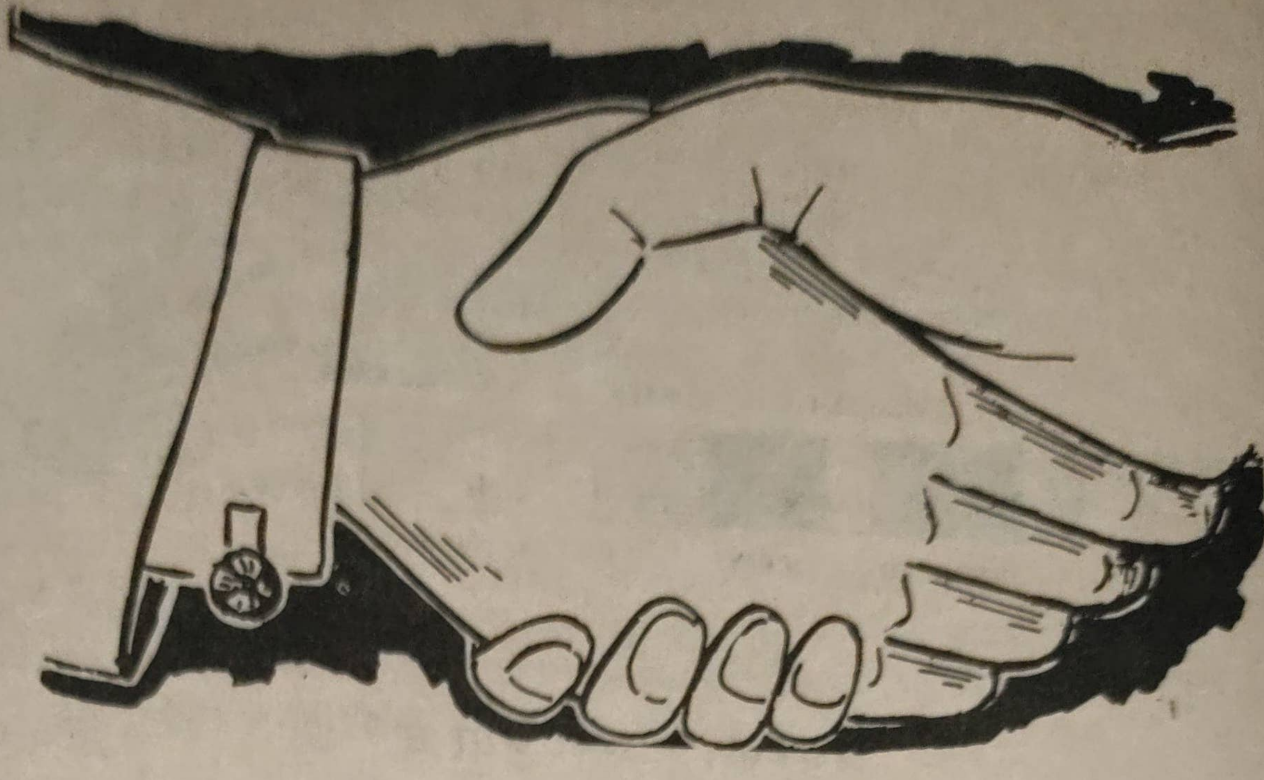
अवरक्त किरणें क्या हैं ?

हम पढ़ चुके हैं कि सूर्य के सफेद प्रकाश में वे सभी रंग मिले हुए हैं जिन्हें हम इन्द्रधनुष में देखते हैं। ये रंग हैं— बैंगनी, जामुनी, नीला, हरा, पीला, नारंगी और लाल। सूर्य का यह प्रकाश एक प्रकार की तरंगों के रूप में चलता है। इन तरंगों को विद्युत चुम्बकीय तरंगें (Electro-magnetic waves) कहते हैं। प्रकाश के भिन्न-भिन्न रंगों की अलग-अलग आवृत्ति (Frequency) होती है। हमारी आँखें बैंगनी रंग से लेकर लाल रंग तक की सभी आवृत्तियों के प्रति संवेदनशील हैं, अतः ये इन सभी रंगों के देख सकती हैं। सूर्य के प्रकाश में सात रंगों की आवृत्तियों के अतिरिक्त दूसरी आवृत्तियां भी होती हैं जिनके लिए हमारी आँखें संवेदनशील नहीं हैं। लाल रंग की आवृत्ति से कम आवृत्ति की तरंगों को "अवरक्त किरणें" कहते हैं और बैंगनी रंग की आवृत्ति से अधिक आवृत्ति की तरंगों को "पराबैंगनी" (Ultraviolet) किरणें कहते हैं। ये दोनों ही प्रकार की किरणें हमें दिखाई नहीं देती हैं।

अवरक्त किरणें केवल सूर्य से ही नहीं निकलतीं बल्कि हर गर्म वस्तु से निकलती हैं। जलती आग, सुलगती अंगीठी या हीटर सभी से अवरक्त किरणें निकलती हैं। एक विशेष प्रकार की फोटोग्राफिक फिल्म पर इन किरणों को चित्रित किया जा सकता है। ये किरणें जिस पदार्थ पर भी पडती हैं उसी में गर्मी पैदा कर देती हैं। ये हमारे लिए बहुत ही उपयोगी हैं।

डाक्टर लोग कुछ विशेष बीमारियों की चिकित्सा के लिए अवरक्त किरणों को प्रयोग में लाते हैं। ठंड के कारण कमर में होने वाले दर्द के इलाज के लिए इन किरणों को एक विशेष प्रकार के लैम्प से कमर पर डाला जाता है। इनकी गर्मी के कारण कमर का दर्द ठीक हो जाता है। मांसपेशियों के दर्द को ठीक करने के लिए भी इन किरणों को प्रयोग में लाते हैं।

अब तो मिसाइल और युद्ध में काम आने वाले दूसरे प्रक्षेपणास्त्रो के नियंत्रण में भी अवरक्त किरणों का इस्तेमाल किया जाता है। अवरक्त किरण पैदा करने वाले लैम्पों मे घर के कमरों को गर्म किया जाता है। अवरक्त किरणों को "न दिखने वाले" सिगनल भेजने एवं प्राप्त करने के लिए प्रयोग मे लाया जाता है। इन किरणों से पदार्थों के अणुओं की संरचना भी ज्ञात की जाती है। आज ऐसे-ऐसे यंत्र बनाये गये हैं जिनमें अवरक्त किरणें इस्तेमाल होती हैं और जो अणुओं की बनावट को समझने में काफी मदद देती हैं। इन किरणों की सहायता से पदार्थों में मिलावट का पता भी लगाते हैं।



हाथ मिलाने का सिलसिला कैसे शुरू हुआ ?

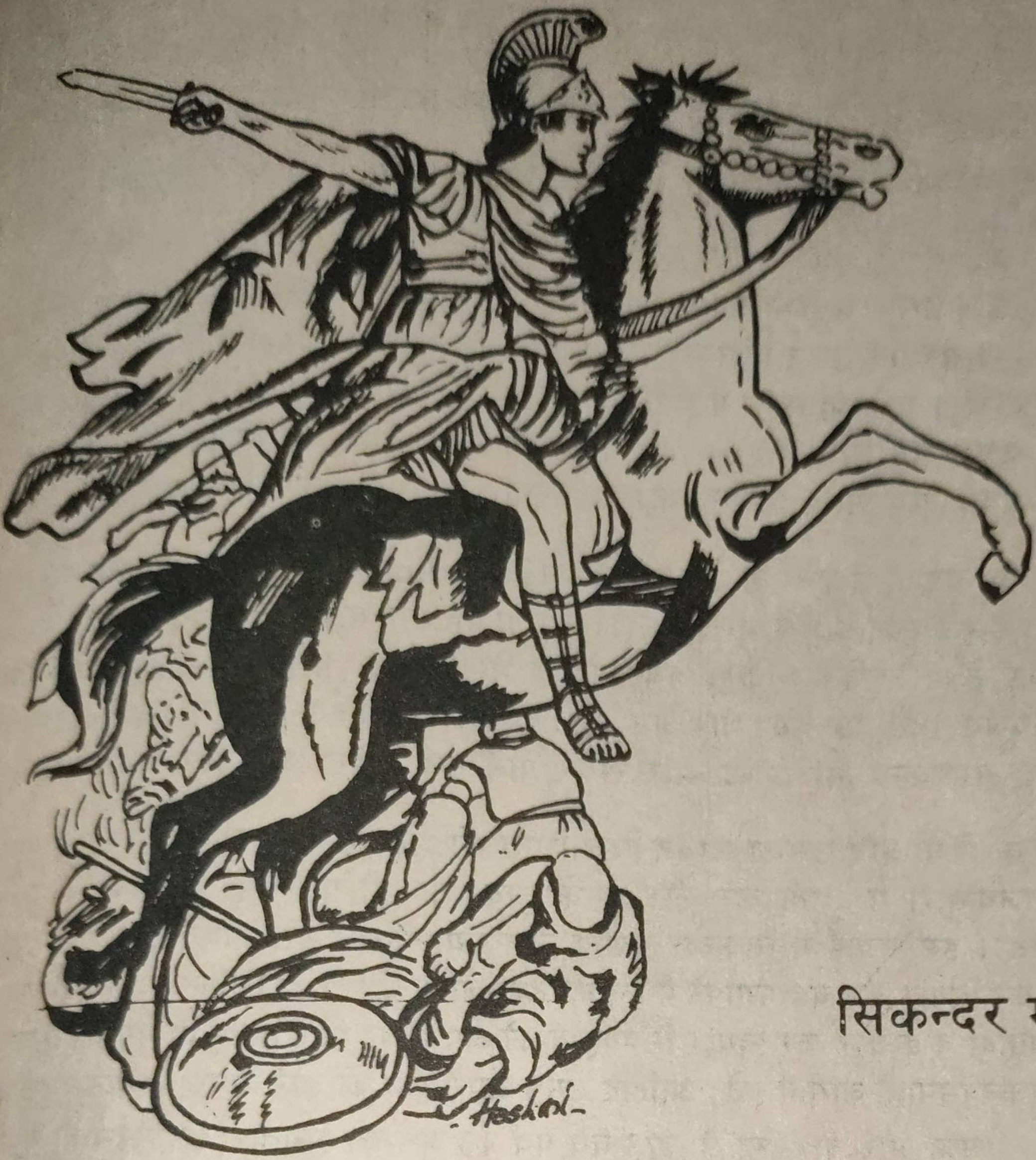
हाथ मिलाना संसार में अभिवादन का एक जाना-पहचाना तरीका बन गया है। जहां भी कहीं लोग मिलते हैं, एक दूसरे से हाथ मिलाकर दोस्ती और अपनेपन का परिचय देते हैं, लेकिन अधिकतर लोगों को यह पता नहीं कि हाथ मिलाने का सिलसिला कैसे शुरू हुआ?

आदिकाल से ही हाथ को शक्ति का प्रतीक माना जाता रहा है। शुरू-शुरू में हाथ का प्रयोग दुश्मनों का सफाया करने, जानवरों को मारने और हथियार बनाने में किया जाता था। विकसित भाषा के अभाव में जब कोई व्यक्ति किसी की तरफ हाथ बढ़ाता था तो यह माना जाता था कि उसका इरादा नेक है और वह दोस्ती करना चाहता है।

प्राचीन धर्मों में भी हाथ को शक्ति का प्रतीक माना गया है। यूनानी लोग जब अपने देवताओं की पूजा करते थे तो सम्मान में अपने हाथ ऊपर उठा देते थे। किसी समय हथेली से हथेली जोड़ कर नमस्ते करने को सम्मान सूचक चिन्ह माना जाता था। भारत व एशिया के कई देशों में यह परम्परा आज भी प्रचलित है। अरबी लोग सैंकड़ों साल पहले अपने से बड़े व्यक्ति का हाथ चूम कर उसके प्रति सम्मान प्रदर्शित किया करते थे। लेकिन इससे हाथ चूमने वाले व्यक्ति में हीन भावना पैदा होती थी, इसलिए इस प्रथा को धीरे-धीरे बंद कर दिया गया।

हाथ मिलाने का सिलसिला यूनान से शुरू हुआ। प्राचीन यूनान में जब कोई व्यक्ति किसी अजनबी से दोस्ती करना चाहता था, तो उसकी तरफ दायां हाथ बढ़ा देता था। धीरे-धीरे यह सिलसिला इतना बढ़ा कि हाथ मिलाना एक सामान्य सी बात हो गई। आज हम जब भी किसी व्यक्ति से मिलते हैं तो बिना सोचे-समझे ही हमारा दायां हाथ उस व्यक्ति की ओर बढ़ जाता है।

अमरीका के भूतपूर्व राष्ट्रपति थियोडोर रूजवेल्ट (Theodore Roosevelt) ने 1 जनवरी 1907 को वाशिंगटन में लगातार 8513 व्यक्तियों से हाथ मिलाने का विश्व कीर्तिमान स्थापित किया। आज सारे संसार में हाथ मिलाने को मित्रता का प्रतीक माना जाता है। जब भी कोई देश किसी दूसरे देश को कोई मैत्री-सूचक उपहार देता है तो उस पर ''दो हाथों को मिलाते हुए'' चित्र के रूप में प्रदर्शित किया जाता है।



सिकन्दर महान कौन था ?

सिकन्दर महान के नाम से आज भी रोंगटे खड़े हो जाते हैं। नौ वर्ष के अन्दर ही उसने विश्व के बहुत से देशों पर विजय प्राप्त कर ली थी। योरुप और एशिया में उसकी बहादुरी की कहानियां अब भी सुनने को मिलती हैं। यह महान सिपाही ईसा से 356 वर्ष पूर्व पैदा हुआ और बेबीलोन (जो अब ईराक में है) में 33 वर्ष की उम्र में ही मर गया था

सिकन्दर का राज्य जो यूनान से लेकर भारत तक फैला हुआ था उसकी मृत्यु के बाद समाप्त हो गया लेकिन उसके द्वारा बसाये गए शहर आज भी मौजूद हैं। लोगों का कहना है कि उसने अपने छोटे से जीवन काल में 70 शहर बसाए थे।

कहते हैं कि जब सिकन्दर 14 वर्ष का था तब उसने बुसेफैलस (Bucephalus) नाम के एक जंगली घोड़े को काबू में किया था। इस घोड़े को कोई भी व्यक्ति काबू में नहीं ला पाया था। जीवन भर सिकन्दर महान ने इसी घोड़े पर सभी युद्ध लड़े। यह घोड़ा भारत में होने वाली एक लड़ाई में मारा गया। उसी के नाम पर सिकन्दर ने वहां एक शहर बसाया।

सिकन्दर महान के पिता फिलिप (Philip) ईसा से 359 वर्ष पहले मेसेडोनिया (Macedonia) के राजा बने। उन्होंने अपनी एक सेना बनाई और यूनान के दुश्मन पर्शिया पर हमला करने की योजना बनाई लेकिन ईसा से

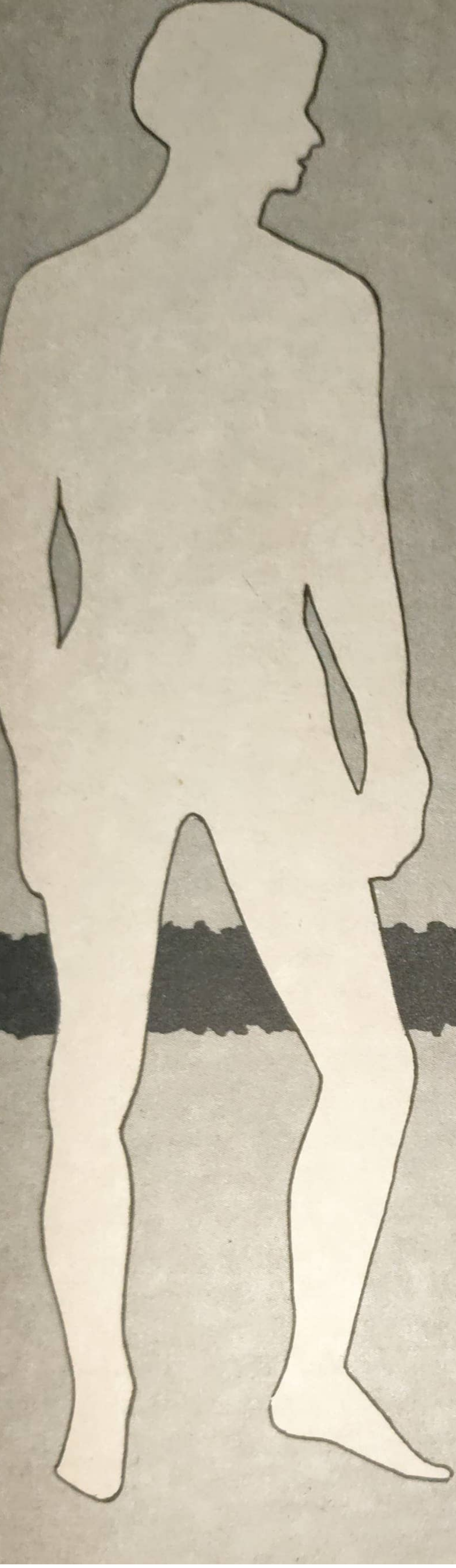
336 वर्ष पूर्व ही उनकी हत्या कर दी गई। उनकी मृत्यु के बाद 20 वर्ष का सिकन्दर वहां का राजा बन गया।

सिकन्दर ने युद्ध कला अपने पिता से सीखी थी और शिक्षा उस समय के महान दार्शनिक अरस्तू (Aristotle) से प्राप्त की थी।

फिलिप की मृत्यु के बाद उसके राज्य में अराजकता फैल गई। सिकन्दर ने इस झगड़े को कुछ ही दिनों में शान्त कर दिया। ईसा से 334 वर्ष पूर्व उसने पर्शिया के साम्राज्य पर हमला कर दिया। वहां उसने दो युद्ध किये और दोनों में ही विजय प्राप्त की। वह युद्ध कला में बहुत ही निपुण था। डर उसे छू तक नहीं गया था। फारस पर विजय प्राप्त करने के बाद उसने मिस्र (Egypt) पर आक्रमण किया। मिस्र पर विजय प्राप्त करके उसने नील नदी के मुहाने पर अपने नाम से अलेक्जैन्ड्रिया (Alexandria) नामक शहर बसाया।

जब सिकन्दर एशिया माइनर में घुसा तो उसे गोरडियस (Gordius) राजा का रथ दिखाया गया। उसे बताया गया कि जो व्यक्ति इस रथ को बांधने वाली गांठ को काटेगा वह सारे संसार पर राज्य करेगा। सिकन्दर ने एक तलवार से उस गांठ के दो टुकड़े कर दिए। अब तक वह मेसेडोनिया (Macedonia), यूनान, मिस्र, फारस और एशिया पर विजय प्राप्त कर चुका था। अगले छः वर्षों तक उसकी फौजें आगे बढ़ती गईं। उसने अफगानिस्तान, हिन्दुकुश, समरकन्द, ताशकन्द और खैबर पास तक अपना अधिकार जमा लिया था।

एशिया में प्रवेश करने के बाद उसका जीवन विलासिता की ओर जाने लगा था। उसने रोक्साना (Roxana) नाम की राजकुमारी से शादी कर ली। इसके बाद उत्तरी-पश्चिमी भारत में उसका पुरु (Porus) के साथ युद्ध हुआ। इस लड़ाई में सिकन्दर यद्यपि जीत गया लेकिन उसके सिपाहियों का भारतीय सिपाहियों ने नाक में दम कर दिया। अब वह गंगा के मैदान की ओर जाना चाहता था लेकिन व्यास नदी से आगे बढ़ने के लिए उसके सिपाहियों ने इन्कार कर दिया। सिपाहियों को अपना घर छोड़े 8 वर्ष हो गए थे। सिकन्दर ने बहुतेरी कोशिश की लेकिन सिपाही आगे न बढ़े। आखिर उसने अपने देश की ओर वापस प्रस्थान कर दिया। रास्ते में उसे तेज बुखार हो गया और वह ईसा से 323 वर्ष पूर्व 13 जून को भगवान को प्यारा हो गया।





2

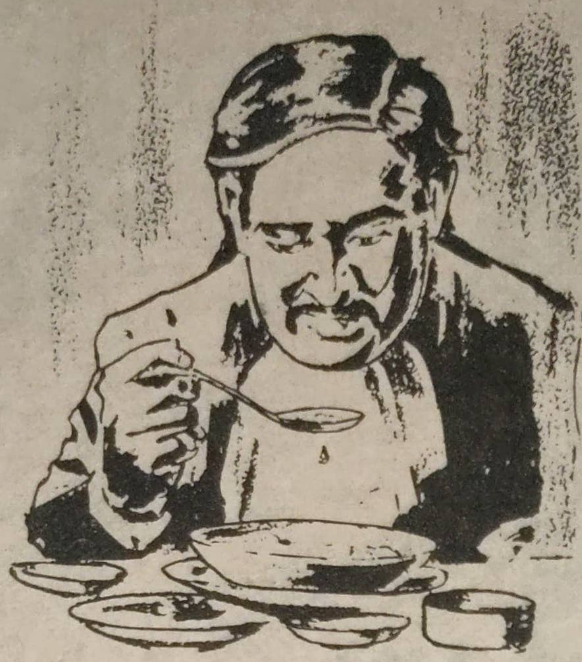
मानव शरीर



महिलाओं की आवाज सुरीली क्यों होती है ?

आम तौर पर महिलाओं की आवाज़ पुरुषों की तुलना में काफी सुरीली होती है। जन्म के कई वर्षों तक सभी बच्चों की आवाज, चाहे वह लड़का है या लड़की है, सुरीली ही होती है। लेकिन ग्यारह-बारह साल की उम्र के बाद लड़कों की आवाज में भारीपन आने लगता है, परंतु लड़कियों की आवाज के सुरीलेपन में अधिक अन्तर नहीं आता। क्या तुम जानते हो कि ऐसा क्यों होता है?

सामान्य रूप से ग्यारह से तेरह साल की अवस्था में लड़के और लड़कियों में वयस्कता आनी शुरू होती है। इस उम्र को वयस्कता की उम्र (Puberty age) कहते हैं। इस उम्र में हमारे शरीर की ग्रन्थियां विशेष प्रकार के हारमोन (Harmones) पैदा करती हैं। इनको सेक्स हारमोन (Sex hormones) कहते हैं। इन हारमोनों के पैदा होने से लड़के और लड़कियों के शरीरों में बहुत से परिवर्तन आ जाते हैं। लड़कियों को मासिक धर्म होने लगता है और लड़कों को हल्की मूंछें और बगल में बाल आने लगते हैं। इसी उम्र में लड़कों की आवाज भारी होने लगती है। लड़कों में टेस्टोस्टेरोन (Testosterone) नामक हारमोन के पैदा होने से आवाज में भारीपन आता है। इस हारमोन के द्वारा गले में आवाज पैदा करने वाले अंगों (Vocal chords) की लम्बाई और मोटाई बढ़ जाती है। यह हारमोन कंठनली (Larynx) पर भी प्रभाव डालता है।इससे वोकल कॉर्डों द्वारा पैदा होने वाली आवृत्ति (Frequency) बदल जाती है जिससे आवाज में भारीपन आ जाता है। यह हारमोन महिलाओं में पैदा नहीं होता। लेकिन फिर भी महिलाओं की आवाज में थोड़ा सा परिवर्तन आता है। आवाज का यह परिवर्तन गले, मुंह, नाक और ऊपर के जबड़े की वृद्धि के कारण होता है। इन्हीं कारणों से महिलाओं की आवाज पुरुषों की अपेक्षा सुरीली होती है।

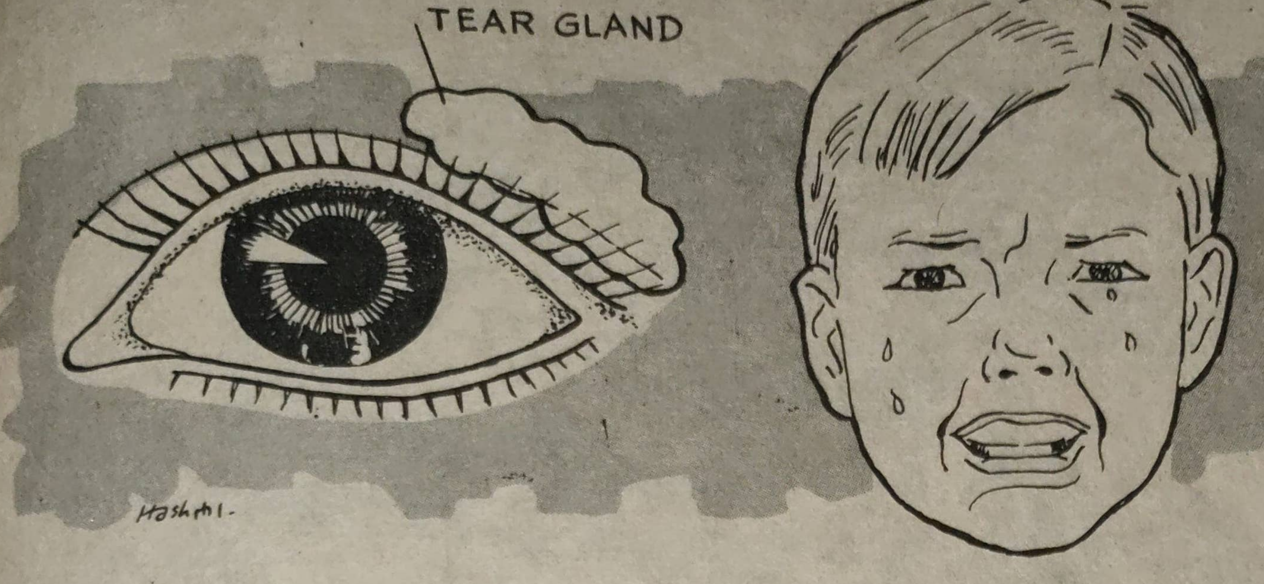


हमें भूख क्यों लगती है?

अधिकतर लोगों का विचार है कि जब हमारा पेट खाली होता है तो हमें भूख का एहसास होता है, लेकिन यह बात सत्य नहीं है। खाली पेट से भूख का विशेष सम्बन्ध नहीं है। उदाहरण के लिए लोग जब बीमार होते हैं या तेज बुखार से पीड़ित होते हैं, तब खाली पेट होने पर भी उन्हें कई दिन तक भूख नहीं लगती। इसी प्रकार जब कोई बच्चा पैदा होता है तो उसे कई दिन तक भूख नहीं लगती। क्या तुम जानते हो-हमें भूख क्यों लगती है?

जब रक्त के अंदर पोषक तत्वों की कमी हो जाती है तभी हमें भूख का एहसास होता है। रक्त के अन्दर पोषक तत्वों की कमी इसलिए हो जाती है कि दिन भर के काम-काज में हमें ऊर्जा की आवश्यकता होती है। यह ऊर्जा हमें रक्त के पोषक तत्वों से ही मिलती है। बीमार आदमी का शरीर विश्राम में होने के कारण कम ऊर्जा खर्च करता है। इस ऊर्जा का काफी भाग शरीर में संचित प्रोटीनों से मिल जाता है। इसलिए बीमार आदमी को कई दिन तक भूख नहीं लगती। जब रक्त के अन्दर पोषक तत्वों की कमी हो जाती है तब यह मस्तिष्क में स्थित क्षुधा केन्द्र (Hunger centre) को एक संदेश पहुंचाता है। यह क्षुधा-केन्द्र पेट और आंतों पर एक ब्रेक की तरह कार्य करता है। जब तक रक्त में पोषक तत्वों की मात्रा बहुतायत में होती है तब तक क्षुधा- केन्द्र पेट और आंतों पर धीमे रूप में क्रिया करता है, लेकिन जैसे ही रक्त में पोषक तत्वों की कमी आ जाती है वैसे ही यह क्षुधा-केन्द्र पेट और आंतों को अधिक क्रियाशील कर देता है। यही कारण है कि भूखे आदमी का पेट अक्सर गड़गड़ाहट की आवाज करने लगता है,जिसे हम पेट में चूहे कूदना भी कहते हैं।

जब हमें भूख लगती है तब हमारा शरीर किसी विशेष प्रकार के भोजन की इच्छा नहीं करता, बल्कि यह पोषक तत्वों को चाहता है। इन पोषक तत्वों में विशेष रूप से प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, वसा, खनिज, विटामिन और जल आते हैं। इन सभी चीजों का शरीर में अपना-अपना महत्व है। प्रोटीन नाइट्रोजन युक्त ऐसे पदार्थ हैं जो शारीरिक विकास, मांसपेशियों एवं ऊतकों की मरम्मत करने के काम आते हैं। कार्बोहाइड्रेट और वसा से ऊर्जा और ताप पैदा होते हैं। खनिज पदार्थ हड्डियों और ऊतकों के निर्माण और वृद्धि के काम आते हैं। विटामिन अनेकों प्रकार के रोगों से हमें बचाते हैं। जल हमारी कोशिकाओं का मुख्य अंग है। इसी के सहारे शरीर में पोषक तत्व और आक्सीजन एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुंचते हैं। किसी भी पोषक तत्व की कमी हो जाने से हम बीमार पड़ सकते हैं। अतः हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि रक्त में पोषक तत्वों की कमी ही हमें भूख का अहसास कराती है।



रोने में आंसू क्यों निकलते हैं ?

जब किसी शोक-समाचार या दुःख के कारण हम रोने लगते हैं तो हमारी आंखों से आंसू निकलने लगते हैं। इसी प्रकार पिटाई किए जाने पर जब कोई रोता है तो भी आंसू निकलते हैं। रोने का कारण चाहे कुछ भी हो लेकिन इस क्रिया में सदा ही हमारी आंखों से आंसू निकलते हैं। क्या तुम जानते हो ऐसा क्यों होता है?

हमारी आंखों की पलकें सदा ही खुलती और बंद होती रहती हैं। पलकों का यह खुलना और बन्द होना मांसपेशियों द्वारा होता है। इनकी गति इतनी तीव्र होती है कि पलक झपकने से हमारी दृष्टि पर कोई असर नहीं पड़ता है।पलक झपकने की क्रिया एक अनैच्छिक क्रिया है जो बिना हमारे जाने स्वयं ही होती रहती है। पलकों के खुलने और बन्द होने की यह क्रिया हर छः सैकिन्ड के अंतर से सारी उम्र होती है।

हमारी प्रत्येक आंख के बाहरी कोने के अन्दर एक आंसू-ग्रन्थि (Tear gland) होती है। इस ग्रन्थि से पतली नलियां (Ducts) आंसुओं को ऊपर की पलक तक ले जाती हैं और वहां से दूसरी पतली नलियों द्वारा आंसू आंखों से बाहर आ जाते हैं।

जब भी हम पलक मारते हैं, वैसे ही आंसू नलिकाओं से कुछ तरल पदार्थ बाहर आ जाता है। यही तरल पदार्थ आंखों को नम रखता है और सूखने से बचाता है। रोते समय भी आंसू-ग्रन्थियों से तरल पदार्थ नलिकाओं द्वारा आंखों से बाहर आ जाता है। इसी तरल पदार्थ के बाहर निकलने को आंसू आना कहा जाता है।

कभी-कभी लोगों के बहुत हंसने या हर्ष होने पर भी आंसू आ जाते हैं। ऐसा इसलिए होता है कि जोर से हंसने पर आंसू ग्रन्थियां दब जाती हैं और उनमें जमा द्रव आंसुओं के रूप में आंखों से बाहर आ जाता है।

प्याज काटते समय भी हमारी आंखों से बिना रोये ही आंसू आने लगते हैं। इसका कारण यह है कि प्याज से एक आसानी से वाष्पित होने वाला पदार्थ निकलता है जो आंखों में एक जलन सी पैदा करता है। इस पदार्थ को आंसू ही आंखों को धोकर बाहर निकालते हैं। सिगरेट का धुंआ आंखों के अंदर जाने पर भी यही क्रिया होती है।

दुःख या भावुकता के कारण एक प्रतिवर्ती क्रिया (Reflex action) होती है जिससे आंसू-ग्रन्थियों से तरल पदार्थ बाहर आ जाता है। ऐसा तभी होता है जब दुःख पैदा करने वाली भावना को व्यक्त करने के लिए हमारे पास शब्द नहीं होते।



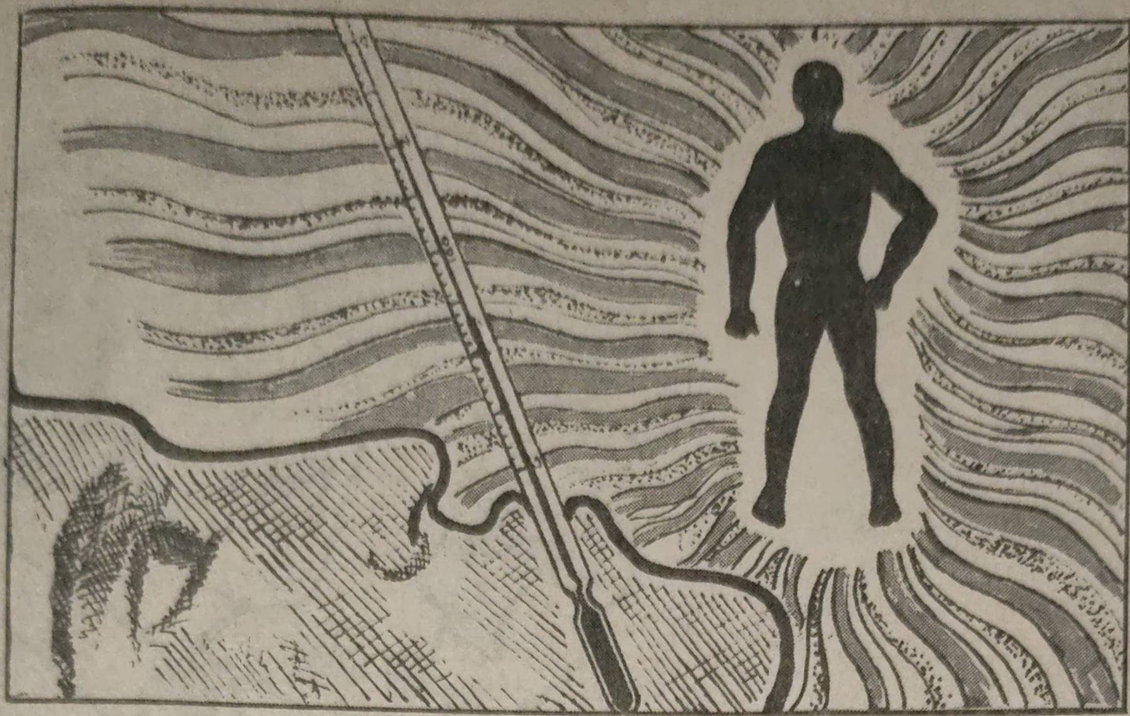
हम पक्षियों की तरह क्यों नहीं उड़ पाते ?

यह पूछे जाने पर कि हम चिड़ियों की भांति क्यों नहीं उड़ पाते, सभी लोग कहते हैं कि हमारे पंख नहीं हैं, इसलिए हम चिड़ियों की भांति नहीं उड़ पाते, लेकिन इस प्रश्न का यह उत्तर संतोषजनक नहीं है। मान लो कि हम चिड़ियों की तरह पंख लगा लें तो क्या उड़ सकते हैं? अब प्रश्न उठता है कि पक्षी किस प्रकार उड़ते हैं।

पक्षी उड़ने में अपने पंखों का इस्तेमाल करते हैं। तेजी से उड़ने वाले सभी पक्षियों के शरीर का ढाँचा हल्का होता है। इनकी हड्डियाँ भी हल्की होती हैं। सभी उड़ने वाले पक्षियों के शरीर में वायु भरने के लिए थैलीनुमा झिल्ली होती है। इनकी मांसपेशियाँ इनके शरीर के भार के अनुकूल मजबूत होती हैं। इन मांसपेशियों की सहायता से पक्षी अपने पंखों को तेजी से फड़फड़ा सकते हैं। इनके शरीर की बाहरी संरचना सपाट और चिकनी होती है जिससे उड़ते समय वायु का प्रतिरोध बहुत ही कम लगता है।

जब कोई पक्षी अपने पंखों को फैला कर उड़ता है तो पंखों के फड़फड़ाने से हवा को नीचे धकेलता है और स्वयं ऊपर को उठता है। पंखों के हिलने से पैदा हुआ यह वायु का बल पक्षी को ऊपर ले जाता है। पक्षियों की अपेक्षा हमारा शरीर बहुत भारी होता है, इसलिए उसे उड़ने के लिए बहुत बड़े पंखों की आवश्यकता होगी। साथ ही हमारे शरीर में हवा भरने के लिए थैलीनुमा झिल्ली भी नहीं है, और न ही हमारी माँसपेशियों में इतनी शक्ति है कि कृत्रिम तरीकों से बनाए गए पंखों को तेजी के साथ हिलाया जा सके।

यह एक आम अनुभव की बात है कि हल्के शरीर वाले पक्षी आसानी से उड़ सकते हैं, लेकिन भारी शरीर वाले पक्षियों को उड़ने में परेशानी होती है। उदाहरण के लिए मोर और मुर्गा थोड़ी ही ऊंचाई तक उड़ पाते हैं क्योंकि इनके शरीर भारी होते हैं। इनसे भी भारी शरीर वाले पक्षियों में शुतुरमुर्ग (Ostrich) और पेंगुइन (Penguin) आते हैं। ये पक्षी बिलकुल ही नहीं उड़ पाते। सारस भी एक भारी पक्षी होने के कारण थोड़ी ही दूर उड़ पाता है। उड़ने से पहले इसे जमीन पर काफी दूर भागना पड़ता है। अतः पंख लगने पर भी हम अपने शरीर के भारीपन के कारण चिड़ियों की भांति नहीं उड़ सकते।



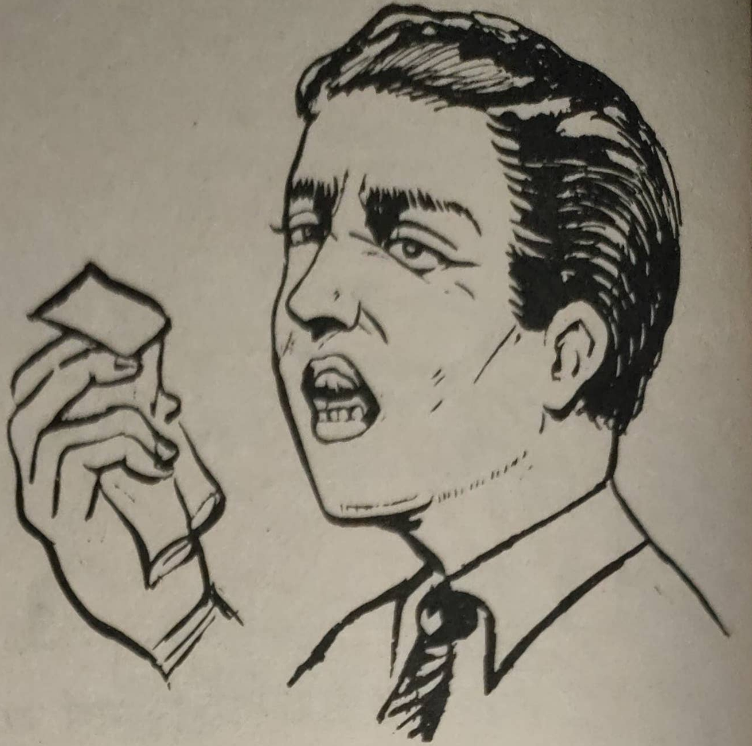
हमारा शरीर गर्म क्यों रहता है?

मनुष्य एक गर्म रक्त वाला (Warm-blooded) प्राणी है। सर्दी, बरसात और गर्मी—सभी मौसमों में इसके शरीर का तापमान स्थिर रहता है। इसके शरीर के तापमान पर बाहरी वातावरण के तापमान से कोई परिवर्तन नहीं होता। स्वस्थ मनुष्य के शरीर का तापमान 37° सेल्सियस (98.6° F) रहता है। इसी तापमान के कारण मनुष्य का शरीर गर्म रहता है। अब प्रश्न उठता है कि यह गर्मी शरीर को कहां से प्राप्त होती है?

शरीर को गर्मी भोजन से प्राप्त होती है। जो खाना हम खाते हैं वह शरीर में आक्सीकरण (Oxidation) की क्रिया द्वारा ऊष्मा ऊर्जा में बदल जाता है। यह क्रिया एक प्रकार की दहन (Combustion) क्रिया है। जिस प्रकार ईंधनों के जलने से ऊष्मा पैदा होती है उसी प्रकार इस क्रिया में भी ऊष्मा पैदा होती है,अन्तर केवल इतना है कि इस क्रिया में रोशनी पैदा नहीं होती। भोजन से पैदा हुई ऊर्जा के द्वारा ही शरीर समस्त कार्य करता है। एक सामान्य व्यक्ति के शरीर में लगभग 2500 कैलोरी ऊर्जा प्रतिदिन पैदा होती है। इसी ऊर्जा से शरीर द्वारा विभिन्न कार्य होते रहते हैं और शरीर गर्म भी रहता है।

शरीर के तापमान को स्थिर रखने का काम मस्तिष्क द्वारा नियंत्रित होता है। हमारे मस्तिष्क में तापमान नियंत्रण का एक हिस्सा होता है जिसे तापमान केन्द्र (Temperature Centre) कहते हैं। इसके तीन हिस्से होते हैं। पहला नियंत्रण केन्द्र जो तापमान को सामान्य से अधिक या कम नहीं होने देता। दूसरा गर्म करने वाला केन्द्र जो तापमान कम होने पर उसे सामान्य तापमान तक लाने का काम करता है और तीसरा ठंडक पैदा करने वाला केन्द्र जो शरीर का तापमान बढ़ने पर सामान्य तापमान तक लाने का काम करता है। ये तीनों केन्द्र शरीर के तापमान को स्थिर बनाए रखते हैं।

जब मस्तिष्क के ताप नियंत्रक केन्द्र में कोई गड़बड़ी पैदा हो जाती है तो मनुष्य को कंपकंपी आने लगती है या बुखार हो जाता है। गर्म करने वाले केन्द्र की गड़बड़ी से शरीर में कंपकंपी होने लगती है और ठंड महसूस होने लगती है। ठंडक पैदा करने वाले केन्द्र की गड़बड़ी से हमें बुखार हो जाता है। शरीर के गर्म रहने से सदा ही हमारे शरीर से ऊष्मा विकिरण द्वारा बाहर निकलती रहती है। जब हम किसी गद्दे या दूसरी वस्तु पर कुछ देर तक बैठते हैं तो शरीर से निकलने वाली इसी गर्मी से वह वस्तु हल्की सी गर्म हो जाती है।

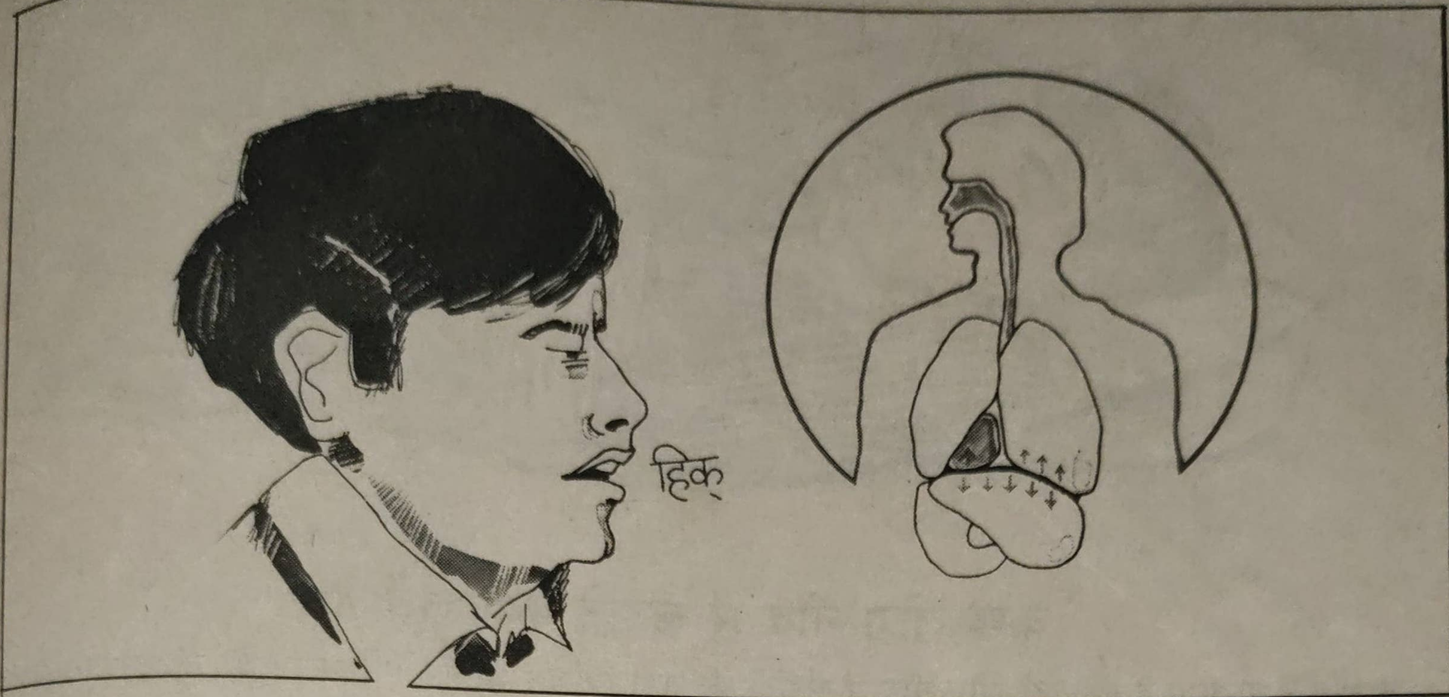


हमें छींक क्यों आती है ?

छींक आने के विषय में लोगों की अलग-अलग धारणायें हैं। कुछ लोग छींक आने को शुभ मानते हैं तो कुछ इसे अशुभ मानते हैं। जैसे हमारे देश में घर से बाहर निकलते समय कोई दूसरा व्यक्ति सामने से छींक देता है तो इसे अशुभ माना जाता है लेकिन पीठ पीछे की छींक को शुभ माना जाता है। दाईं ओर की छींक होने को शुभ माना जाता है लेकिन बाईं ओर की छींक को अशुभ माना जाता है। रोम के लोगों का विचार था कि छींक आने से दुरात्माएं शरीर से बाहर निकल जाती हैं। प्राचीन काल में छींक आने को मृत्यु आने का सन्देश माना जाता था। उस समय छींक आने पर लोग कहते थे कि 'ईश्वर तुम्हारी मदद करे'।

छींक के विषय में ये सभी धारणाएं केवल अन्धविश्वासों से ही पैदा हुई हैं। इनमें कोई तथ्य नहीं है। विज्ञान के अनुसार छींक आना शरीर की एक प्रतिवर्ती क्रिया (Reflex action) है जो हमारी इच्छा के बिना होती है। नाक की म्यूकस झिल्ली (Mucus membrane) की नाड़ियों में जब सूजन आ जाती है तो उनमें खुजलाहट होने लगती है। इसी खुजलाहट के कारण छींक आती है। छींक में नाक और मुंह से हवा तेजी के साथ निकलती है। म्यूकस झिल्ली की नाड़ियों में सूजन अधिकतर जुकाम के कारण आती है। कभी-कभी कोई पदार्थ भी नाक के अंदर चला जाता है जो इन नाड़ियों में सुरसुराहट पैदा कर देता है। इस पदार्थ को बाहर निकालने के लिए भी छींक आती है। कुछ लोगों को एलर्जी (Allergy) के कारण भी छींकें आने लगती हैं। कभी-कभी तेज़ प्रकाश से आंख के रेटिना से मस्तिष्क को जाने वाली ऑप्टिक नाड़ी भी उत्तेजित हो जाती है जिससे छींक आ जाती है।

छींक आना शरीर की एक ऐसी क्रिया है जिसमें हवा के झटके के साथ शरीर उन पदार्थों को बाहर निकालने का प्रयास करता है जो नाक की म्यूकस झिल्ली की नाड़ियों में सुरसुराहट पैदा करते हैं। छींक आने पर पूरे शरीर को झटका सा लगता है क्योंकि छींक के समय बाहर निकलने वाली हवा का वेग 160 किलोमीटर प्रति घन्टा तक होता है। शरीर में एक कम्पन सी होती है और आंखें बन्द हो जाती हैं। छींक आने के बाद शरीर में कुछ ताज़गी आ जाती है, सिर में हल्कापन आ जाता है। कुछ लोग तमाखू (नसवार) जैसे पदार्थ का प्रयोग करके कृत्रिम तरीके से छींक लेते हैं, किन्तु छींक लेने का यह तरीका शरीर के लिए हानिकारक है।



हमें हिचकी क्यों आती है?

जब किसी को हिचकी आती है तो यह कहा जाता है कि उसे कोई याद कर रहा है या उसने कोई चीज़ चुरा कर खा ली है। ये सब कहावतें निराधार हैं। हिचकी आना कोई रहस्य की बात नहीं है। यह शरीर की एक प्रतिवर्ती (Reflex)क्रिया है जिसके द्वारा शरीर अपनी सुरक्षा स्वयं करता है। प्रश्न यह उठता है कि हमें हिचकी क्यों आती है?

हमारी छाती और पेट के बीच में एक डायफ्राम (Diaphragm) होता है। अन्दर की ओर सांस खींचते समय यह डायफ्राम नीचे चला जाता है और पेट को दबाता है जिससे फेफड़ों में हवा भर जाती है और सांस बाहर निकालते समय यह ऊपर की ओर आ जाता है जिससे हवा फेफड़ों से बाहर निकल जाती है। इस प्रकार यह डायफ्राम ऊपर-नीचे होता रहता है और सांस लेने की क्रिया बिना आवाज किए चलती रहती है। यह डायफ्राम एक पिस्टन की तरह काम करता है। कभी-कभी पेट में गैस या अम्लता (Acidity) बढ़ जाने के कारण यह डायफ्राम उत्तेजित होकर सिकुड़ जाता है। ऐसी स्थिति में फेफड़ों में जाने वाली हवा रुकावट के कारण एक अजीब सी आवाज पैदा करती है। इसी को हम 'हिचकी आना' कहते हैं। अतः हिचकी आना एक ऐसी क्रिया है जिसके द्वारा पेट में बनी गैस या अवांछित भोजन को शरीर बाहर निकालने की कोशिश करता है जिससे सांस लेने में कोई रुकावट न हो। शराब पीने या पास में किसी टयूमर के हो जाने पर भी यह डायफ्राम सिकुड़ जाता है और हमें हिचकी आने लगती है।

ठंडा पानी पीने पर हिचकी आना बंद हो जाता है क्योंकि ठंडे पानी के द्वारा डायफ्राम में पैदा हुई उत्तेजना समाप्त हो जाती है और वह सामान्य रूप से ऊपर-नीचे गति करने लगता है। थोड़ी देर सांस रोकने से भी हिचकी बन्द हो जाती है। अचानक ही किसी डरावनी चीज को देखने पर भी हिचकी बन्द हो जाती है। यदि हिचकी आना काफी समय तक बंद न हो तो डाक्टर की सलाह लेना अत्यंत आवश्यक है। आमतौर पर ऐसी स्थिति में 5 से 10 प्रतिशत कार्बन डाइआक्साइड युक्त आक्सीजन में सांस लेने की सलाह दी जाती है।



कुछ लोग नींद में खर्राटे क्यों लेते हैं?

यह देखा गया है कि कुछ लोग नींद में खर्राटों की बड़ी विचित्र आवाज़ पैदा करते हैं। नींद में उनका मुंह थोड़ा सा खुला रहता है और सांस लेते समय उनके मुंह से घर्र-घर्र की आवाज आती रहती है। क्या तुम जानते हो कि ऐसा क्यों होता है?

सामान्य रूप से सभी लोग नाक द्वारा सांस लेते हैं। कुछ लोगों को जिनकी नाक अक्सर बन्द रहती है मुंह से सांस लेने की बुरी आदत पड़ जाती है। सोते समय जो लोग मुंह से सांस लेते हैं वे ही खर्राटे की आवाज पैदा करते हैं।

अब प्रश्न उठता है कि सोते समय मुंह से सांस लेने पर खर्राटे की आवाज क्यों पैदा होती है जबकि जागते समय मुंह से सांस लेने पर ऐसी आवाज पैदा नहीं होती?

जब हम जगे हुए होते हैं तब हमारे मुंह के अंदर गले के पास की त्वचा सख्त और तनी हुई रहती है, लेकिन सोते समय यह कुछ ढीली पड़ जाती है। मुंह से सांस लेने पर ढीली त्वचा वायु के दबाव द्वारा कंपन करने लगती है। त्वचा के इसी कंपन के फलस्वरूप एक आवाज निकलने लगती है। इसी आवाज को दूसरे लोग खर्राटे के रूप में सुनते हैं। इस खर्राटे की आवाज के कारण एक ही कमरे में सोये हुए दूसरे व्यक्तियों की नींद में भी खलल पड़ जाता है।

क्या सोते समय खर्राटे को रोकने का कोई उपाय है? यदि हम सोने से पहले अपनी नाक और मुंह भली-भांति साफ कर लें तो सोते समय खर्राटे को कुछ हद तक कम किया जा सकता है। ऐसा करने से नाक का रास्ता साफ हो जाता है। मुंह को साफ करने से गला भी साफ हो जाता है। नाक और मुंह साफ होने से नाक द्वारा सांस लेने की सम्भावना बढ़ जाती है। मुंह से सांस लेने की आदत छोड़ देने पर भीं सोते समय खर्राटे नहीं आते। आमतौर पर जिन लोगों की नाक नज़ला आदि के कारण रुकी रहती है उन्हें मुंह से सांस लेने की आदत पड़ जाती है।

स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से भी मुंह से सांस लेना हानिकारक है। वायु में उपस्थित रोग के कीटाणु और धूल-कण मुंह के द्वारा सीधे ही हमारे शरीर में प्रवेश कर जाते हैं। नाक के अंदर उपस्थित बाल इन कीटाणुओं को और धूलकणों को शरीर के अंदर जाने से रोकते हैं। लेकिन मुंह के भीतर ऐसी कोई व्यवस्था नहीं है। अतः हर व्यक्ति को नाक से सांस लेने की आदत डालनी चाहिए।



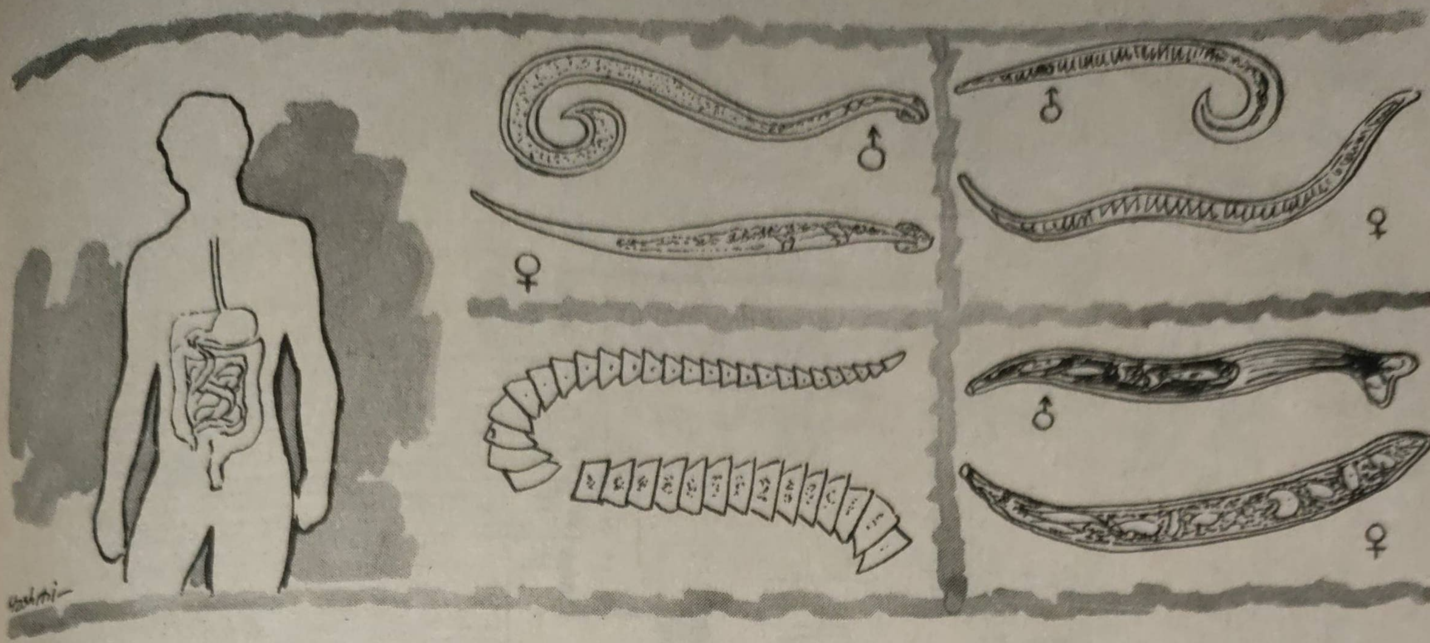
बच्चों को पोलियो कैसे हो जाता है?

पोलियो या बाल-पक्षाघात साधारणतः बच्चों को होने वाला एक भयंकर रोग है। लेकिन यह रोग बड़ों को भी हो सकता है। इस रोग के आक्रमण से बहुत से बच्चे मर जाते हैं, लेकिन जो बच जाते हैं उन में से अधिकतर अपंग हो जाते हैं। सन् 1950 में अकेले अमरीका में ही 33344 लोगों पर इस रोग का आक्रमण हुआ। सन् 1952 में डेनमार्क, जर्मनी, जापान, बेल्जियम, कोरिया, सिंगापुर और भारत में यह रोग भयंकर महामारी (Epidemic) के रूप में फैला। क्या तुम जानते हो कि यह रोग कैसे होता है और उसका शरीर पर क्या प्रभाव पड़ता है?

पोलियो रोग एक विषाणु (Virus) द्वारा फैलता है। वायु से इस रोग के विषाणु मुंह में प्रवेश करते हैं और गले से होते हुए आंतों तक पहुच जाते हैं। आंतों से ये विषाणु रक्त में पहुंचकर सीधे केंद्रीय नाड़ी संस्थान (Central Nervous System) पर आक्रमण करते हैं। ये रीढ़ की हड्डी की कोशिकाओं को नष्ट कर देते हैं। मस्तिष्क में गति नियंत्रण करने वाले न्यूरान्स इनके द्वारा प्रभावित हो जाते हैं। शरीर की जिस मांसपेशी की कोशिकाएं इनके द्वारा नष्ट कर दी जाती हैं, वह मांसपेशी फिर कोई काम नहीं कर सकती। इस प्रकार इन विषाणुओं द्वारा शरीर के किसी भी अंग का पक्षाघात हो जाता है।

शुरू-शुरू में जब पोलियो के विषाणु शरीर में प्रवेश करते हैं तो सिर में हल्का-हल्का दर्द रहने लगता है। गला खट्टा-खट्टा रहने लगता है। हल्का बुखार हो जाता है और उल्टी की शिकायत होने लगती है। शरीर में बेचैनी रहती है। हर समय नींद की सी अवस्था रहती है। दो-तीन दिन में बुखार तेज हो जाता है। मरीज का स्वभाव बहुत चिड़चिड़ा हो जाता है। कमर में और शरीर के दूसरे अंगों में तेज दर्द होने लगता है। गर्दन सख्त हो जाती है और आखिर में शरीर के किसी भी अंग का पक्षाघात हो जाता है। यदि पैरों में पोलियो का प्रभाव हुआ है तो वह मरीज चल-फिर नहीं सकता है, यदि रीढ़ की हड्डी के ऊपर का भाग प्रभावित हुआ है तो मरीज को सांस लेने में परेशानी होती है। सांस घुटने से मरीज की मृत्यु हो जाती है।

सन् 1955 में अमरीका के डा० जोनास साल्क (Dr. Jonas Salk) ने पोलियो से बचने के लिए एक टीके का आविष्कार किया था। यह टीका बन्दर के गुर्दे से पोलियो के वायरस को लेकर और उसे मारकर बनाया गया था। थोड़े-थोड़े समय के बाद तीन या चार इन्जेक्शन लगवाने के बाद पोलियो होने का डर नहीं रहता। इसके बाद, अमरीका के डा० अलबर्ट साबिन (Albert Sabin) ने पोलियो निरोधक एक ऐसी दवा की खोज की, जिसे केवल मुंह के द्वारा ही लिया जा सकता है। एक-एक महीने के अंतर पर इस दवा को तीन बार लेने के बाद पोलियो होने का खतरा बिलकुल समाप्त हो जाता है। यह दवा पोलियो के जीवित वायरसों को कमजोर करके बनाई जाती है। अमरीका के डा० हेराल्ड कोक्स (Herald Cox) ने पोलियो की रोकथाम के लिए पी जाने वाली एक और भी सस्ती दवा कुछ ही वर्ष पहले बनायी है। यह दवा जीवित वायरसों से विकसित की गई है। इसे एक बार पीने से पोलियो होने का डर नहीं रहता।



पेट में कीड़े क्यों हो जाते हैं?

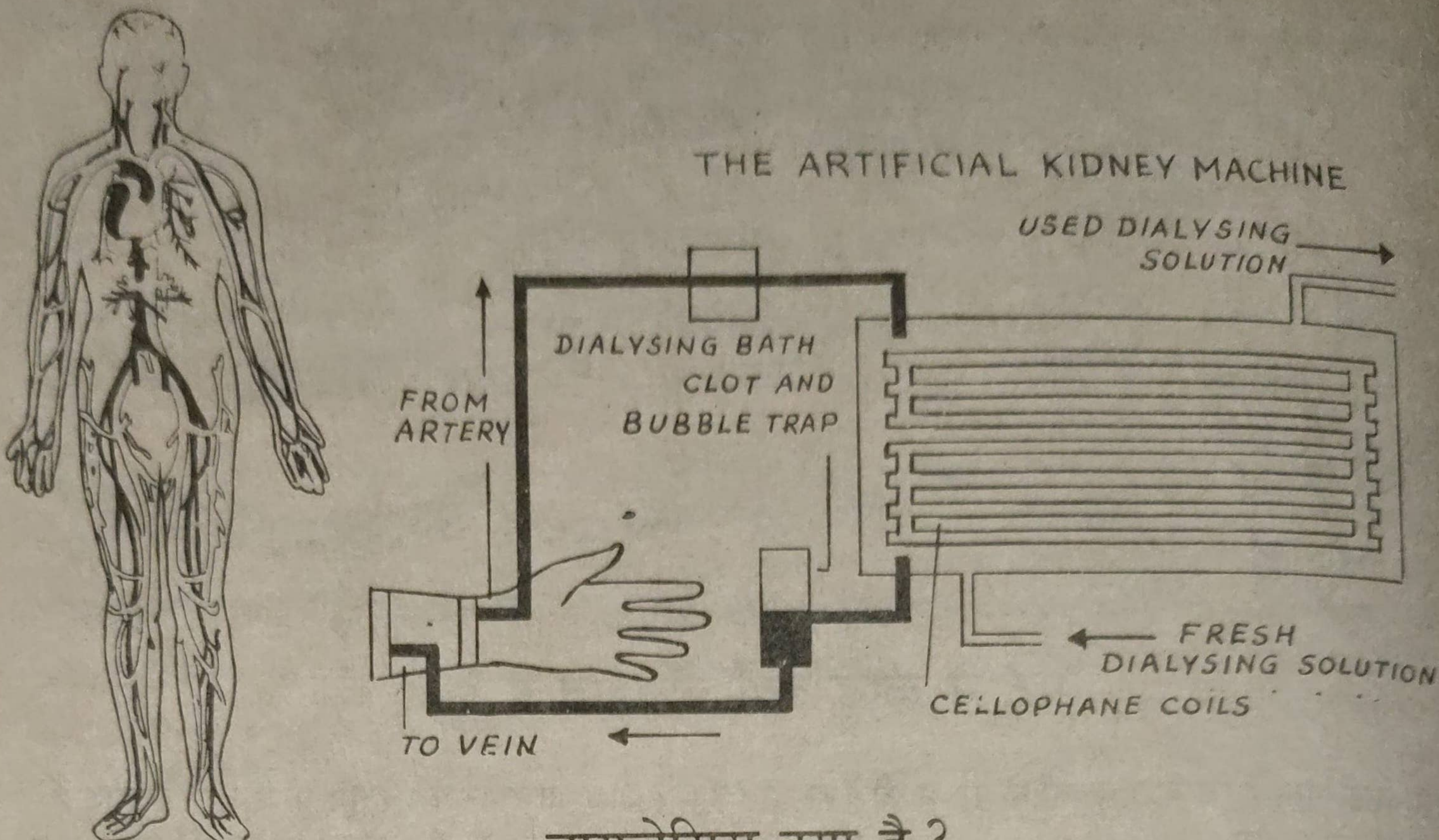
यह देखा गया है कि कुछ बच्चों के पेट में कीड़े हो जाते हैं। ये कीड़े आमतौर पर केंचुए के आकार के होते हैं। इन्हें गोल कृमि (Round worms) कहते हैं। क्या तुम जानते हो कि ये कीड़े हमारे शरीर में किस प्रकार प्रवेश कर जाते हैं? इन कीड़ों के अंडे आमतौर पर फलों, सब्जियों, खुली मिठाई और बाजार में बिकने वाली अन्य खुली खाद्य वस्तुओं में होते हैं। फलों और सब्जियों को बिना धोये खाने पर ये अंडे हमारे शरीर में प्रवेश कर जाते हैं। इसी प्रकार खुली मिठाई और बाजारू चीजें खाने पर भी ये अंडे हमारे पेट में पहुंच जाते हैं।

पेट में इन अंडों से केंचुए के आकार के कीड़े हमारी आंतों में पैदा हो जाते हैं। आंतों में ये कीड़े बड़े आनंद के साथ रहते हैं, क्योंकि वहां इन्हें हमारा खाया हुआ भोजन मिल जाता है। जो भोजन हमारे शरीर को मिलना चाहिए, उसका बहुत सारा अंश ये कीड़े खा जाते हैं। परिणाम यह होता है कि इनकी उपस्थिति के कारण आदमी दिन प्रतिदिन कमजोर होता जाता है। इन कृमियों की त्वचा काफी मोटी और सख्त होती है जिस पर हमारे पेट में उपस्थित पाचक रसों और अम्लों का कोई प्रभाव नहीं होता।

यदि इन कृमियों की बढ़ोतरी को ठीक समय पर न रोका जाए तो काफी गम्भीर परिणाम हो सकते हैं। सौभाग्यवश आज ऐसी औषधियां उपलब्ध हैं जिनके प्रयोग से ये कीड़े पेट में आसानी से मर जाते हैं। जिस बच्चे के पेट में ऐसे कीड़े हों उसे फौरन ही डाक्टर के पास ले जाना चाहिए।

गोल कृमि पैदा न हों इससे बचने के लिए यह आवश्यक है कि हम साफ और स्वच्छ पदार्थ ही खाएं। जिस मनुष्य के शरीर में इस प्रकार के कीड़े होते हैं उसकी टट्टी में इन कीड़ों के हजारों अंडे प्रतिदिन निकलते हैं। ये अंडे मादा देती हैं। ये अंडे खुले खेतों में पेड़ों की पत्तियों और फलों पर पहुंच जाते हैं। इन्हीं फलों और सब्जियों को बिना धोये खाने पर ये अंडे हमारे शरीर में प्रवेश कर जाते हैं।

आमतौर पर पेट में कीड़े होने की शिकायत जवान व्यक्तियों की अपेक्षा छोटे बच्चों को अधिक होती है। इसका कारण यह है कि बच्चे खुली जगह में अधिक खेलते हैं, सफाई पर कम ध्यान देते हैं, बाजारू चीजें भी अधिक खाते हैं और खाने से पहले अपने हाथ भी साफ नहीं करते हैं। यदि खाद्य पदार्थों की सफाई पर विशेष ध्यान रखा जाए और किसी भी चीज को खाने से पहले हाथ धोने की आदत डाल ली जाए, तो इन कीड़ों के आक्रमण से बचा जा सकता है।



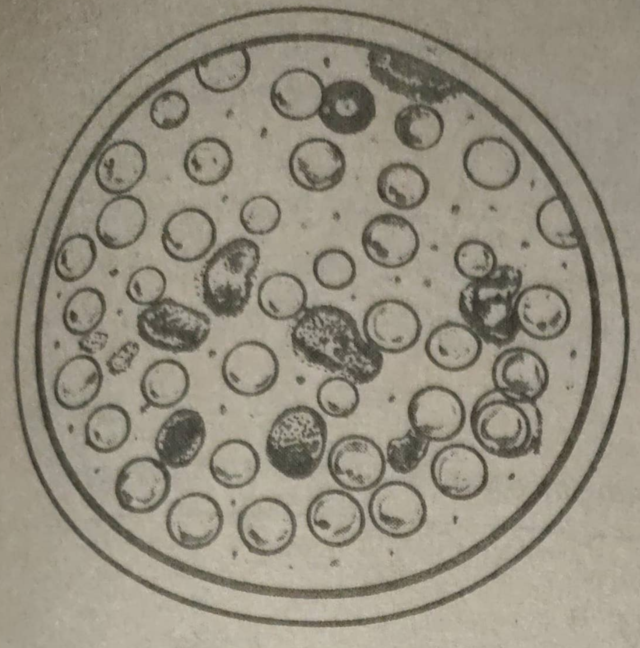
डायलेसिस क्या है ?

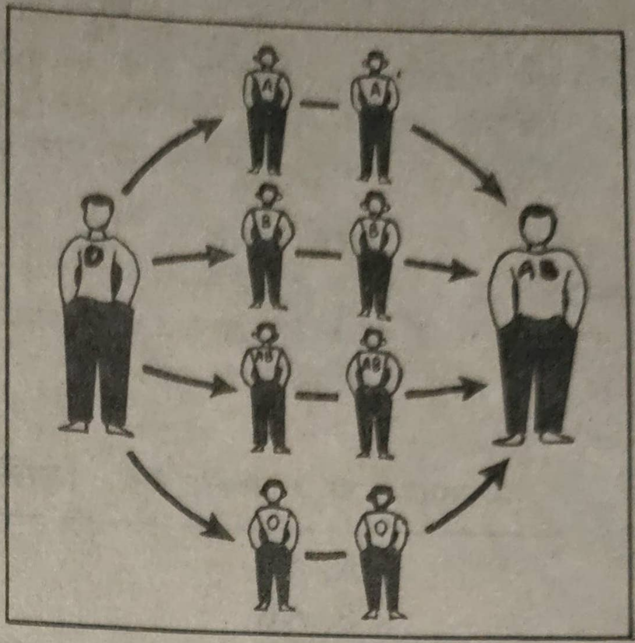
हमारे शरीर की कोशिकाओं में प्रतिदिन बहुत से हानिकारक पदार्थ पैदा होते रहते हैं। कोशिकाओं द्वारा पैदा हुई यह गन्दगी खून में मिलती रहती है, जिसके फलस्वरूप खून अशुद्ध हो जाता है। खून से इस गन्दगी को छानकर शुद्ध करने का कार्य हमारे गुर्दे (Kidneys) करते हैं। हमारे शरीर में दो गुर्दे होते हैं। हृदय से लगभग 18 50 लिटर रक्त इन गुर्दों में सारे दिन में पहुंचता है। गुर्दे का आकार लगभग हमारी मुट्ठी के बराबर होता है। प्रतिदिन खून गुर्दों से होकर बहुत बार गुजरता है। खून में उपस्थित हानिकारक पदार्थ गुर्दों द्वारा छनकर मूत्र के साथ बाहर निकल जाते हैं। हम लगभग 1.5 लिटर मूत्र रोजाना बाहर निकालते हैं। कृत्रिम तरीकों द्वारा रक्त से हानिकर पदार्थों को छानकर अलग करना ही डायलेसिस (Dialysis) की क्रिया कहलाती है।

यदि किसी व्यक्ति के गुर्दे ठीक ढंग से कार्य न करें, तो इन हानिकारक पदार्थों की मात्रा खून में बढ़ती जाएगी जिसके फलस्वरूप रक्त जहरीला होता जाएगा। इस जहरीलेपन से आदमी की मृत्यु तक हो सकती है। वैज्ञानिकों ने ऐसे छन्नों का निर्माण कर लिया है जो शरीर के गन्दे खून को शरीर से बाहर निकालकर साफ करने का काम करते हैं, इन छन्नों को डाइलाइजर (Dialyser) कहते हैं रोगी का गन्दा रक्त उसकी किसी एक धमनी (Artery) से सिरिन्ज द्वारा डाइलाइजर में भेजा जाता है। यहां यह रक्त साफ होकर रोगी की किसी शिरा (Vein) के द्वारा शरीर में वापस भेज दिया जाता है।

यद्यपि कृत्रिम डाइलाइजर गुर्दों का मुकाबला कभी नहीं कर सकता, लेकिन फिर भी इसकी सहायता से उस रोगी को, जिसके गुर्दे काम करना छोड़ दें, बहुत दिनों तक जिंदा रखा जा सकता है। ऐसे रोगी को हर तीसरे-चौथे दिन डायलेसिस पर रखा जाता है।

गुर्दों की खराबी को केवल नए गुर्दे लगाकर ही ठीक किया जा सकता है लेकिन यह तभी संभव है जब रोगी की उम्र बहुत अधिक न हो। ये गुर्दे या तो जीवित व्यक्ति से लेने होते हैं या किसी स्वस्थ व्यक्ति के तुरंत ही मरने के बाद लेने पड़ते हैं।





मनुष्य का खून अलग-अलग तरह का क्यों होता है?

सभी स्त्री और पुरुषों का खून देखने में तो एक जैसा लगता है परन्तु वास्तव में यह एक जैसा होता नहीं है। मुख्य रूप से हमारा खून लाल रक्त कण (Red Blood Corpuscles), श्वेत रक्त कण (White Blood Corpuscles), प्लेटलेट्स (Platelets) और प्लाज्मा (Plasma) से मिलकर बना हैं। सूक्ष्म परीक्षणों से पता चलता है कि बहुत से व्यक्तियों के खून के लाल रक्त कणों की सतह पर अलग-अलग प्रकार के एन्टीजन (Antigen) नामक पदार्थ के अणु होते हैं। एंन्टीजन के अणु एक प्रकार के प्रोटीन होते हैं। एन्टीजन के इन अणुओं की भिन्नता के कारण अलग-अलग व्यक्तियों का खून अलग-अलग हो जाता है।

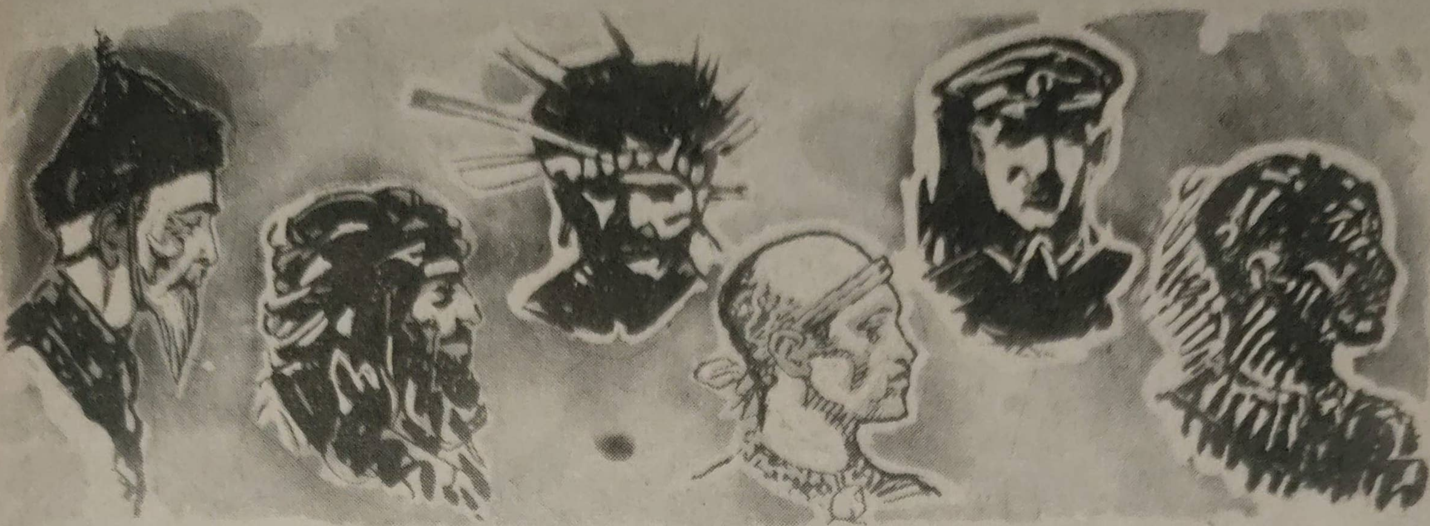
सन् 1900 में डाक्टर कार्ल लैन्ड स्टीनर (Dr. Karl Land Steiner) ने A और B दो प्रकार के एन्टीजनों का पता लगाया। इस अनुसन्धान पर उन्हें 1930 में नोबेल पुरस्कार दिया गया। जिस व्यक्ति के रक्त में A प्रकार के एन्टीजन होते हैं उसका खून A ग्रुप का कहलाता है और जिसके खून में B प्रकार के एन्टीजन होते हैं उसका खून B ग्रुप का कहलाता है। बाद में पता चला कि कुछ व्यक्तियों के रक्त में A और B दोनों ही प्रकार के एन्टीजन एक साथ होते हैं। ऐसे रक्त को AB ग्रुप का नाम दिया गया। जिन व्यक्तियों के खून में A और B कोई भी एन्टीजन नहीं होता उसके रक्त को O ग्रुप का नाम दिया गया। इस प्रकार सभी मनुष्यों के खून को A, B, AB और O चार वर्गों में बांट दिया गया।

अब तक लगभग 200 से अधिक रक्त वर्गों का अध्ययन किया जा चुका है लेकिन जहां तक किसी रोगी को खून देने का सम्बन्ध है उसमें केवल ऊपर दिए गए चार वर्गों का ही महत्व है। किसी भी रोगी को रक्त देने से पहले उसके रक्त ग्रुप का परीक्षण जरूरी है। एक सगे भाई-बहन का खून भी अलग-अलग हो सकता है और दो अलग-अलग जातियों के दो व्यक्तियों का खून भी एक जैसा हो सकता है। A ग्रुप का रक्त A और AB ग्रुप वाले व्यक्तियों को दिया जा सकता है। AB ग्रुप का रक्त केवल AB ग्रुप के रक्त वाले प्राणी को ही दिया जा सकता है। O ग्रुप का रक्त O, A, B और AB ग्रुप वाले किसी भी रोगी को दिया जा सकता है। इस ग्रुप को यूनीवर्सल डोनर (Universal donor) कहते हैं। इसी प्रकार A ग्रुप वाला प्राणी O और A से, B ग्रुप वाला B और O से, O ग्रुप

वाला O से और AB ग्रुप वाला व्यक्ति O, A, B और AB किसी से भीं रक्त प्राप्त कर सकता है। (पिछले पृष्ठ पर दिया गया चित्र देखें) AB ग्रुप को यूनिवर्सल रिसेप्टर (Universal Receptor) कहते हैं क्योंकि इस वर्ग के रक्त वाले प्राणी को किसी भी ग्रुप का खून दिया जा सकता है।

यदि गलती से एक गलत ग्रुप का रक्त किसी रोगी को दे दिया जाए तो रोगी की मृत्यु हो जाती है। ऐसा इसलिए होता है कि अलग-अलग वर्गों के एन्टीजन एक दूसरे से मिल नहीं सकते। यदि केवल रक्त का प्लाज्मा ले लिया जाए तो वह किसी को भी दिया जा सकता है क्योंकि रक्त का प्लाज्मा सभी का एक जैसा होता है। अतः रक्त देने से पहले ग्रुप मिलाना अत्यन्त आवश्यक है।

ग्रुप	किसको दिया जा सकता है?	किससे लिया जा सकता है	एन्टीजन का प्रकार
A	A, AB	O, A	A
B	B, AB	O, B	B
AB	AB	O, A, B, AB	A और B
O	O, A, B, AB	O	कोई एन्टीजन नहीं होता

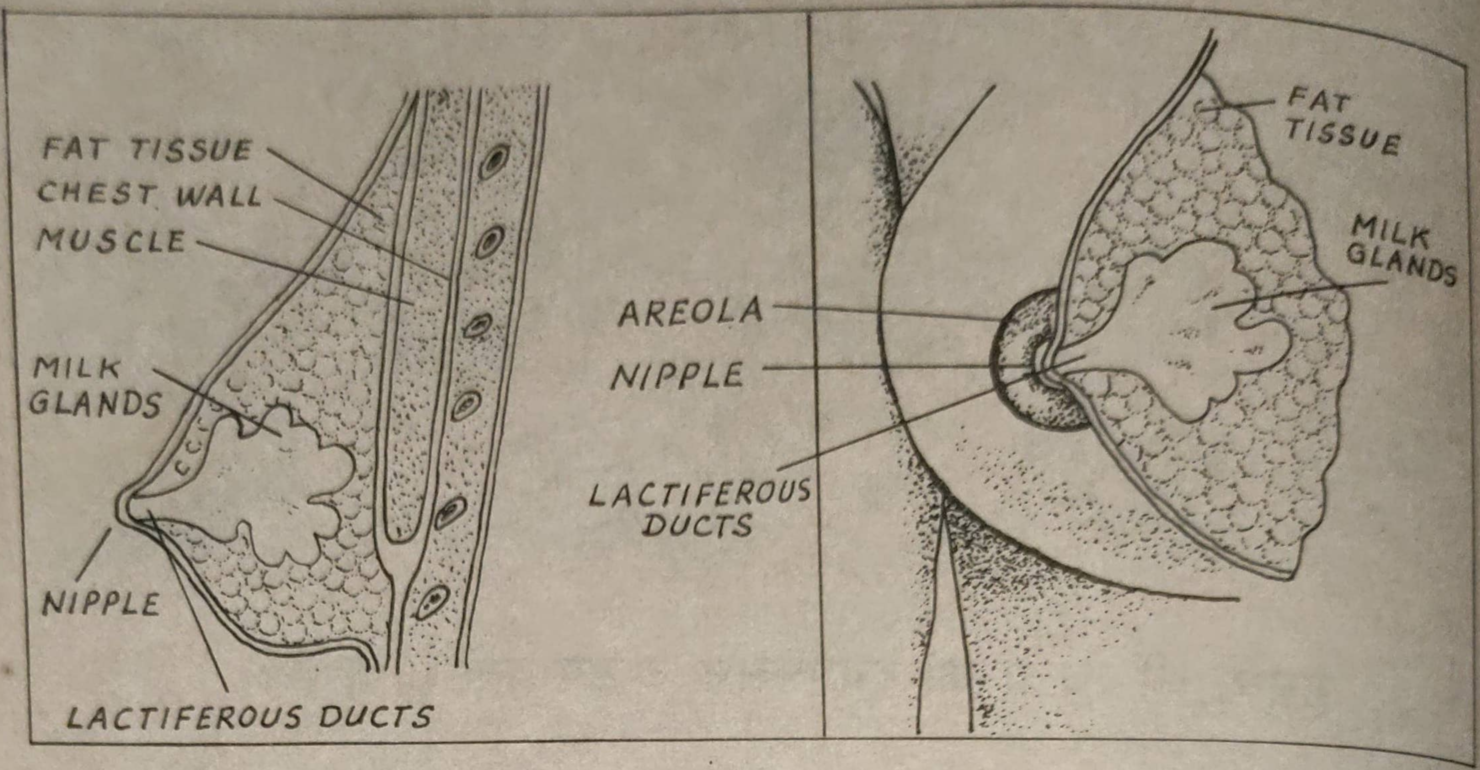


मनुष्य की त्वचा का रंग अलग-अलग क्यों होता है?

संसार के सभी लोगों की त्वचा के रंग में कुछ न कुछ भिन्नता अवश्य होती है। जैसे उत्तरी योरुप के लोगों का रंग बहुत गोरा होता है लेकिन पश्चिमी अफ्रीका के लोगों की त्वचा का रंग एकदम काला होता है। उत्तरी-पूर्वी एशिया के लोगों की त्वचा का रंग पीलापन लिए हुए होता है। अधिकतर लोगों का रंग एकदम सफेद, काला या पीला नहीं होता बल्कि इन रंगों का मिश्रण होता है। क्या तुम जानते हो कि लोगों की त्वचा का रंग अलग-अलग क्यों होता है?

हर व्यक्ति की त्वचा का रंग शरीर में उपस्थित कुछ रंगीन पदार्थों पर निर्भर करता है। इन रंगीन पदार्थों को पिगमैन्ट (Pigments) कहते हैं। प्रत्येक मनुष्य के शरीर में मुख्य रूप से तीन प्रकार के रंगीन पदार्थ होते हैं। इनमें से एक पदार्थ को मेलानिन (Melanin) कहते हैं। यह पदार्थ भूरे (Brown) रंग का होता है। शरीर में इस पदार्थ के अधिक मात्रा में होने से रंग काला दिखाई देता है। दूसरे पदार्थ को केरोटेन (Carotene) कहते हैं। इसका रंग पीला होता है और तीसरा पदार्थ हेमोग्लोबिन (Haemoglobin) होता है। इसका रंग लाल होता है। यह पदार्थ रक्त के लाल कणों में होता है। इन तीनों पदार्थों की अनुपस्थिति में त्वचा का अपना रंग क्रीम जैसा सफेद होता है। इन चारों रंगों के मिश्रणा से ही त्वचा का रंग बनता है। संसार में पाए जाने वाले सभी व्यक्तियों की त्वचा के रंगों को इन चारों पदार्थों को अलग-अलग अनुपातों में मिलाने से प्राप्त किया जा सकता है। जिस व्यक्ति के शरीर में मेलानिन अधिक होगा उसका रंगा काला होगा और जिसके शरीर में केरोटिन अधिक होगा उसका रंग पीलापन लिए हुए होगा।

सूर्य के प्रकाश में शरीर के ऊतकों द्वारा अधिक मेलानिन पैदा किया जाता है। यही कारण है कि गर्म प्रदेशों में रहने वाले लोगों की त्वचा का रंग काला होता है। जब आप कई दिनों तक तेज़ धूप में काम करते हैं तो सूर्य के प्रकाश में उपस्थित पराबैंगनी किरणें (Ultraviolet Rays) त्वचा के अन्दर अधिक मेलानिन पैदा करती हैं जिससे हमारा रंग काला हो जाता है। ठंडे देश में रहने वाले लोगों की त्वचा का रंग गोरा होता है क्योंकि वहां के निवासियों की त्वचा में मेलानिन का निर्माण कम होता है। जिन लोगों की त्वचा में इन पिगमैन्टों की क्रमी हो जाती है उनकी त्वचा पर सफेद धब्बे बनने लगते हैं। इसे श्वेत कुष्ठ (Leucoderma) कहते हैं। यह रोग किसी भी व्यक्ति को हो सकता है।

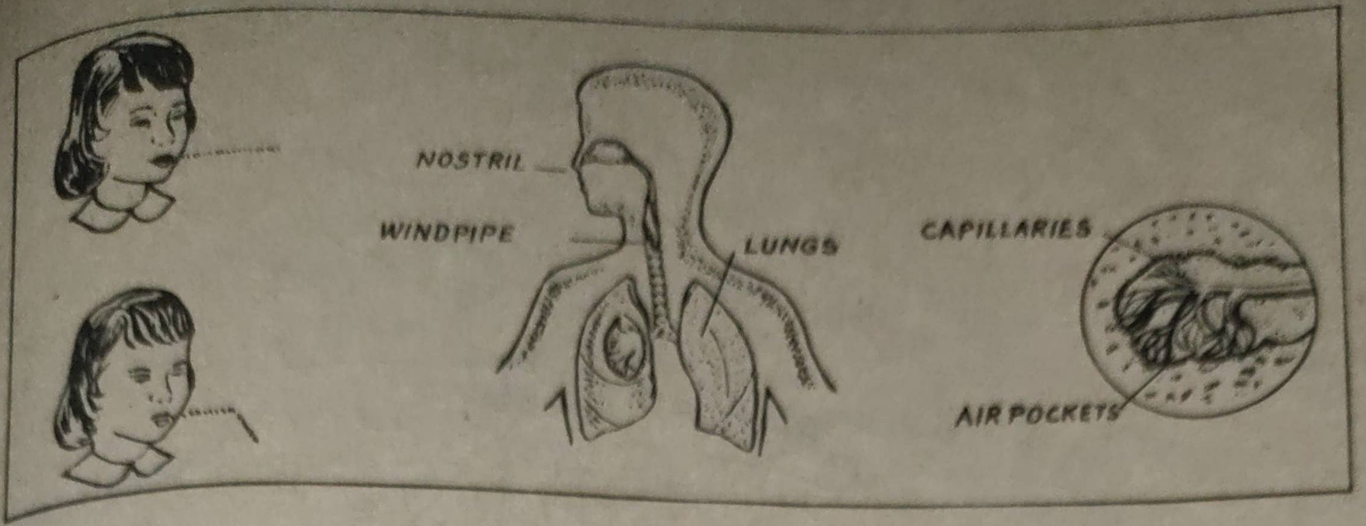


स्तनधारी मादा के शरीर में दूध कैसे बनता है?

गाय, भैंस, भेड़, बकरी आदि ऐसे जानवर हैं जो दूध देते हैं। ये सभी स्तनधारी प्राणियों की श्रेणी में आते हैं। इनके अतिरिक्त दूसरे जितने भी स्तनधारी प्राणी हैं वे सभी अपने बच्चों को दूध पिलाते हैं। स्तनधारी प्राणी वास्तव में गर्म रक्त वाले प्राणी हैं। इनमें अधिकतर प्राणी बच्चे पैदा करते हैं और उन्हें दूध पिलाते हैं। ये फेफड़ों द्वारा सांस लेते हैं और इनके शरीर पर बाल होते हैं। क्या तुम जानते हो कि इन प्राणियों के शरीर में दूध का निर्माण कैसे होता है?

दूध शरीर में पैदा होने वाला बहुत ही महत्त्वपूर्ण पदार्थ है। इसका निर्माण मादा स्तनधारी प्राणियों के स्तनों में उपस्थित कुछ विशेष ग्रन्थियों द्वारा होता है। इनको दूध पैदा करने वाली ग्रन्थियां (Milk-producing or mammary glands) कहते हैं। ये ग्रन्थियां आकार में काफी बड़ी होती हैं और इनकी बनावट थैलीनुमा होती है। इन ग्रन्थियों से वसा (Fat) की बड़ी-बड़ी बूंदें निकलती हैं जो स्तनों में उपस्थित तरल पदार्थों से मिलकर दूध बना देती हैं। अधिकतर स्तनधारी प्राणियों में एक हारमोन (Hormone) होता है जो इन ग्रन्थियों को क्रियाशील करता है। ओवरी के कोरपस लूटियम (Corpus Luteum) से भी एक हारमोन दूध के निर्माण की क्रिया में सहायता देता है। इस प्रकार से पैदा हुआ दूध बच्चों द्वारा चूसने पर स्तनों की घुन्डी (Nipple of the breast) के छिद्रों द्वारा बाहर आ जाता है।

इस समय धरती पर लगभग 12000 किस्म के स्तनधारी प्राणी मौजूद हैं। इनके शरीर की बनावट, आकार तथा आदतें एक दूसरे से अलग-अलग हैं। अधिकतर इनमें से जमीन पर रहते हैं लेकिन कुछ पानी और हवा में भी रहते हैं। जैसे व्हेल (Whale) पानी में रहती है और चमगादड़ (Bat) हवा में उड़ते हैं। ये ठंडे, गर्म,सूखे, और नम जलवायु वाले सभी स्थानों में रहते हैं।



हम सांस क्यों लेते हैं ?

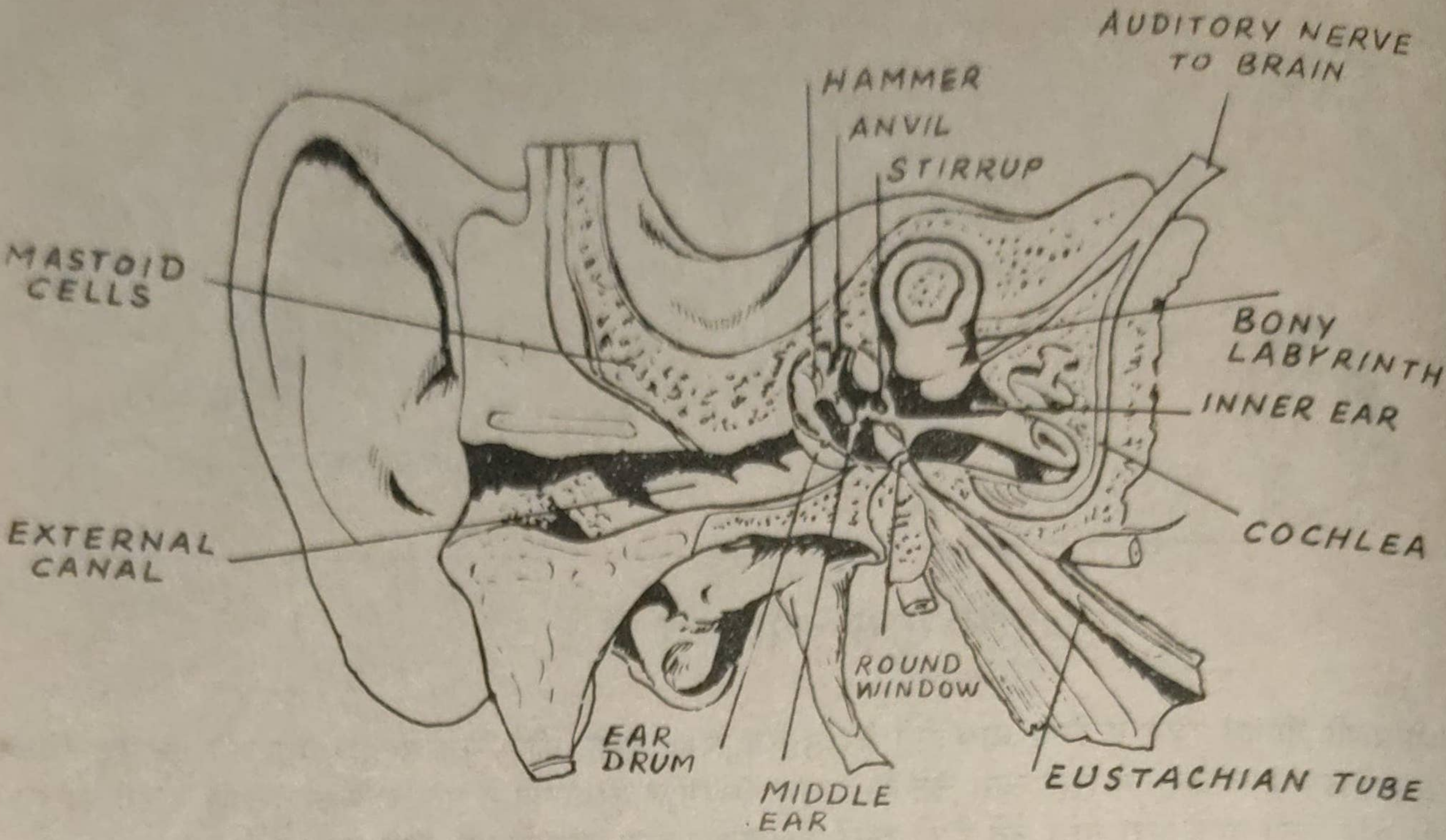
सभी प्राणी जीवित रहने के लिए सांस लेते हैं। मनुष्य, पशु, पक्षी, कीड़े-मकोड़े और यहां तक कि पेड़-पौधे आक्सीजन प्राप्त करने के लिए सांस लेते हैं। अलग-अलग जीवधारियों में सांस लेने का तरीका अलग-अलग होता है। कुछ प्राणी नाक द्वारा सांस लेते हैं तो दूसरे कुछ त्वचा द्वारा सांस लेते हैं। जैसे केंचुआ (Earthworm) त्वचा द्वारा सांस लेता है। कभी-कभी मेंढक भी त्वचा द्वारा सांस लेता है। क्या तुम जानते हो कि मनुष्य सांस कैसे लेता है और सांस लेने से शरीर में क्या होता है?

सभी मनुष्य नाक या मुंह द्वारा वायु को शरीर के अंदर ले जाते हैं। यह वायु श्वास नलिका (Windpipe) से होती हुई फेफड़ों में चली जाती है। हमारे शरीर में दो फेफड़े होते हैं, जो छाती के बाईं और दाईं ओर होते हैं। फेफड़े ऊतकों से बने एक प्रकार के कोमल थैले हैं। प्रत्येक फेफड़े में लाखों छोटी-छोटी थैलियां होती हैं, जिनमें सांस द्वारा ली गई हवा भर जाती है। जब हम सांस लेते हैं तो फेफड़े फूल जाते हैं और सांस बाहर निकालने पर फेफड़े सिकुड़ जाते हैं।

सांस द्वारा ली गई आक्सीजन रक्त द्वारा सारे शरीर में पहुंचती है। इसी आक्सीजन के द्वारा भोजन के पदार्थ आक्सीकृत (Oxidised) होते हैं। आक्सीजन की क्रिया के फलस्वरूप कार्बनडाइआक्साइड, पानी और दूसरे पदार्थ पैदा होते हैं। सांस निकालते समय यही कार्बनडाइआक्साइड और जलवाष्प बाहर निकलती है।

आक्सीकरण की क्रिया द्वारा ही ऊष्मा और दूसरी ऊर्जा पैदा होती है। इसी ऊर्जा द्वारा हम काम करते हैं। ऊष्मा ऊर्जा के कारण हमारे शरीर का तापमान स्थिर रहता है। आक्सीकरण में पैदा होने वाली ऊर्जा से ही सारे दिन मांसपेशियां काम करती रहती हैं। जब हम व्यायाम या और कोई कठिन कार्य करते हैं तो हमें अधिक ऊर्जा की आवश्यकता होती है। अधिक ऊर्जा पैदा करने के लिए हमें अधिक आक्सीजन की आवश्यकता होती है। यही कारण है कि व्यायाम या कठिन कार्य करते समय हम अधिक आक्सीजन प्राप्त करने के लिए तेजी से सांस लेते हैं।

सामान्य रूप से नवजात बच्चा एक मिनट में 60 बार सांस लेता है। 15 साल का बच्चा एक मिनट में 20 बार और जवान व्यक्ति एक मिनट में 16 से 18 बार सांस लेता है। जवान व्यक्तियों के सांस लेने की गति वृद्ध लोगों की अपेक्षा अधिक होती है। शारीरिक क्रिया उम्र, रोग और भावुकता की स्थितियों के अनुसार सांस लेने की दर कम या अधिक होती रहती है। सांस लेने की क्रिया ऐच्छिक और अनैच्छिक दोनों ही तरीकों से होती है, हम अपनी इच्छा से कुछ क्षणों के लिए सांस रोक भी सकते हैं। सांस लेने की क्रिया बिना हमारे जाने, जागने और सोने की अवस्था में लगातार होती रहती है।

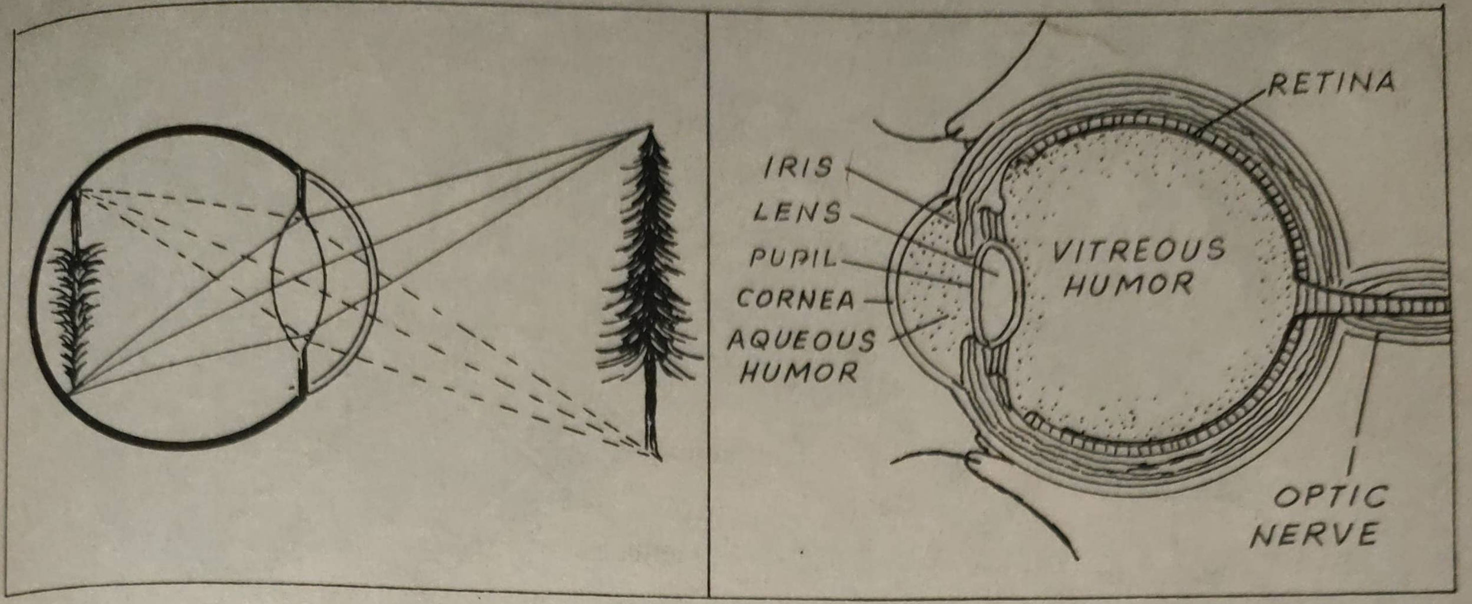


कान आवाज कैसे सुनते हैं ?

ध्वनि सुनने का काम हमारे कान करते हैं। बनावट के आधार पर कान को तीन भागों में बांटा जा सकता है। बाह्य कान (Outer ear), मध्य कान (Middle ear) और आन्तरिक कान (Internal ear)। जब किसी वस्तु से ध्वनि पैदा होती है तो सबसे पहले वह वस्तु कम्पन करना शुरू करती है। इन कम्पनों के कारण ही ध्वनि तरंगें पैदा होती हैं। ये ध्वनि तरंगें माध्यम से होती हुई हमारे कान तक पहुंचती है। बाहरी कान की बनावट कुछ ऐसी है कि यह अधिक से अधिक ध्वनि तरंगों को प्राप्त कर सकता है।

वस्तु से आने वाली ध्वनि तरंगें बाह्य कान में प्रवेश करके एक नली द्वारा कान के अन्दर जाती है। मध्य कान में एक पदो (Eardrum) होता है जो इन तरंगों के टकराने से कम्पन करने लगता है। मध्य कान में इस पर्दे के ठीक पीछे तीन छोटी-छोटी हड्डियां हैं। इन्हें हैमर (Hammer), एनविल (Anvil) और स्टिरप (Stirrup) कहते हैं। पर्दे के कम्पन करने के फलस्वरूप ये तीनों हड्डियां भी कम्पन करने लगती हैं। इस प्रकार ये तीनों हड्डियां इन कम्पनों को काक्लिया (Cochlea) तक पहुंचा देती हैं। काक्लिया आन्तरिक कान का एक हिस्सा है जो स्प्रिन्ग की भांति बना होता है। इस भाग के चारों ओर एक द्रव पदार्थ होता है। इसी द्रव के अन्दर नाड़ियों के सिरे (Nerve endings) होते हैं। काक्लिया के कम्पनों के कारण यह तरल पदार्थ भी कम्पन करने लगता है। इन कम्पनों से नाड़ियों के सिरे उत्तेजित हो जाते हैं। इस उत्तेजना से पैदा हुए आवेग (Impulse) सुनने वाली नाड़ी (Auditory Nerve) द्वारा मस्तिष्क में चले जाते हैं और इस प्रकार हमें ध्वनि सुनाई दे जाती है।

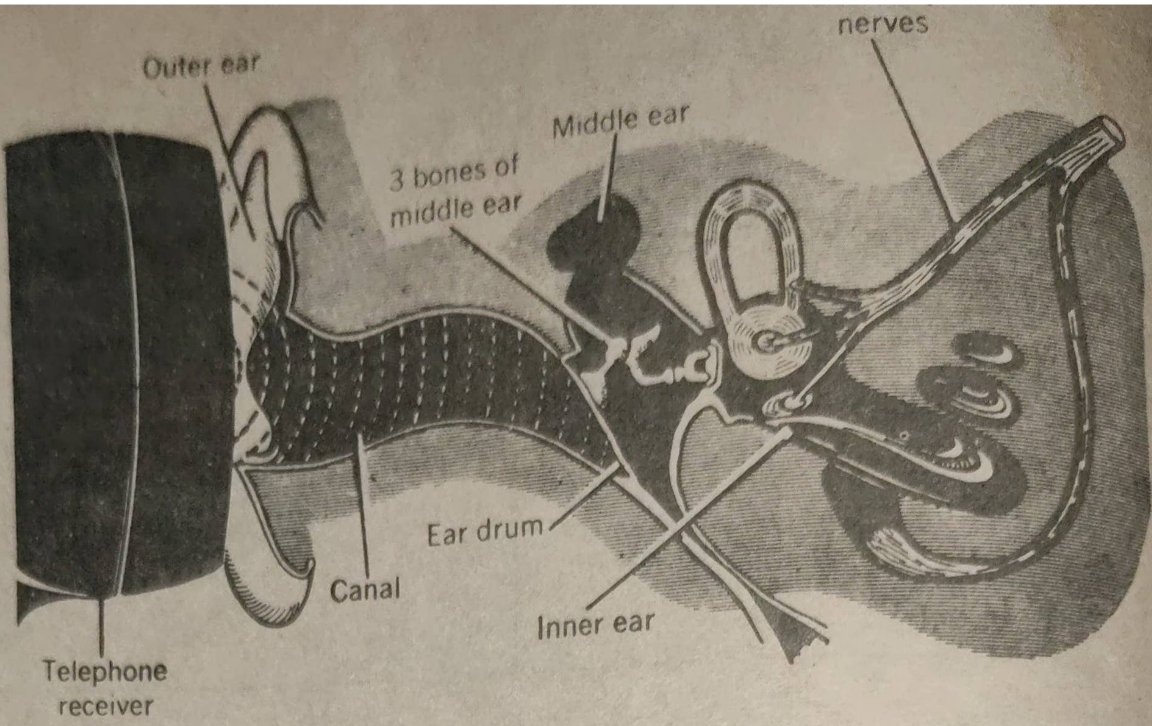
हमारे कान मन्द से मन्द और तेज से तेज ध्वनियों को सुनने के प्रति संवेदनशील होते हैं। कानों को निरोग रखने के लिए यह आवश्यक है कि समय-समय पर उनकी सफाई करते रहना चाहिए। कान में एक प्रकार का मोम जैसा पदार्थ पैदा होता रहता है। इसकी सफाई करना अत्यन्त आवश्यक है। यदि इसे साफ न किया जाए तो यह कान के पर्दे पर जमा हो सकता है और बहरापन पैदा कर सकता है। कानों की किसी भी तकलीफ के प्रति हमें सजग रहना चाहिए और कानों के डाक्टर की सलाह लेनी चाहिए।



आंखें कैसे देखती हैं?

वस्तुओं के देखने का काम हमारी आंखें करती हैं। मनुष्य की आंख कैमरे की तरह है। इसकी बनावट गोलाकार है और सामने का भाग उभरा हुआ है। आंख के सामने के काले भाग को कॉर्निया (Cornea) कहते हैं। इस काले भाग में एक छोटा सा गोल बिन्दु दिखाई देता है जिसे पुतली या तारा (Pupil) कहते हैं। इसी से प्रकाश आंख के अन्दर प्रवेश करता है। इसके पीछे आइरिस (Iris) होती है जो आंख में प्रकाश की जाने वाली मात्रा को नियंत्रित करती है। इसके पीछे एक उत्तल लैन्स (Convex lens) होता है। आंख के पिछले भाग में एक पर्दा होता है जिसे रेटिना (Retina) कहते हैं। इसी पर वस्तुओं के प्रतिबिम्ब बनते हैं। रेटिना में कुछ छड़ (Rods) और शंकु (Cones) होते हैं जो रंगों के प्रति संवेदनशील होते हैं। रेटिना का सम्बन्ध प्रकाश नाड़ी (Optic Nerve) द्वारा मस्तिष्क से होता है। लैन्स और रेटिना के बीच में एक द्रव पदार्थ होता है जिसे विट्रियस ह्यूमर (Vitreous Humour) कहते हैं। इसी प्रकार पुतली और लैन्स के बीच एक दूसरा द्रव पदार्थ होता है जिसे एक्वुअस ह्यूमर (Aqueous Humour) कहते हैं। आंख के सफेद भाग को स्कलेरा (Sclera) कहते हैं। अब प्रश्न उठता है कि आंख से वस्तुएं कैसे दिखती हैं?

जिस वस्तु को हम देखते हैं उस से चलने वाली प्रकाश की किरणें कॉर्निया पर पड़ती हैं। ये किरणें लैन्स से होती हुई रेटिना पर वस्तु का उल्टा प्रतिबिम्ब बनाती हैं। (ऊपर का चित्र देखें) यह प्रतिबिम्ब प्रकाश नाड़ी द्वारा विद्युतधारा के रूप में मस्तिष्क तक पहुंचता है। वहां यह सीधा हो जाता है और वस्तु हमें दिखाई देने लगती है। यह क्रिया बहुत तेजी के साथ होती है। किसी भी वस्तु का प्रतिबिम्ब वस्तु को आंख के सामने से हटाने पर भी 1/16 सेकिन्ड तक आंखों के पर्दे पर रहता है। यदि दो घटनाएं 1/16 सेकिन्ड से पहले गुजरती हैं तो वे हमें लगातार होती हुई दिखती हैं। सिनेमा के दृश्यों को 16 चित्र प्रति सेकिन्ड के हिसाब से दिखाया जाता है इसलिए कोई भी दृश्य हमें लगातार चलता हुआ दिखता है। आंख के अन्दर आइरिस अपने आप ही अधिक प्रकाश में सिकुड़ जाती है और कम प्रकाश में फैल जाती है। रॉड और कोन्स की सहायता से हमें रंगों का बोध होता है। हमारी आंख बैंगनी से लेकर लाल रंगों तक सभी के प्रति संवेदनशील होती है।



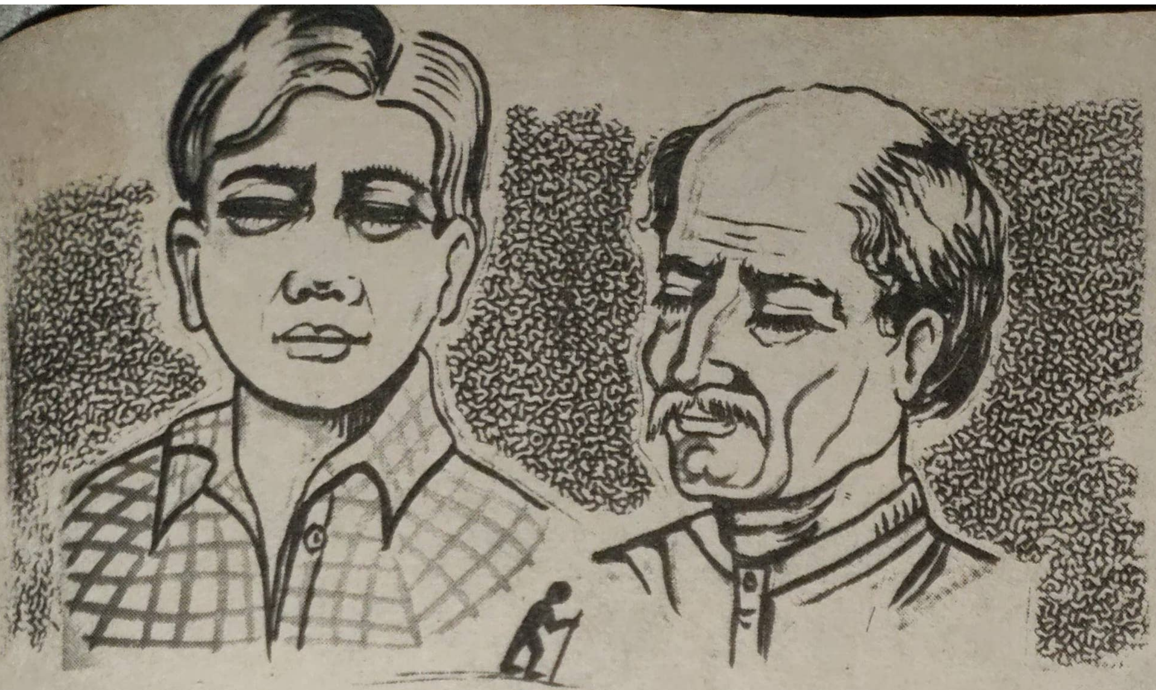
आदमी बहरा क्यों हो जाता है?

बहरापन (deafness) और कम सुनाई देना (hard of hearing) दो अलग-अलग बातें हैं। बहरेपन में आवाज़ बिल्कुल सुनाई नहीं देती और कम सुनाई देने में केवल ऊंची आवाजें सुनाई देती हैं। बहरापन दो प्रकार का होता है। पहला जन्म से और दूसरा कानों के किसी रोग या दुर्घटना से।

पैदायशी बहरापन कई कारणों से हो सकता है। जैसे गर्भाधान के तीन महीने तक यदि महिला को खसरा (Measles) हो जाता है तो पैदा होने वाला बच्चा बहरा हो सकता है। ऐसी महिलाओं से पैदा होने वाले 50% बच्चे बहरे पाए गए हैं। जन्म के बाद के बहरेपन के बहुत से कारण हो सकते हैं। एक प्रकार के बहरेपन में ध्वनि तरंगें कान के पर्दे तक नहीं पहुंच पातीं। इस प्रकार का बहरापन कानों के पर्दों पर मैल के जम जाने से होता है। कानों में सदा ही मोम जैसा भूरे रंग का पदार्थ बनता रहता है और यह छोटे-छोटे टुकड़ों के रूप में कान से बाहर आता रहता है। कुछ लोगों के यह पदार्थ कान के पर्दों पर जम जाता है। जिससे ध्वनि तरंगें इसी से टकराकर रह जाती हैं और पर्दे तक नहीं पहुंच पातीं। दूसरे प्रकार के बहरेपन में आन्तरिक कान की नाड़ियां किसी चोट या अधिक तीखी आवाजों के कारण फट जाती हैं जिससे आवाज़ सुनाई नहीं देती।

जो लोग अधिक कोलाहल के वातावरण में रहते हैं उन्हें भी कम सुनाई देने लगता है। भीनी आवाज़ों के लिए ऐसे लोगों के कानों की संवेदनशीलता कम हो जाती है। वे केवल ऊंची आवाज़ें ही सुन पाते हैं। द्वितीय महायुद्ध में तोपों और बन्दूकों की भयंकर आवाज़ों के कारण लगभग 58,000 सिपाहियों के कानों में बहरेपन का दोष आ गया था। कानों की किसी बीमारी से भी बहरापन हो सकता है। शरीर के दूसरे रोगों के कारण कानों पर होने वाले कुप्रभावों से भी बहरा हो सकता है। उम्र के बढ़ने पर भी कम सुनाई देने लगता है। कुछ नशीली दवाओं के अधिक सेवन करने से भी कम सुनाई देने लगता है। कान के अन्दर की कुछ हड्डियों के बढ़ जाने से भी बहरापन आ जाता है, क्योंकि ये हड्डियां ध्वनि तरंगों को कान के मुख्य भाग तक पहुंचने में रुकावट डालती हैं।

आज ऐसे यंत्र उपलब्ध हैं जिन्हें कान में लगाने पर कम सुनाई देने वालों को मन्द ध्वनियां भी ठीक सुनाई देने लगती है। इन यंत्रों को हियरिंग एड (Hearing aid) के नाम से पुकारते हैं।



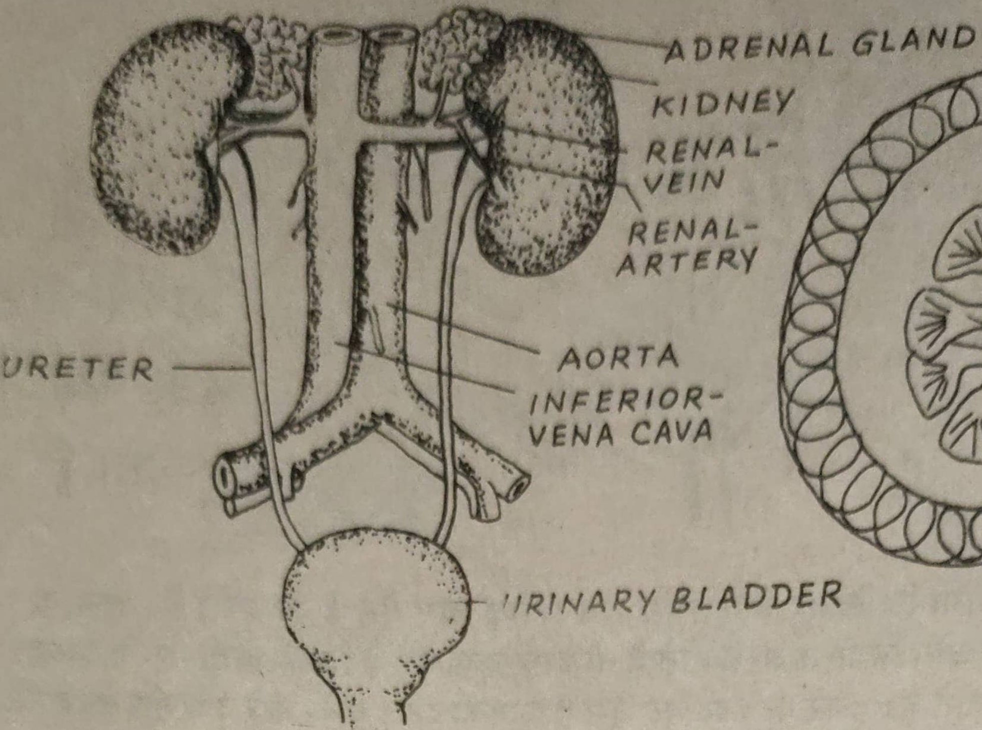
आदमी अंधा क्यों हो जाता है?

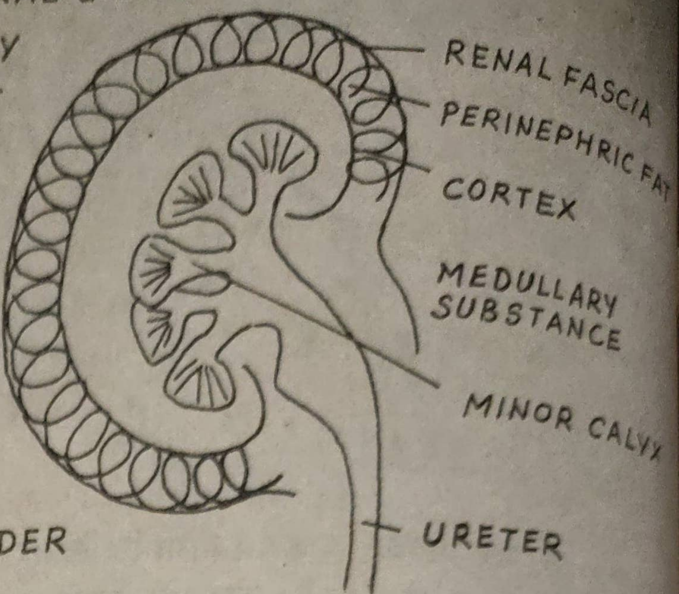
आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि संसार में लगभग 1.4 करोड़ लोग ऐसे हैं जो अन्धे हैं। अन्धापन कई प्रकार का होता है। कुछ लोग नितान्त अन्धे होते हैं तो दूसरे कुछ ऐसे हैं जिन्हें थोड़ा-थोड़ा दिखाई देता है। कुछ लोग जन्म से अन्धे पैदा होते हैं। दूसरे कुछ व्यक्ति ऐसे हैं जिनकी दृष्टि धीरे-धीरे कमजोर हो जाती है। संसार के समस्त अन्धे लोगों में जन्म से अन्धे लोगों की संख्या बहुत अधिक नहीं है। जन्म के बाद अन्धे होने वाले लोगों की संख्या काफी अधिक है। क्या तुम जानते हो कि लोग अन्धे क्यों हो जाते हैं?

अन्धेपन को हम दो भागों में बांट सकते हैं। पहला अन्धापन जो जन्म से होता है और दूसरा जो जीवन में किन्हीं दूसरे कारणों से हो जाता है। जन्मजात अन्धेपन के सभी कारणों का पता नहीं है लेकिन गर्भवती मां के कुछ रोगों के द्वारा बच्चा पेट में ही अन्धा हो सकता है। जैसे सुजाक (Gonorrhea) एक भयानक यौन रोग है। यदि यह रोग गर्भवती स्त्री को हो जाए तो पैदा होने वाला बच्चा अंधा हो सकता है। गर्भवती मां यदि आतशक (Syphilis) रोग से पीड़ित है तो भी गर्भ में बच्चे की आंखों का उचित विकास नहीं हो पाता। रेटिना, प्रकाश नाड़ियों (Optic nerves) और मस्तिष्क के प्रकाश संवेदनशील केन्द्रों (Visual centres of the brain) के रोगों के कारण भी जन्म से ही अन्धापन हो सकता है।

जन्म के बाद आंखों की दृष्टि कम होने के तीन मुख्य कारण हैं। ये हैं—आंखों में रोहे (Trachoma) हो जाना, आंखों का मोतिया (Cataract) और आंखों की नसों का दबाव बढ़ जाना (Glaucoma)। रोहे आंखों की एक भयानक बीमारी है। यह एक वायरस द्वारा होती है। इस रोग में पलकों में दाने हो जाते हैं। इसका आंखों की रोशनी पर बहुत प्रभाव पड़ता है। इस रोग के लिए एन्टीबायोटिक औषधियां (Antibiotics) आज उपलब्ध हैं। मोतिया रोग में आंखों के अन्दर उपस्थित पारदर्शक लैन्स पर धुंधलापन आ जाता है जिससे रेटिना तक पहुंचने वाले प्रकाश की मात्रा कम हो जाती है। इस रोग में आंखों की रोशनी धीरे-धीरे गिरती जाती है और अन्त में आदमी अन्धा हो जाता है। इस रोग को शल्य-चिकित्सा (Surgery) द्वारा ठीक कर दिया जाता है। ग्लूकोमा में आंख का गोला (Eye ball) सख्त हो जाता है और आंखों की नाड़ियों का दबाव बढ़ जाता है। इस रोग में दृष्टि कमज़ोर होती चली जाती है। यदि उचित समय पर इस रोग पर ध्यान दिया जाए तो इसका इलाज हो जाता है।

कुछ दूसरे रोगों से भी दृष्टि कमजोर हो जाती है। जैसे क्षय रोग (Tuberculosis), मधुमेह (Diabetes), डिप्थीरिया (Diptheria), मस्तिष्क की नाड़ियों की सूजन (Meningitis) आदि से आंखें कमजोर हो जाती हैं। कुछ दुर्घटनाओं से भी रोशनी चली जाती है। आंखों की दृष्टि कायम रखने के लिए यह आवश्यक है कि उनकी उचित सफाई रखी जाए। समय-समय पर आंखों के विशेषज्ञों की राय लेते रहना भी आवश्यक है।





मूत्र हमारे शरीर में कैसे बनता है?

हमारे शरीर में पीठ के निचल भाग में रीढ के दोनों ओर, सेम के बीज की शक्ल के दो अंग हैं जिन्हें गुर्दे (Kidneys) कहते हैं। गुर्दों का रंग कत्थई (Reddish-brown) होता है। प्रत्येक गुर्दा करीब 11 सेंटीमीटर लम्बा, 5 सेंटीमीटर चौड़ा और 2.5 सेंटीमीटर मोटा होता है। प्रत्येक गुर्दे का भार लगभग 150 ग्राम है। क्या तुम जानते हो कि गुर्दे हमारे शरीर में क्या काम करते हैं?

गुर्दों का मुख्य कार्य खून की गन्दगी को निकालना है। ये एक प्रकार के छन्ने का काम करते हैं। इतना ही नहीं गुर्दे रक्त में हर पदार्थ की मात्रा का संतुलन भी बनाए रखते हैं। कभी-कभी रक्त में नमक, चीनी और पानी की मात्रा अधिक हो जाती है तो गुर्दे इन पदार्थों की अतिरिक्त मात्रा को शरीर से बाहर निकाल देते हैं। गुर्दे मूत्र की मात्रा को भी आवश्यकतानुसार घटाते-बढ़ाते रहते हैं और इस प्रकार रक्त को अधिक गाढ़ा या पतला नहीं होने देते। रक्त में मिले अनावश्यक अम्ल या क्षार मूत्र के रूप में बाहर निकल जाते हैं।

प्रत्येक गुर्दे में लाखों कुन्डलीदार पतली नलियां होती हैं। रक्त इन नलियों से होकर बहता है और इसमें घुली गंदगी छन जाती है। यह रक्त वापस फेफड़ों में भेज दिया जाता है। एक मिनट में लगभग 1.3 लिटर रक्त गुर्दों में होकर जाता है। इस प्रकार करीब 1850 लिटर खून प्रतिदिन गुर्दों में होकर बहता है। इसमें से छानी गई गंदगी गुर्दों में से एक थैली में चली जाती है जहां वह कुछ देर के लिए जमा रहती है। इस थैली को मूत्राशय (Bladder) कहते हैं। जब यह थैली काफी भर जाती है तो इसे खाली करने की जरूरत महसूस होती है। इसे खाली करने के लिए ही हमें मूत्र त्याग करना पड़ता है। साधारण रूप से एक सामान्य व्यक्ति एक दिन में करीब 1.5 लिटर मूत्र त्याग करता है।

गुर्दों में विकार पैदा हो जाना शरीर के लिए बहुत घातक होता है। इनमें खराबी आने से रक्त में गंदगी बढ़ती रहती है, जिसके कारण मनुष्य के शरीर में विषैले प्रभाव होने लगते हैं। गुर्दों के काम न करने पर कुछ ही दिनों में आदमी की मृत्यु हो जाती है। इसलिए गुर्दों के किसी भी विकार की ढंग मे चिकित्सा करवाना बहुत आवश्यक है। गुर्दों को स्वस्थ रखने के लिए उचित मात्रा में भोजन करना बहुत जरूरी है। अधिक खाने से गुर्दों को अधिक वर्ज्य पदार्थों को निकालना पड़ता है, यानी इनको अधिक काम करना पड़ता है, जिससे विकार पैदा होने का डर रहता है। गुर्दों को ठीक रखने के लिए यह आवश्यक है कि दिन में हम आठ-दस गिलास पानी अवश्य पीएं।



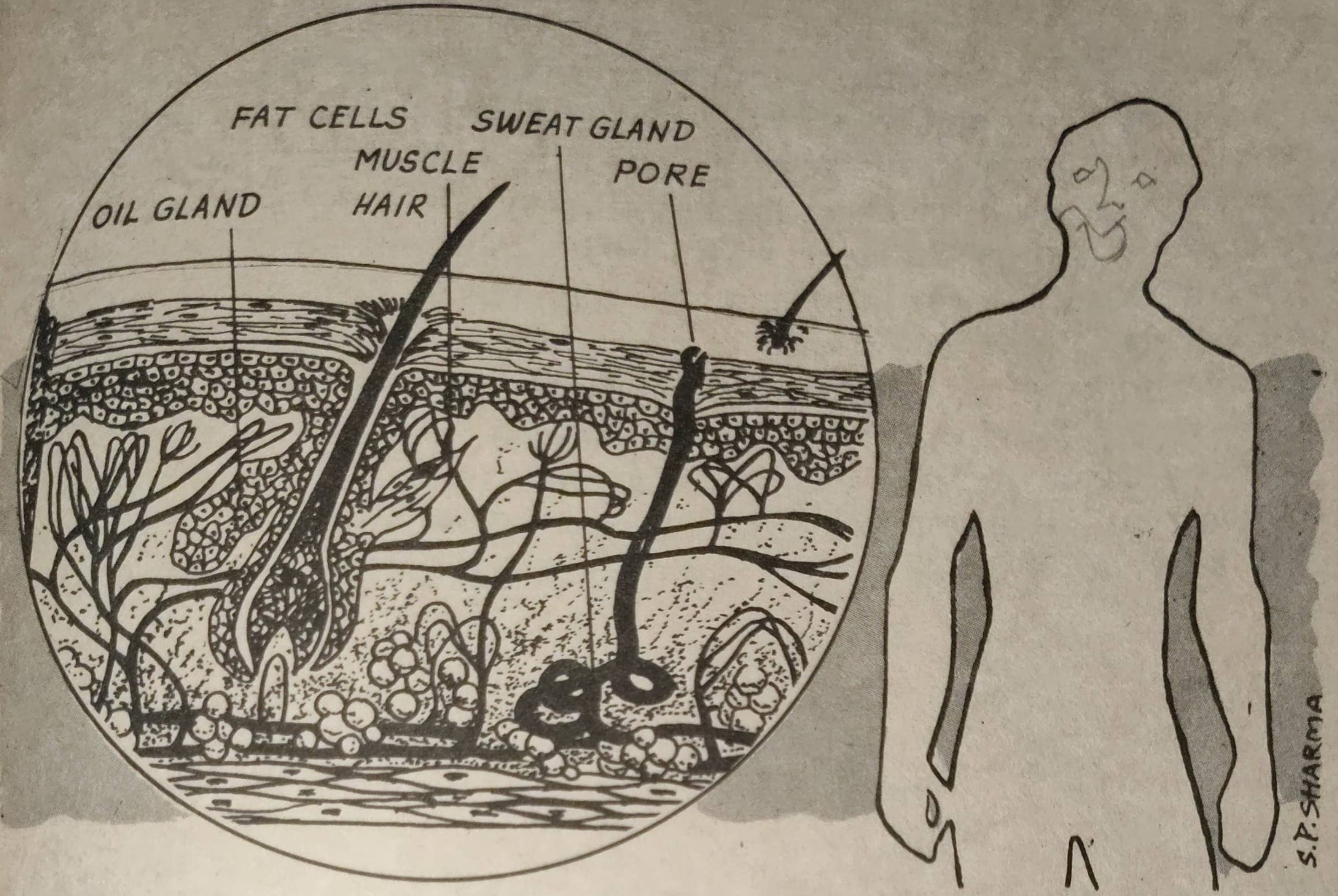
हम थक क्यों जाते हैं?

दिन भर काम करने के बाद हम सभी थकान महसूस करते हैं। इसी प्रकार तेज़ दौड़ने, तैरने और व्यायाम करने से भी हमें थकान हो जाती है। क्या तुम जानते हो कि काम करने से हम थक क्यों जाते हैं?

जब हम कोई कार्य तेजी से करते हैं और उस समय हमारी मांसपेशियों को इतनी आक्सीजन नहीं मिल पाती जितनी उन्हें चाहिए तो शरीर को ऊर्जा प्रदान करने के लिए हमारी मांसपेशियों में संचित ग्लाइकोजन (Glycogen), फर्मेंटेशन की क्रिया द्वारा लैक्टिक अम्ल (Lactic Acid) में बदल जाता है। लैक्टिक अम्ल के कारण मांसपेशियों की काम करने की क्षमता कम हो जाती है। शरीर की इसी स्थिति को हम थकान के नाम से पुकारते हैं। लैक्टिक अम्ल मांसपेशियों के लिए एक प्रकार के विष का काम करता है। यदि हम किसी तरीके से मांसपेशियों में से इस लैक्टिक अम्ल को निकाल दें तो ये फिर से काम करने योग्य हो जाती हैं। मांसपेशियों के कार्य करने के फलस्वरूप दूसरे पदार्थ भी शरीर में पैदा होते हैं इन्हें फटीग टॉक्सिन (Fatigue toxin) कहते हैं। रक्त के द्वारा ये टॉक्सिन और अम्ल सारे शरीर में पहुंच जाते हैं जिससे मस्तिष्क और शरीर दोनों ही थक जाते हैं। मानसिक कार्य करते समय भी शरीर में लैक्टिक अम्ल और फटीग टॉक्सिन पैदा होते हैं जो हमारी थकान का कारण बनते हैं। वैज्ञानिकों ने थकान से सम्बन्धित कई प्रयोग करके देखे हैं। यदि एक कुत्ते से बहुत काम कराया जाए, जिससे थककर वह सो जाए और इस थके कुत्ते का रक्त दूसरे चुस्त कुत्ते के शरीर में प्रविष्ट करा दिया जाए तो दूसरा कुत्ता अपने आप ही थककर तुरंत सो जाएगा। इसी प्रकार यदि बिना थके कुत्ते का रक्त थकान से सोये

हुए कुत्ते के शरीर में प्रविष्ट करा दिया जाए तो थका हुआ कुत्ता तुरन्त ही नींद से जाग जाएगा और बिल्कुल थकान महसूस नहीं करेगा।

थकान केवल एक रासायनिक प्रक्रिया ही नहीं है बल्कि यह एक जैविक क्रिया भी है। यह शरीर की एक सुरक्षा-क्रिया (Defense Mechanism) है। इसके द्वारा हमें यह पता चलता है कि अब हमें शरीर से अधिक काम न लेकर इसे विश्राम देना चाहिए। थकान को फौरन ही दूर नहीं किया जा सकता। इसे दूर करने के लिए शरीर की कोशिकाओं को विश्राम देना अत्यंत आवश्यक है। थकान को दूर करने का नींद एक प्रभावशाली तरीका है। इससे शरीर की नष्ट कोशिकाएं ठीक हो जाती हैं। शरीर में आक्सीजन की उचित मात्रा पहुंचने पर श्वसन क्रिया द्वारा यह लैक्टिक अम्ल फिर ग्लाइकोजन में बदल जाता है और हम फिर ताजगी महसूस करने लगते हैं। थोड़े समय विश्राम करने से भी थकान कुछ हद तक दूर हो जाती है। थकान में शरीर के अन्दर जो ग्लाइकोजिन की कमी हो जाती है वह कुछ अंशों तक भोजन द्वारा भी पूरी होती है। यही कारण है कि थके व्यक्ति को भूख भी अधिक लगती है।



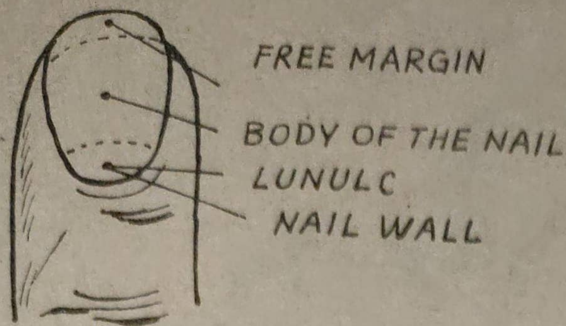
हमें पसीना क्यों आता है?

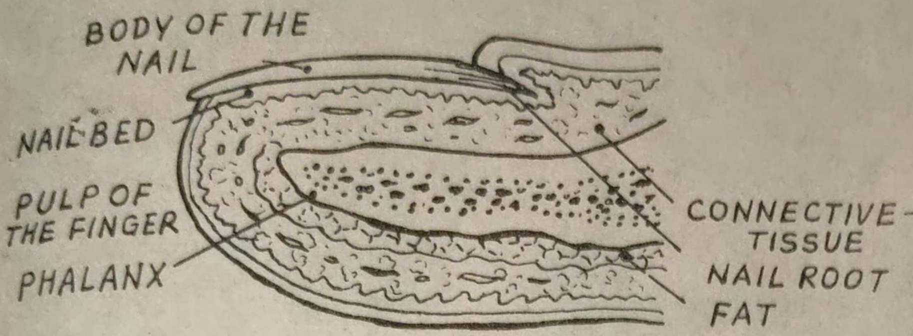
हमारा शरीर एक भट्ठी की तरह है। जो भोजन हम खाते हैं वह हमारे शरीर के अंदर ईंधन का काम करता है। यह आक्सीकरण की क्रिया द्वारा शरीर में ऊष्मा ऊर्जा (Energy) पैदा करता है। इस क्रिया से एक स्वस्थ वयस्क आदमी के शरीर में लगभग 2500 कैलोरी ऊष्मा प्रतिदिन पैदा होती है। यह इतनी ऊष्मा है जो शून्य डिग्री सेन्टीग्रेड के 25 किलोग्राम पानी को उबाल सकती है। इस ऊष्मा का हमारे शरीर में क्या होता है?

हमारे शरीर में ऐसी आंतरिक प्रक्रियाएं होती रहती हैं, जिनसे तापमान नियमित होता रहता है और वह साधारणत: 98.6°F से अधिक नहीं बढ़ता। पसीना आना शरीर की एक ऐसी क्रिया है जिसके द्वारा शरीर रूपी भट्ठी का तापमान स्थिर रहता है। वास्तव में हमारे शरीर के तापमान का नियंत्रण मस्तिष्क में स्थित तापमान केंद्र (Temperature centre) द्वारा होता है। इस तापमान केन्द्र के तीन हिस्से हैं। ये हैं (1) नियंत्रण केन्द्र, (2) गर्म करने वाला केन्द्र और (3) ठंडक पैदा करने वाला केन्द्र।

मान लो कि किसी कारणवश रक्त का तापमान शरीर के सामान्य तापमान से कम हो जाता है। उस समय गर्मी पैदा करने वाला केन्द्र तेजी से काम करने लगता है। कुछ विशेष ग्रन्थियां उस समय दहन के लिए रासायनिक पदार्थ पैदा करती हैं, जिसे ईंधन के रूप में प्रयोग कर, मांसपेशियां और जिगर हमारे शरीर के आंतरिक तापमान को बढ़ाकर सामान्य कर देते हैं।

अब मान लो कि किसी कारणवश रक्त का तापमान शरीर के सामान्य तापमान से अधिक हो जाता है। इस अवस्था में ठंडक पैदा करने वाला केन्द्र काम करना शुरू कर देता है। आक्सीकरण की क्रिया धीमी पड़ जाती है। स्वेद ग्रन्थियां पसीना निकालना शुरू कर देती हैं। पसीने में जल, यूरिया और कुछ लवण शरीर के बाहर निकलकर त्वचा के ऊपर आ जाते हैं। स्वेद ग्रन्थियां तेजी से तभी अपना कार्य करती हैं जब शरीर के अंदर का या बाहरी वातावरण का तापमान बढ़ जाता है। पसीना शरीर के ताप द्वारा भाप बनकर उड़ने लगता है और इस प्रकार शरीर की सतह को ठंडा कर देता है। यह क्रिया ठीक उसी प्रकार होती है जैसे कि गरमी के दिनों में सुराही के पानी के ठंडे होने में होती है। विज्ञान की भाषा में वाष्पीकरण (Evaporation) द्वारा हमेशा ठंडक पैदा होती है। अतः पसीना निकलना शरीर के ताप नियंत्रण की एक बड़ी ही प्रभावशाली क्रिया है। पसीना निकलने से शरीर की आंतरिक सफाई भी हो जाती है। शरीर को हानि पहुंचाने वाले पदार्थ त्वचा के लाखों सूक्ष्म छिद्रों द्वारा पसीने के रूप में बाहर निकल जाते हैं। नमी के मौसम में पसीना आने पर अधिक बेचैनी रहती है, क्योंकि इस मौसम में पसीना वाष्पीकरण द्वारा वाष्पित नहीं होता। बरसात के मौसम में पंखे की हवा द्वारा पसीने का वाष्पीकरण आसानी से हो जाता है और यही कारण है कि बरसात के मौसम में पंखे के नीचे बैठना सुखदायी लगता है।





नाखून काटने पर दर्द क्यों नहीं होता ?

हमारे शरीर का कोई हिस्सा जब कट जाता है तो बहुत दर्द होता है लेकिन नाखून काटने पर हमें दर्द महसूस नहीं होता। नाखून काटने पर दर्द होता तो उन्हें भी कोई नहीं काटता और हमारे सबके नाखून बहुत ही लम्बे हो जाते। क्या तुम जानते हो कि नाखून काटने या खुरचने पर दर्द क्यों नहीं होता?

हमारे हाथ और पैरों में कुल मिलाकर बीस नाखून होते हैं। इन्हें काटने पर दर्द नहीं होता क्योंकि ये मृत कोशिकाओं (Dead cells) से बने होते हैं। नाखून हमारे शरीर की विशेष संरचनाओं में से हैं जो त्वचा से पैदा होते हैं। ये किरेटिन (Keratin) नामक पदार्थ से बनते हैं। किरेटिन एक प्रकार का निर्जीव प्रोटीन है। नाखून का आधार उंगलियों की त्वचा के अन्दर होता है। नाखून के नीचे की त्वचा शरीर की शेष त्वचा की तरह ही होती है लेकिन इसमें लचीले रेशे होते हैं। ये रेशे नाखून से जुड़े रहते हैं और इसे मजबूती से अपने स्थान पर जकड़े रहते हैं। आमतौर पर नाखून मोटे होते हैं परंतु त्वचा के नीचे इनकी जड़ें काफी पतली होती हैं। जड़ के पास के भाग का रंग सफेद होता है और इसका आकार अर्ध चंद्रमा या अर्द्ध वृत्त जैसा होता है। इस हिस्से को लुनूल (Lunule) कहते हैं। उंगलियों के नाखून प्रति वर्ष लगभग दो इंच बढ़ते हैं।

नाखून हमारे शरीर के लिए काफी उपयोगी हैं। ये हमें चीजों को चुनने और कलात्मक काम करने में सहायता करते हैं। ये हमारी उंगलियों के सिरों को भी सुरक्षित रखते हैं। महिलाओं के लिए नाखूनों का,उनकी सुन्दरता मे भी घनिष्ठ सम्बन्ध है। वे इन्हें कई रंगों की नेल पालिश लगा कर सजाती हैं। सुन्दरता की दृष्टि से नाखूनों को लम्बा करने का प्रचलन भी है।

नाखून की रचना भुरभुरी (Brittle) होती है। कुछ पोषक तत्वों की कमी के कारण नाखूनों में दोष पैदा हो जाते हैं। इन दोषों से नाखून चटखने या टूटने लगते हैं। जलने या कटने पर नाखूनों में स्थायी विकार पैदा हो जाते हैं। बर्फीले स्थानों से उंगलियों पर ठंड के प्रभाव से फ्रोस्टबाइट (Frostbite) हो जाता है जिससे नाखूनों का विनाश हो जाता है।

आदमी के अतिरिक्त कुछ दूसरे भी ऐसे प्राणी हैं जिनके नाखून होते हैं। बनमानुष के नाखून हमसे काफी मिलते-जुलते हैं। बन्दरों के नाखून भी हमारे जैसे ही होते हैं। शेर, चीता, बिल्ली और कुत्तों के पंजों में नाखून होते हैं। गाय, बैल, घोड़ा आदि के खुर भी नाखूनों का ही एक रूप हैं।

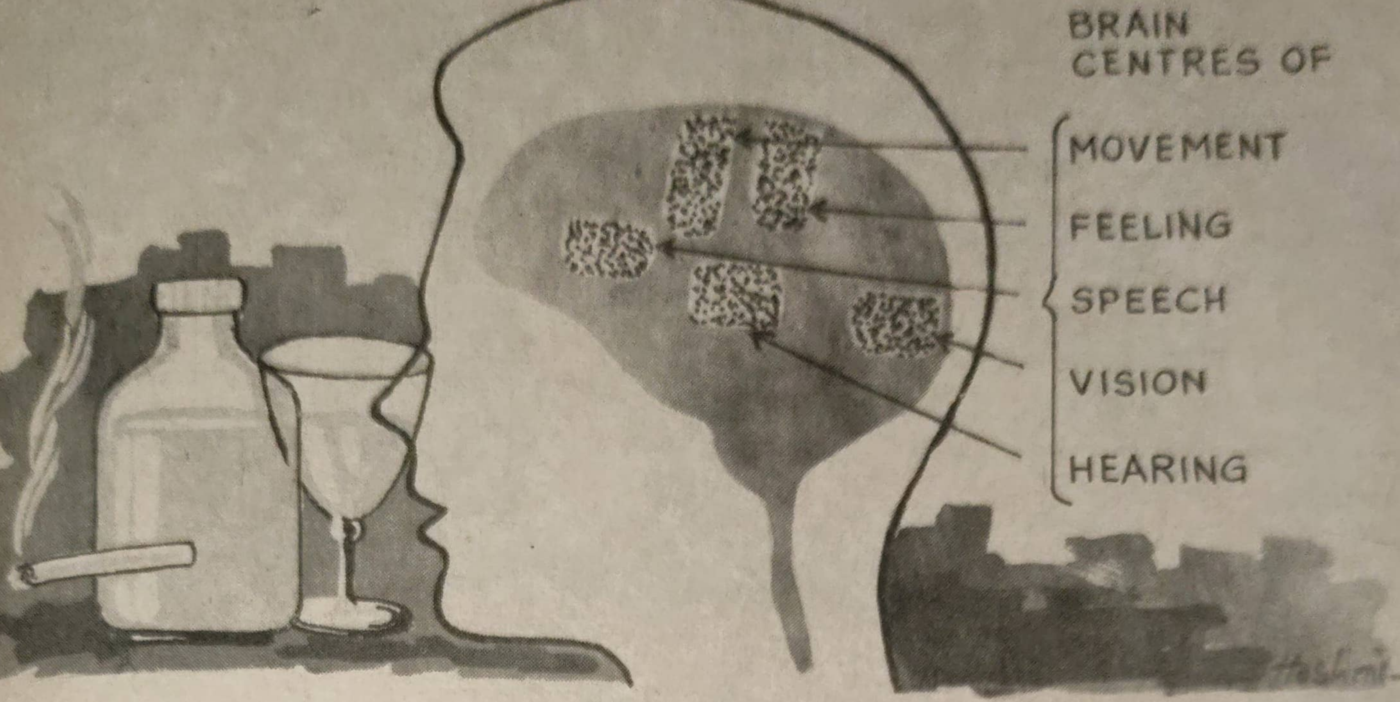


हमें प्यास क्यों लगती है?

अधिकतर लोगों की धारणा है कि मुंह या गले का सूखना ही प्यास प्रदर्शित करता है, लेकिन यह सच्चाई नहीं है। मुंह या गले का सूखना कई दूसरे कारणों से भी हो सकता है। जैसे व्यायाम करने से गला सूख जाता है। तनाव या लार ग्रन्थियों द्वारा कम लार पैदा करने पर भी गला और मुंह सूख जाता है। प्रश्न उठता है कि हमें प्यास क्यों लगती है?

हम जानते हैं कि हमारे रक्त में जल और नमक सदा ही मौजूद रहते हैं। शरीर के ऊतकों में भी ये दोनों पदार्थ रहते हैं। सामान्य स्थिति में रक्त में इन दोनों पदार्थों का अनुपात स्थिर रहता है। किसी कारणवश रक्त में जल की मात्रा कम होने पर इन दोनों पदार्थों का अनुपात बदल जाता है। इस स्थिति में मस्तिष्क में उपस्थित प्यास केन्द्र (Thirst centre) गले को सन्देश भेजता है, जिसके फलस्वरूप गले में सिकुड़न (Contraction) पैदा हो जाती है। इस सिकुड़न से गला सूखने लगता है और हमें प्यास महसूस होने लगती है। अतः प्यास लगना यह प्रदर्शित करता है कि हमारे शरीर को अधिक पानी की जरूरत है।

कभी-कभी यह भी देखा जाता है कि लार ग्रन्थियों से लार भी खूब निकलती है, हमारे पेट और रक्त में भी खूब पानी होता है, लेकिन फिर भी हमें प्यास महसूस होती है। उदाहरण के लिए जब आदमी शराब पीता है तो उसके साथ वह नमकीन पदार्थ भी अधिक मात्रा में खाता है। यद्यपि शराब के साथ पानी की भी काफी मात्रा पहुंचती रहती है, लेकिन नमकीन पदार्थ खाने से रक्त में नमक की मात्रा भी बढ़ जाती है। परिणाम यह होता है कि रक्त में नमक की मात्रा सामान्य से अधिक हो जाती है। ऐसा होने पर रक्त में नमक और पानी का अनुपात बदल जाता है। इस स्थिति में मस्तिष्क गले को संदेश देता है और हमें प्यास अनुभव होने लगती है।



नशीली वस्तुओं का शरीर पर कैसे और क्या प्रभाव पड़ता है?

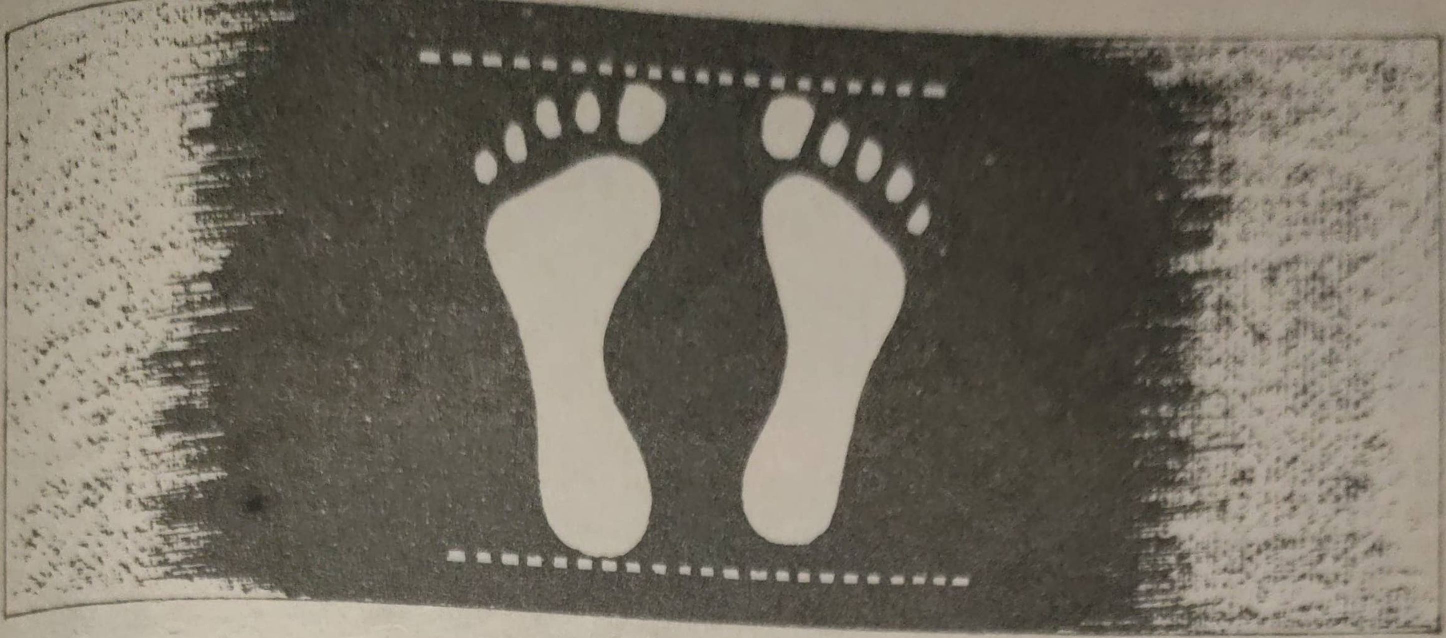
शराब, बीड़ी, सिगरेट, हुक्का, अफीम, गांजा, भांग, कोकेन, मॉर्फीन आदि का सेवन हमारे स्वास्थ्य के लिये ही नहीं बल्कि समाज के दूसरे लोगों के लिए भी घातक है। इन वस्तुओं के इस्तेमाल करने से शरीर पर बहुत बुरे प्रभाव पड़ते हैं। क्या तुम जानते हो कि ये नशीली वस्तुएं हमारे शरीर पर क्या-क्या प्रभाव डालती हैं?

तम्बाकू का इस्तेमाल आमतौर पर लोग बीड़ी, सिगरेट या हुक्का पीने के रूप में करते हैं। कुछ लोग तम्बाकू को खाते भी हैं। तम्बाकू के अन्दर निकोटिन (Nicotine) नाम का शक्तिशाली विष होता है। यद्यपि इसकी मात्रा काफी कम होती है लेकिन फिर भी यह हमारे स्वास्थ्य के लिए बहुत हानिकारक है। जब हम धूम्रपान करते हैं तो धुएं के साथ निकोटिन की कुछ मात्रा हमारे रक्त द्वारा सोख ली जाती है। यही निकोटिन हमारी नाक और गले के अन्दर उत्तेजना पैदा करता है। इससे हमें खांसी का रोग हो जाता है। धूम्रपान करने से रक्त दवाब (Blood Pressure) बढ़ जाता है। इससे दिल की धड़कन तेजी से चलने लगती है। धूम्रपान से शरीर के तापमान और रक्त-भ्रमण पर भी प्रभाव पड़ता है। हाल ही में किए गए अनुसंधानों से पता चला है कि धूम्रपान करने से फेफड़ों का कैन्सर हो जाता है। यह भी सिद्ध किया जा चुका है कि धूम्रपान करने वालों की उम्र कम हो जाती है। धूम्रपान से हृदय-सम्बन्धी रोग भी हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त बदहजमी, पेट का अल्सर और मुंह का कैन्सर होने का भी डर रहता है। इन सब बातों के अतिरिक्त इस शौक में पैसा भी खर्च होता है। निकोटिन एक ऐसा पदार्थ है जो धूम्रपान की आदत डाल देता है। कुछ दिनों बाद शरीर को इसकी आवश्यकता पड़ने लगती है।

शराब पीना भी हमारे लिए बहुत हानिकारक है। कुछ लोग सोचते हैं कि शराब पीने से आदमी चुस्त हो जाता है लेकिन वास्तव में शराब पीने से हमारे शरीर की सभी क्रियाएं मंद हो जाती हैं। शराब चाहे व्हिस्की, बीयर या ब्रान्डी, किसी भी रूप में पी जाए सभी रूपों में इसमें एल्कोहल होता है। यही एल्कोहल हमारे शरीर पर प्रभाव डालता है। जैसे ही एल्कोहल हमारे शरीर में पहुंचकर रक्त में मिलता है फौरन ही हमारे मस्तिष्क के कुछ क्षेत्रों पर प्रभाव डालता है (ऊपर का चित्र देखें)। इसके बाद आदमी को नशा होने लगता है। दृष्टि में कमजोरी आ

जाती है। किसी निर्णय पर पहुंचना मुश्किल हो जाता है। अधिक शराब पीने पर आदमी ऊलजलूल बकने लगता है और बेहोश हो जाता है। शराब पीकर मोटरगाड़ी चलाना अपने लिए ही नहीं बल्कि दूसरों के लिए भी बहुत घातक सिद्ध होता है। शराब पीकर गाड़ी चलाने पर बहुत सी दुर्घटनाएं रोज ही होती हुई देखी जाती हैं। ऐसा देखा गया है कि पांच दुर्घटनाओं में एक दुर्घटना शराब पिए हुए व्यक्ति द्वारा होती है। शराब पीने से मांसपेशियों पर पीनेवाले का नियंत्रण कम हो जाता है। लम्बे अरसे तक शराब पीने से जिगर की भयानक बीमारियां हो जाती हैं।

कुछ लोग दर्द तथा मानसिक तनाव से छुटकारा पाने के लिए बहुत सी गोलियां खाते रहते हैं। ये भी स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हैं। इनके अधिक प्रयोग से याददाश्त कमजोर हो जाती है। एक बार जब नशीली वस्तुओं को लेने की आदत बन जाती है तो बड़ी ही मुश्किल से छूटती है। अतः नशीली वस्तुओं के सेवन से हमें सदा ही बचना चाहिए।



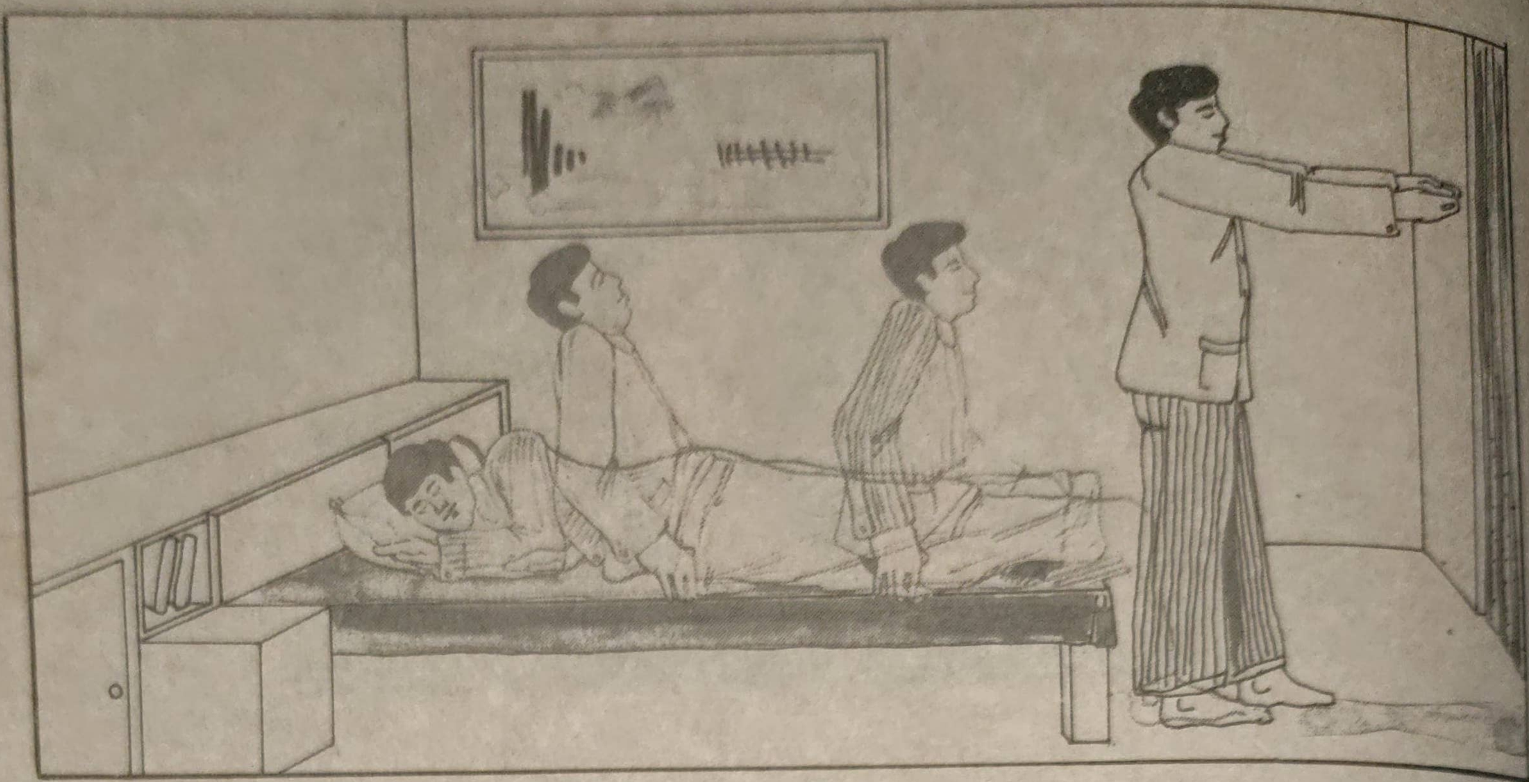
हमारा एक पैर दूसरे से बड़ा क्यों है?

यदि तुम दोनों पैरों को ध्यान से नापो तो दायां पैर बाएं पैर की अपेक्षा कुछ बड़ा दिखेगा। क्या तुम जानते हो कि ऐसा क्यों है?

यद्यपि हमारे शरीर के दाहिने और बाएं भाग मोटे रूप से देखने पर एक से दिखते हैं परंतु गौर से देखने में उनमें थोड़ा सा अन्तर अवश्य है। हमारे शरीर की रचना पूर्णरूपेण दोनों ओर समान (Symmetrical) नहीं है बल्कि दाएं और बाएं भागों में थोड़ी सी असमानता (Asymmetry) है। ध्यान से देखने पर पता चलता है कि हमारे चेहरे का दायां भाग बाएं भाग से कुछ अधिक विकसित है। दाईं टांग की लम्बाई बाईं टांग से अधिक है। हमारा हृदय बाईं ओर स्थित है जबकि लिवर दाहिनी ओर स्थित है। शरीर की आन्तरिक संरचना पूर्ण संतुलन में नहीं है। यही कारण है कि हमारी हड्डियों का विकास भी थोड़ा सा असमान रूप में हुआ है। इसी असमान विकास के कारण हमारा दायां पैर बाएं पैर से कुछ अधिक लम्बा है।

शरीर की बनावट की असमानता के हमारे ऊपर बहुत से प्रभाव पड़ते हैं। आंखों पर पट्टी बांधकर हम सीधी दिशा में न चलकर एक गोल चक्कर में इसी असमानता के कारण चलने लगते हैं। यह बात जानवरों में भी है। उनके शारीरिक ढांचों का निर्माण भी पूर्ण संतुलन में नहीं होता।

अब प्रश्न उठता है कि हमारे शरीर के दाएं अंगों का ही विकास अधिक क्यों होता है? इस प्रश्न का पूर्ण समाधान तो अभी तक नहीं हो पाया है लेकिन कुछ वैज्ञानिकों का विचार है कि संसार में अधिकतर लोग दाएं अंगों से ही अधिक काम लेते हैं। इसलिए बाएं अंगों की अपेक्षा दाएं अंगों का विकास अधिक होता है। संसार में 96 प्रतिशत लोग सीधे हाथ से बाएं हाथ की अपेक्षा अधिक काम लेते हैं और शेष 4% बाएं हाथ से अधिक काम लेते हैं। दाएं हाथ या बाएं हाथ से काम लेना हमारे मस्तिष्क द्वारा नियंत्रित होता है। मस्तिष्क का बायां भाग हमारे शरीर के दाहिने अंगों पर नियंत्रण करता है। संसार में ऐसे लोगों की संख्या अधिक है जिनके मस्तिष्क के बाएं भाग अधिक विकसित हैं इसलिए दाएं अंगों से काम लेने वाले लोगों की संख्या भी अधिक है। दाएं अंगों से अधिक काम लेने से ही उनका विकास बाएं अंगों की तुलना में अधिक हो जाता है।



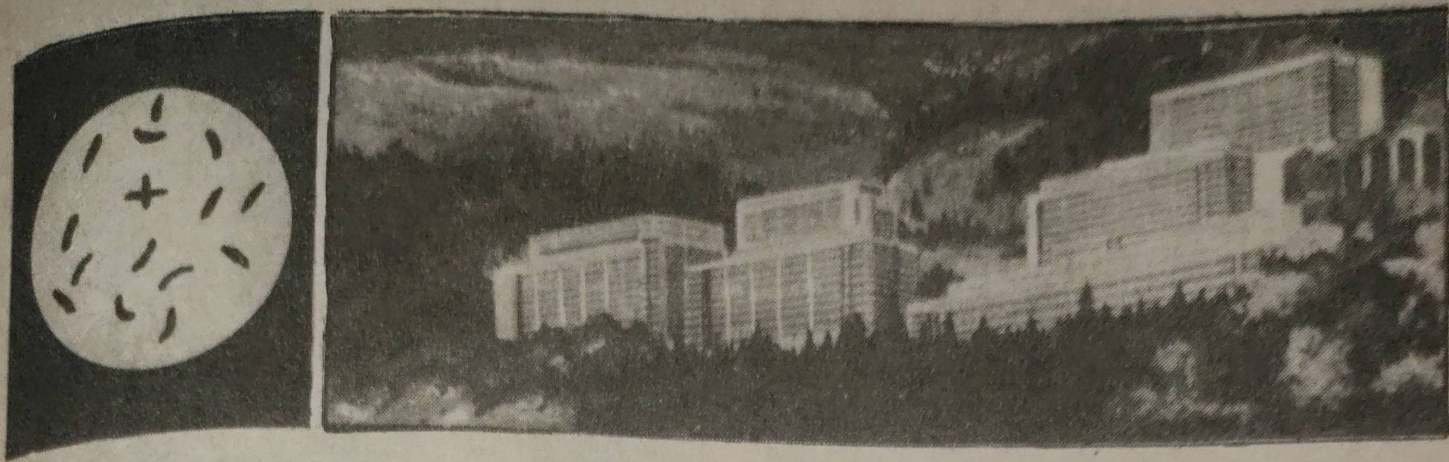
कुछ लोग नींद में क्यों चलने लगते हैं?

कुछ लोगों की एक विचित्र आदत होती है। वे नींद की अवस्था में ही उठकर अपने कपड़े बदल लेते हैं और टहलने निकल जाते हैं। लेकिन यह सब काम वे नींद में ही करते हैं। उन्हें इस बात का कोई ज्ञान नहीं होता कि वे क्या कर रहे हैं। क्या तुम जानते हो कि ऐसा क्यों होता है?

इस बात का उत्तर पाने के लिए यह समझना जरूरी है कि नींद क्या है? वैज्ञानिक तथ्यों के अनुसार हमारे मस्तिष्क में एक जटिल क्षेत्र है जिसे नींद-केन्द्र (Sleep centre) कहते हैं। यही केन्द्र हमें सुलाने और जगाने का काम करता है। यह नींद केन्द्र कैल्शियम द्वारा नियंत्रित होता है। सारे दिन के कार्यों के फलस्वरूप हमारे शरीर में लैक्टिक ऐसिड, कैल्शियम और अन्य पदार्थ पैदा होते रहते हैं और रक्त में मिलते रहते हैं। जब कैल्शियम इस केन्द्र तक पहुंचता है तो यह क्रियाशील हो जाता है और आदमी को नींद की अवस्था में ले आता है।

नींद-केन्द्र शरीर में दो कार्य करता है एक तो यह मस्तिष्क का सम्बन्ध शरीर के काम करने वाले अंगों से तोड़ देता है, जिससे हम में काम करने की इच्छा नहीं रहती। दूसरे यह कुछ नाड़ियों (Nerves) का सम्बन्ध मस्तिष्क से काट देता है। परिणाम यह होता है कि शरीर के आन्तरिक अंग सो जाते हैं।

कुछ लोगों में एक असामान्य स्थिति होती है, उनका मस्तिष्क तो सो जाता है, लेकिन बाकी शरीर जागृत अवस्था में रहता है। ऐसा उन लोगों के साथ होता है जिनकी नाड़ियों में कुछ असामान्यता होती है। ऐसे ही लोग बिस्तर से उठकर नींद में चलने-फिरने लगते हैं। उस स्थिति में उनका मस्तिष्क तो सोता रहता है परन्तु शरीर जगा हुआ रहता है। दोनों का सम्बन्ध न रहने के कारण ऐसे लोग सोते-सोते चहलकदमी करने लगते हैं।



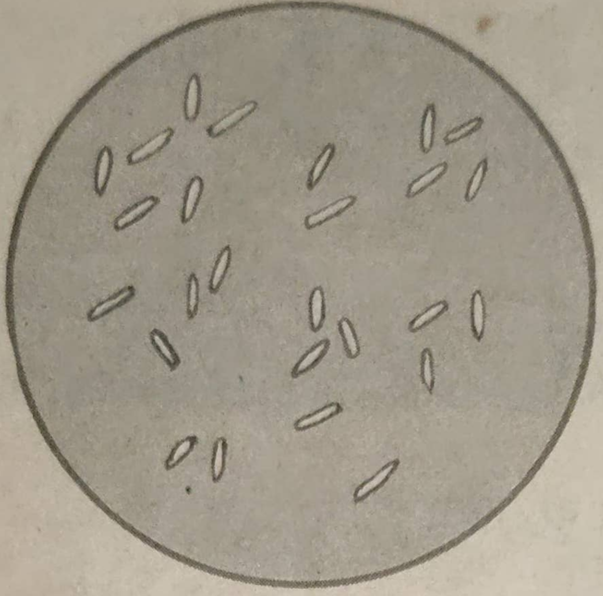
तपेदिक रोग कैसे हो जाता है?

फेफड़ों का क्षय रोग या तपेदिक (Pulmonary Tuberculosis) एक भयानक छूत की बीमारी है। इसे आम भाषा में टी०बी० कहते हैं। यह रोग एक बैक्टीरिया द्वारा होता है जिसे माइकोबैक्टीरियम ट्यूबरकुलोसिस (Mycobacterium Tuberculosis) कहते हैं। इस रोग में फेफड़ों के अन्दर सख्त ऊतकों (Tissues) की गांठें (Tubercles) बन जाती हैं। ये गांठें लाखों कोशिकाओं से मिलकर बनती हैं। इस रोग के बैक्टीरिया का पता सन् 1882 में जर्मनी के वैज्ञानिक राबर्ट कॉच (Robert Koch) ने लगाया था। यह बैक्टीरिया छड़ के आकार के होते हैं जिनकी लम्बाई 1/7000 मिलीमीटर और चौड़ाई 1/12000 मिलीमीटर के लगभग होती है।

टी०बी० के रोगी को खांसी बहुत आती है। खांसने में उसके मुंह से पानी की छोटी-छोटी बूंदें और कफ (Sputum) बाहर आ जाता है। इसी पानी और कफ में इस रोग के बैक्टीरिया भी होते हैं। जब ये पानी की बूंदें और कफ सूख जाता है तो ये बैक्टीरिया हवा में उड़ने लगते हैं। जब कोई व्यक्ति सांस के साथ इन्हें फेफड़ों के अन्दर ले आता है तो कुछ ही दिनों में इस रोग का शिकार हो जाता है। इस रोग से प्रभावित व्यक्ति दूसरे सारे लोगों को इस रोग का शिकार बना सकता है।

कई हजार वर्षों तक इस रोग का कोई इलाज नहीं था। मरीज़ बिस्तर पर ही धीरे-धीरे मर जाता था। सन् 1944 में स्ट्रेप्टोमाइसिन (Streptomycin) नामक औषधि की खोज हुई, जो इस रोग के इलाज के लिए काफी कारगर सिद्ध हुई। कुछ वर्षों बाद पैरा-अमिनोसैलिसिलिक एसिड (Para-aminosalicylic acid) और आइसो एसिड हाइड्राजिड (Iso-acid hydrazid) नाम की दो औषधियों का आविष्कार हुआ। आजकल इन तीनों औषधियों को एक साथ या किन्हीं दो को क्षय रोग के रोगियों को दिया जाता है। यद्यपि इलाज में कई महीने लग जाते हैं लेकिन रोगी ठीक हो जाता है।

जब किसी मरीज़ को क्षयरोगी घोषित कर दिया जाए तो उसे घर में नहीं रखना चाहिए, क्योंकि वह घर या पड़ोस के किसी भी व्यक्ति को रोगी बना सकता है। उसे तुरन्त किसी टी०बी० सैनीटोरियम या अस्पताल में भेज देना चाहिए। इस रोग का एक्सरे द्वारा जल्दी ही पता लग जाता है। इस रोग के आक्रमण से बचने के लिए एक टीके का भी आविष्कार हो गया है। इसे BCG (Bacillus Calmette-Guerin) का टीका कहते हैं। यह टीका आमतौर पर जन्म के कुछ ही दिन बाद बच्चों को अवश्य लगवा देना चाहिए। इसके लगवाने के बाद टी०बी० होने का डर नहीं रहता।





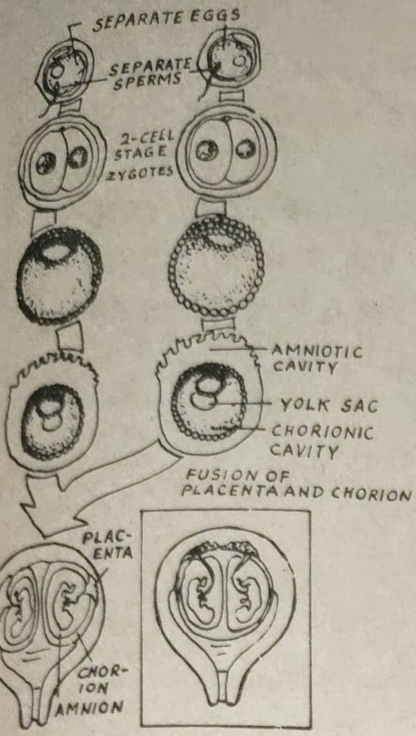
काली खांसी क्यों हो जाती है ?

काली खांसी बच्चों की एक खतरनाक बीमारी है। इस रोग में बच्चा खांसते-खांसते परेशान हो जाता है। यह बीमारी "हेमोफाइलस परटूसिस" (Haemophilus Pertussis) नामक बैक्टीरिया द्वारा फैलती है। हेमोफाइलस का अर्थ है 'रक्त से प्यार करने वाला' और परटूसिस का अर्थ है 'अत्यधिक खांसी'। यह बैक्टीरिया आकार में बहुत छोटा होता है। यह एक इंच के 25000वें भाग के बराबर लम्बा और एक इंच के एक लाखवें भाग के बराबर चौड़ा होता है। इस बैक्टीरिया का पता सबसे पहले बेल्जियम के जूल्स बोरडेट (Jules Bordet) और फ्रान्स के औक्तेव गेन्गू (Octave Gengou) ने लगाया था। उन्हीं के नाम पर इसको बोरडेट-गेन्गू बैक्टीरिया भी कहते हैं।

यह बैक्टीरिया फेफड़ों को जाने वाली सांस नली के ऊतकों (Tissues) पर आक्रमण करता है। जब इस रोग से पीड़ित बच्चा खांसता है तो बहुत सारे बैक्टीरिया उस बच्चे के चारों ओर हवा में फैल जाते हैं। यदि कोई दूसरा स्वस्थ बच्चा इस रोगी के आस-पास होता है तो वह भी इन बैक्टीरिया द्वारा प्रभावित हो जाता है और रोगग्रस्त हो जाता है।

जब इस रोग का हमला होता है तो पहले नाक बहना शुरू होती है, हल्का बुखार हो जाता है और हल्की-हल्की खांसी आने लगती है। एक-दो दिन के बाद ही खांसी का प्रकोप बढ़ जाता है। खांसी इतनी तेज और इतनी देर तक उठती रहती है कि बच्चे की जान पर बन आती है। यह बीमारी एक से दो महीने तक रहती है। इस रोग में कुछ बच्चों की मृत्यु तक हो जाती है।

आज काली खांसी के लिए वैज्ञानिकों ने एक टीके (Vaccine) का आविष्कार कर लिया है। यह टीका साधारणतया बच्चे के जन्म के एक या दो महीने के बाद लगाया जा सकता है। यद्यपि इस टीके के लगवाने से रोग के आक्रमण से पूर्ण सुरक्षा तो नहीं होती परन्तु टीका लगवाने के बाद होने वाली काली खांसी बहुत ही कम कष्टदायक होती है। इस रोग से बचने के लिए यह टीका बच्चों को अवश्य ही लगवा देना चाहिए।





जुड़वां बच्चे कैसे पैदा हो जाते हैं?

सामान्य रूप से स्त्रियां एक समय में एक ही बच्चे को जन्म देती हैं। यह बच्चा लड़का या लड़की में से कोई भी एक हो सकता है। कभी-कभी एक बार में दो या दो से अधिक बच्चों का जन्म भी हो जाता है। एक साथ पैदा होने वाले दो बच्चों को जुड़वां बच्चे (Twins) कहा जाता है। क्या तुम जानते हो कि जुड़वां बच्चें कैसे पैदा हो जाते हैं?

मासिक धर्म के 10 दिन बाद से 18 दिन तक महिलाओं के प्रजनन अंगों से एक प्रकार का अंडा पैदा होता है। इसे ओवम (Ovum) कहते हैं। इस अवधि में जब स्त्री और पुरुष का संयोग होता है तो पुरुष के वीर्य (Semen) में उपस्थित स्पर्मों (Sperms) में से एक स्पर्म इस अंडे में प्रवेश कर जाता है। अंडे में स्पर्म के प्रवेश कर जाने की क्रिया को ही गर्भाधान कहा जाता है। अर्थात् अंडे में स्पर्म के प्रवेश कर जाने पर स्त्री गर्भवती हो जाती है। इस क्रिया के 280 दिन बाद स्त्री बच्चे को जन्म देती है।

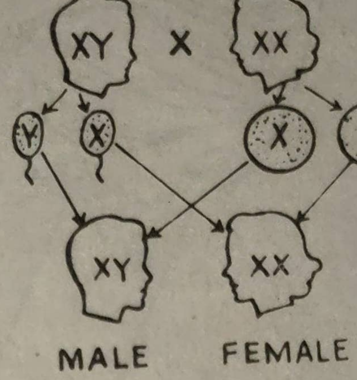
कभी-कभी ऐसा होता है कि गर्भाधान की क्रिया के बाद अंडा दो हिस्सों में बंट जाता है। इन दोनों भागों का गर्भाशय में अलग-अलग दो बच्चों के रूप में विकास होता रहता है। परिणाम यह होता है ऐसी महिला के एक ही साथ दो बच्चे पैदा होते हैं। इस प्रकार से पैदा हुए दोनों बच्चे रूप-रंग और आकार में एक से होते हैं। उनके गुण भी मिलते-जुलते होते हैं। ये दोनों बच्चे या तो लड़के ही होंगे या लड़की ही होंगे। इसका कारण यह है कि वे दोनों बच्चे एक ही अंडे से पैदा हुए हैं।

कभी-कभी एक दूसरी सम्भावना भी होती है। मनुष्य के वीर्य से दो स्पर्म महिला के दो अलग-अलग अंडों में प्रवेश कर जाते हैं। इससे गर्भ में दो बच्चों का विकास होता रहता है और उचित समय पर स्त्री से दो बच्चों का जन्म होता है। इस प्रकार से पैदा हुए बच्चे एक दूसरे से भिन्न होते हैं। इन दोनों बच्चों का लिंग (Sex) एक सा भी

हो सकता है और अलग-अलग भी हो सकता है। इनके गुणों में भी अंतर होता है।

कई महिलाओं ने तो दो से भी अधिक बच्चों को एक साथ जन्म दिया है। 22 अप्रैल 1946 को ब्राजील में एक महिला ने दस बच्चों को एक साथ जन्म दिया, जिसमें 2 लड़के और 8 लड़कियां थीं। स्पेन और चीन में भी एक साथ 10 बच्चे पैदा होने के रिकार्ड मौजूद हैं। 13 जून 1971 को श्रीमती गेरल्डाइन ब्रोडरिक (Mrs. Geraldine Broderick) ने सिडनी (आस्ट्रेलिया) के रॉयल हॉस्पिटल में 9 बच्चों को एक साथ जन्म दिया, इनमें 5 लड़के और 4 लड़कियां थीं। 9 बच्चे पैदा होने का रिकार्ड अमरीका और बांगला देश में भी है। दो से अधिक बच्चे अलग-अलग अंडों में स्पर्मों द्वारा प्रवेश कर जाने से ही पैदा होते हैं। 3, 4 और 6 बच्चे एक साथ पैदा होने के तो संसार में बहुत से उदाहरण हैं।





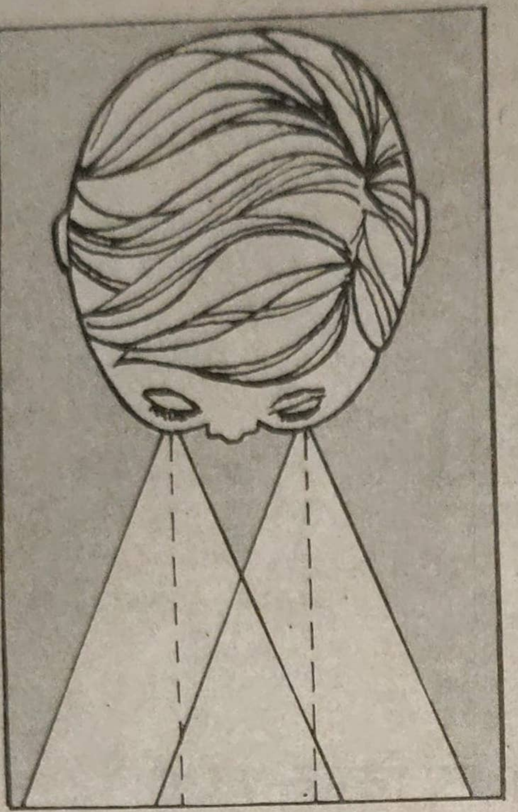
लड़का या लड़की पैदा होना किस बात पर निर्भर करता है ?

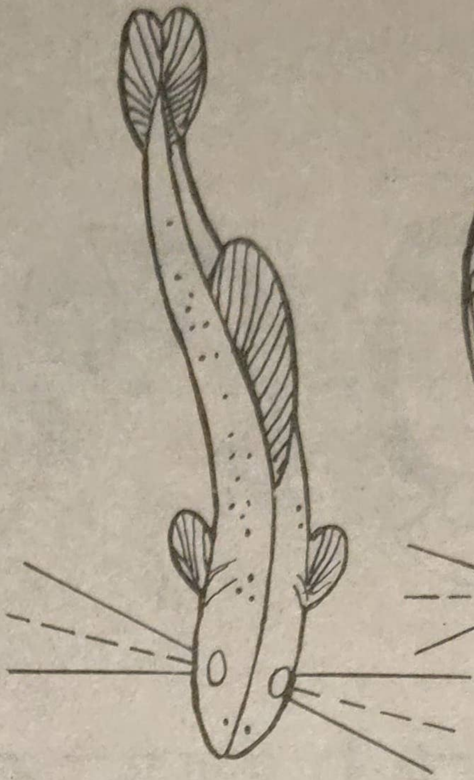
जन्म और मृत्यु प्रकृति का एक नियम है और संतान पैदा करना हर जीवित प्राणी का गुण है। जब हम मानव जाति के विषय में विचार करते हैं तो देखते हैं कि पैदा होने वाले सभी बच्चे नर या मादा होते हैं। प्रश्न उठता है कि मानव की सन्तान में सभी बच्चे केवल नर या केवल मादा ही क्यों नहीं पैदा होते हैं? लड़का या लड़की का पैदा होना निम्न प्रकार से समझा जा सकता है।

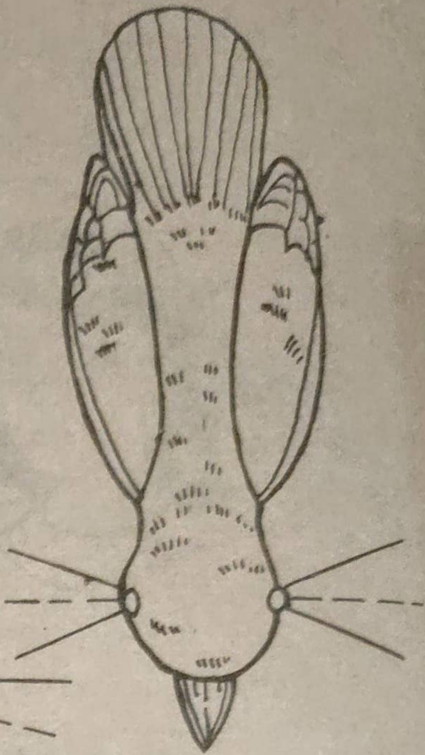
महिलाओं में मासिक धर्म (Menstruation) शुरू होने के बाद सन्तान पैदा करने की क्षमता पैदा हो जाती है। मासिक धर्म के दस दिन बाद से 18 दिन तक उनके प्रजनन अंगों से एक अण्ड (Ovum) पैदा होता है। इस दौरान जब स्त्री का संयोग पुरुष के साथ होता है तो पुरुष के वीर्य (Semen) में उपस्थित शुक्राणु (Sperms) द्वारा गर्भाधान की क्रिया सम्पन्न हो जाती है। महिला के अण्डे और पुरुष के शुक्राणु के संयोग से ही गर्भ में बच्चे की निर्माण क्रिया होती है।

स्त्री में पैदा होने वाले अंडे और पुरुष के वीर्य में उपस्थित शुक्राणुओं में सेक्स क्रोमोसोम (Chromosomes) होते हैं। स्त्री के सभी अंडों में केवल एक ही प्रकार के सेक्स क्रोमोसोम होते हैं। जिन्हें X क्रोमोसोम कहते हैं। पुरुष के शुक्राणु दो प्रकार के होते हैं। इन्हें X और Y क्रोमोसोम कहते हैं। X क्रोमोसोम का आकार Y से कुछ बड़ा होता है। गर्भाधान की क्रिया में जब पुरुष का X क्रोमोसोम महिला के अंडे में प्रवेश कर जाता है तो इसके मिलने से कन्या या लड़की (Female) का निर्माण होता है, लेकिन यदि पुरुष का Y क्रोमोसोम महिला के अण्डे में प्रवेश कर जाता है तो इनके मिलने से लड़के (Male) का निर्माण होता है। अतः Y और X क्रोमोसोमों के मिलने से लड़का पैदा होता है।

कुछ लोग जिनके केवल लड़कियां ही पैदा होती है वे इस बात के लिए महिलाओं को दोषी ठहराते हैं, लेकिन वास्तविकता यह है कि बच्चे का नर या मादा बनना केवल पुरुष के ही द्वारा नियंत्रित होता है। इसमें महिलाओं का कोई दोष नहीं होता।







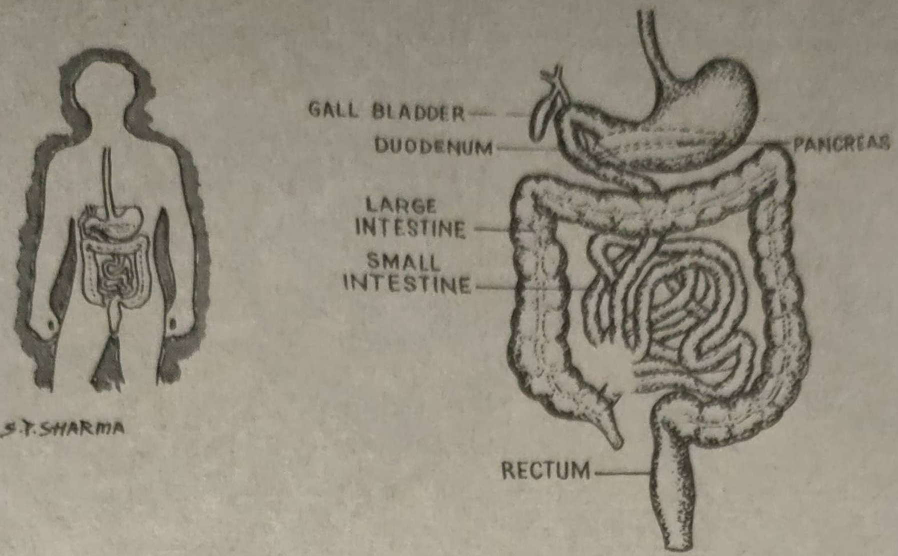
हमारी आंखें दो क्यों हैं?

हमारे शरीर में दो आँखें हैं और दोनों से ही हम वस्तुओं को देखते हैं। एक आँख से देखने पर भी हमें लगभग उतना ही दिखाई देता है जितना दोनों आँखों से। एक आँख से भी वस्तु हमें एक ही दिखाई देती है और दोनों आँखों से भी एक ही। इसका कारण यह है कि आँखों के दृष्टि-अक्ष (Visual axes) बदलते रहते हैं और दोनों आँखों से देखते समय रेटिना पर बने वस्तु के प्रतिबिम्बों को मस्तिष्क मिलाकर एक बना देता है। अब प्रश्न उठता है कि हमें दो आँखों के होने का लाभ क्या है?

यदि हम एक आँख बन्द करके देखें तो दूर की वस्तुएं लगभग उतनी ही स्पष्ट दिखाई देती हैं जितनी कि दोनों आँखों से, लेकिन एक आँख बन्द करके पास की वस्तुओं को देखने में काफी अंतर आ जाता है। बायीं आँख बन्द करने पर हमें बायीं ओर की वस्तुएं नहीं दिखाई देतीं और दायीं आँख बन्द करने पर दायीं ओर की वस्तुएं दिखाई नहीं देतीं। दूरी का सही-सही बोध हमें केवल दोनों आँखों की सहायता से होता है। इस तथ्य को नीचे दिये गए प्रयोग द्वारा देखा जा सकता है।

एक हाथ में एक पिन लो तथा दूसरे हाथ में एक कंघा। अब पिन की नोंक को कंघे के किसी दांत की नोंक पर रखकर देखो। तुम्हें यह महसूस होगा कि दोनों आँखों के खुली होने पर नोंक से नोंक मिलाना बहुत आसान काम है, लेकिन एक आँख बन्द होने पर नोंक से नोंक मिलाने में समय लगता है।

एक आँख से देखने पर हमें वस्तुओं के दो आयामों (dimensions) का ही आभास हो पाता है लेकिन दोनों आँखों से देखने पर वस्तु की लम्बाई चौड़ाई और मोटाई तीनों का ही ज्ञान प्राप्त हो जाता है। बायीं आँख वस्तु के बायें भाग को और दायीं आँख दायें भाग को अधिक देखती है। इस प्रकार दोनों आँखों से देखने पर वस्तु के ठोसपन (Solidity) और गहराई (depth) का पूर्ण ज्ञान प्राप्त हो जाता है। इसके अलावा एक उपयोगिता यह भी हो सकती है कि किसी कारण एक आँख के खराब या नष्ट होने पर आदमी दूसरी आँख से देख सकता है और पूरी तरह अंधा होने से बच जाता है।



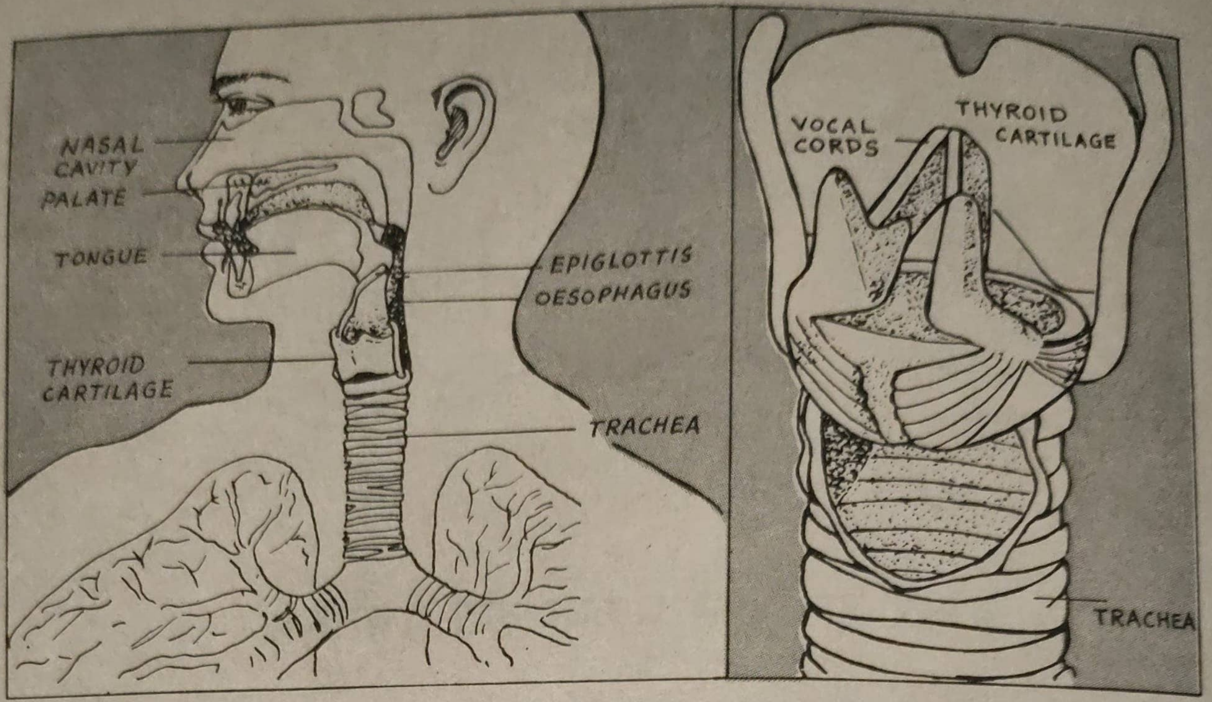
हमारे शरीर में भोजन कैसे पचता है?

हमारा शरीर असंख्यों कोशिकाओं से मिलकर बना है। इन कोशिकाओं से शरीर के ऊतक बने हैं। जो भोजन हम खाते हैं वह हमारे शरीर में दो मुख्य काम करता है। पहला इससे शरीर की वृद्धि के लिए प्रोटीन प्राप्त होते हैं और दूसरा दिन भर के काम काजों के लिए ऊतकों को ऊर्जा प्राप्त होती है। वृद्धि के काम आने वाले प्रोटीन हमें मांस, अंडा, मछली और दूसरे अन्य पदार्थों से प्राप्त होते हैं। क्या तुम जानते हो कि भोजन हमारे शरीर में कैसे पचता है तथा आवश्यक तत्त्वों की प्राप्ति हमें इससे किस प्रकार होती है?

भोजन पचने की क्रिया बहुत ही जटिल और लम्बी है। यह क्रिया हमारे शरीर में हर समय चलती रहती है। भोजन पचने की क्रिया हमारे मुंह से ही शुरू हो जाती है। जब हम इसे चबाते हैं तो मुंह की लार (Saliva) इसे गीला कर देती है। लार में टाइलिन (Ptyalin) नामक पदार्थ होता है जो भोजन में उपस्थित मंड (Starch) को चीनी में बदल देता है। आपने यह महसूस किया होगा कि भोजन को अधिक चबाने पर उसका स्वाद मीठा हो जाता है। यह मंड के चीनी में बदलने के कारण ही होता है। भोजन पचने का यह प्रथम चरण है। इसलिए यह आवश्यक है कि हमें भोजन को अच्छी तरह चबा-चबा कर खाना चाहिए।

इसके बाद खाने के पदार्थ भोजन नली द्वारा पेट या आमाशय (Stomach) में पहुंच जाते हैं। जब भोजन आमाशय में पहुंचता है तो इसमें आमाशय रस (Gastric juice) मिल जाता है। यह रस आमाशय की दीवारों से निकलता है,इस रस में पेप्सिन (Pepsin) नामक पदार्थ (एन्जाइम) और नमक का अम्ल (Hydrochloric acid) होते हैं। पेप्सिन इस अम्ल के साथ प्रोटीन के अणुओं को पेप्टोन्स (Peptones) में बदल देता है।

आमाशय से भोजन छोटी आंत (Small intestine) में पहुंच जाता है। यहां पर इसमें तीन पाचक रस और मिल जाते हैं। ये रस हैं–पित्त (bile) अग्नाशय रस (Pancreatic juice) और आंत्ररस (Intestinal juice)। पित्त यकृत (Liver) से पैदा होता है। इसका मुख्य कार्य वसा (Fats) को पचाना है। अग्नाशय रस क्षारीय होता है जो अम्लों को उदासीन करता है। यह प्रोटीन्स को भी पचाता है। आंत्ररस चीनी को ग्लूकोज में बदल देता है। यहां भोजन में बहुत से ऐन्जाइम भी मिल जाते हैं। भोजन मुख्य रूप से यहीं पर पचता है। पचा हुआ भोजन छोटी आंत की दीवार में स्थित रक्तवाहिनियों द्वारा सोख लिया जाता है। भोजन का बचा हुआ कूड़ा-कर्कट बड़ी आंत में चला जाता है। और वहां से विष्टा (Stool) के रूप में गुदा द्वारा शरीर से बाहर निकाल दिया जाता है। इस प्रकार भोजन के पोषक तत्व शरीर को मिलते रहते हैं।



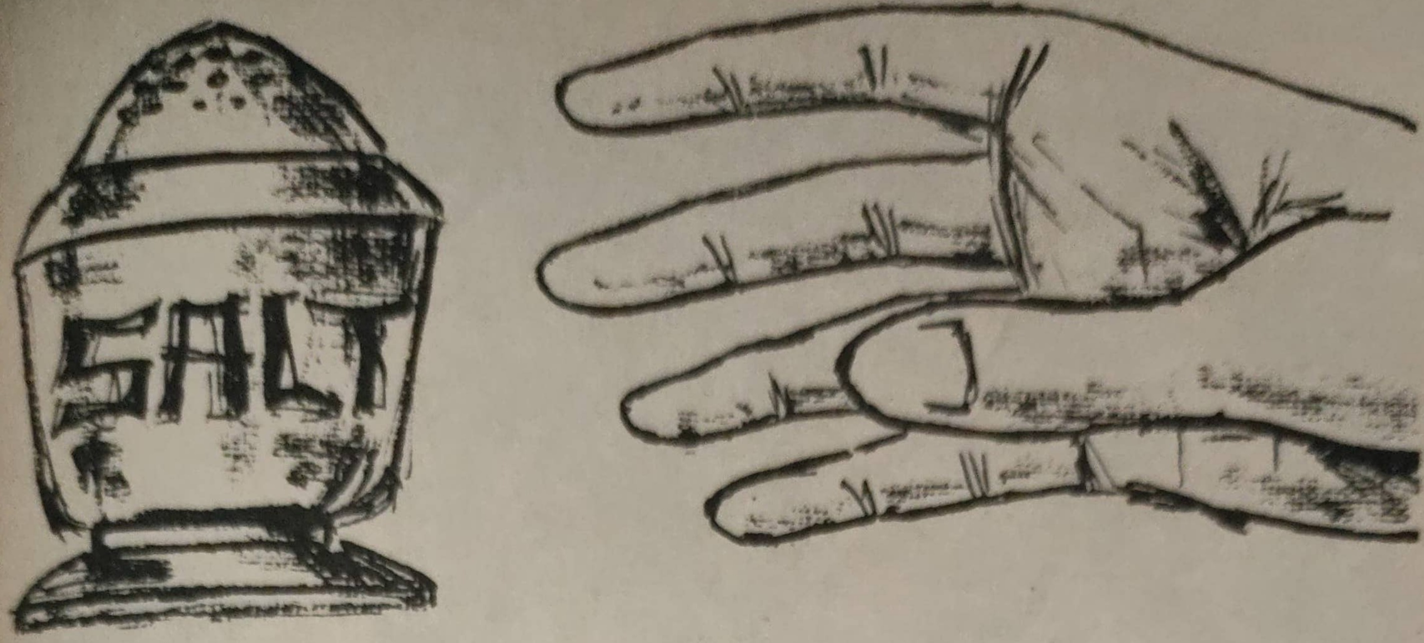
मुंह से आवाज कैसे पैदा होती है?

समस्त जीवित वर्ग में मनुष्य ही एक ऐसा प्राणी है जो अपने मन के विचारों को आवाज़ द्वारा एक दूसरे पर भली-भांति व्यक्त कर सकता है। वह भयानक आवाज़ें पैदा कर सकता है। धीरे-धीरे और जोर-जोर से बोल सकता है। क्या तुम जानते हो कि ये आवाज कैसे पैदा होती है?

आवाज़ पैदा करने के लिए हमारे गले में एक खोखला अंग होता है जिसे ध्वनि बक्स (Sound-box) कहते हैं। वास्तव में ध्वनि बक्स स्वास नलिका (Windpipe) का एक उभरा हुआ भाग है। इसकी दीवारें कार्टीलेज (Cartilage) की बनी होती हैं। कार्टीलेज बहुत ही मुलायम हड्डी जैसा होता है। इसी से हमारे बाहरी कान भी बने हैं। इस बक्स के अन्दर म्यूकस झिल्ली होती है। इस बक्स के दोनों ओर दो वोकल कार्ड (Vocal chords) होती हैं। प्रत्येक कार्ड की गति 16 मांसपेशियों द्वारा नियंत्रित होती है। इन्हीं मांसपेशियों द्वारा वोकल कार्ड्स में ढीलापन या तनाव पैदा होता रहता है। फेफड़ों से मुंह में आने वाली हवा जब वोकल कार्डों से गुजरती है तो ये कम्पन करने लगते हैं। इन्हीं कम्पनों के परिणामस्वरूप आवाज़ पैदा होती है। –

ध्वनि का तीखापन, भारीपन और सुरीलापन वोकल कार्डों के तनाव पर निर्भर करता है। मांसपेशियों द्वारा इनका तनाव नियंत्रित होता रहता है। जब इनमें अधिक तनाव होता है तो ये एक सेकण्ड में 1000 बार तक कम्पन करती हैं, जिससे सुरीली आवाज पैदा होती है। इनमें कम्पन जितना अधिक होगा उतनी ही आवाज पतली होगी और इनकी कम्पन-गति जितनी कम होगी आवाज उतनी ही मोटी होगी। अलग-अलग आदमी की कम्पन दर अलग-अलग होती है। इसलिए उनके मुंह से निकलने वाली आवाजें भी अलग-अलग होती हैं। जिन लोगों के स्वर संगीतमय होते हैं, उनका ध्वनि-बक्स कुछ अच्छे ढंग से निर्मित होता है।

जब बच्चा 13–14 वर्ष का हो जाता है तो वोकल कार्ड कुछ मोटे हो जाते हैं जिससे उनकी कम्पन दर कम हो जाती है और आवाज मोटी हो जाती है। इतना ही नहीं हमारी छाती, पेट, जीभ, होठ, दांत आदि का भी आवाज़ पैदा करने में योगदान होता है।



हम नमक क्यों खाते हैं?

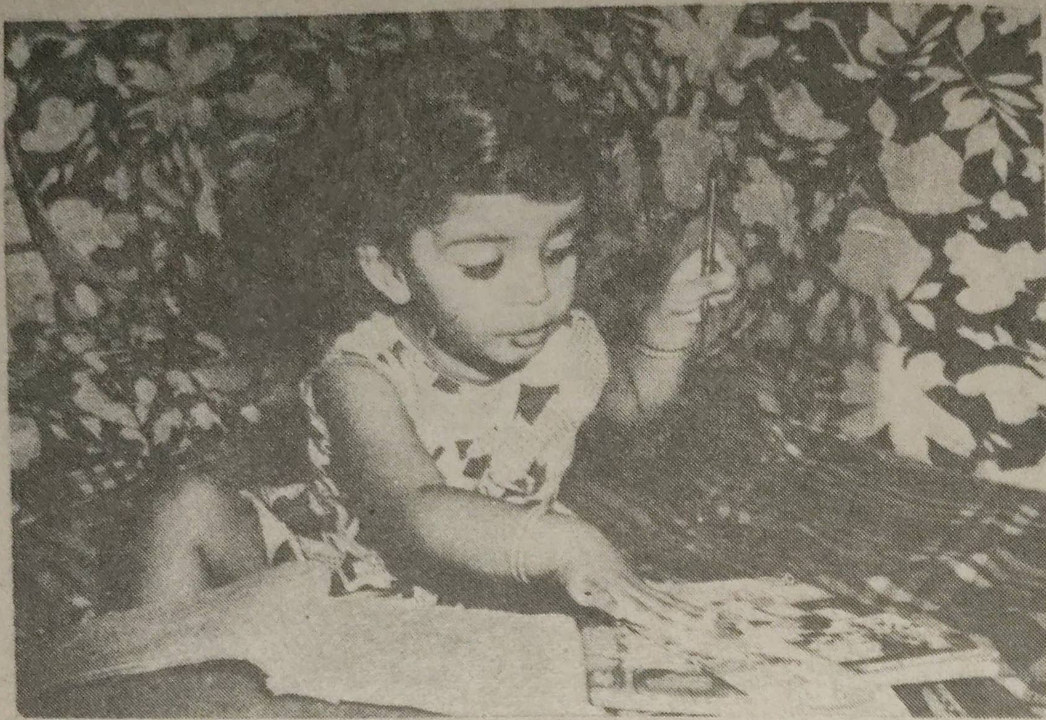
हमारे शरीर में लगभग 65% पानी है। कुछ अंगों में तो इससे भी कहीं अधिक पानी है। उदाहरण के लिए मांसपेशियों में 75%, लिवर में 70%, मस्तिष्क में 79% और गुर्दों में 83% पानी है। शरीर में उपस्थित यह पानी शुद्ध अवस्था में नहीं है बल्कि इसमें नमक घुला हुआ है। इस घोल में नमक की मात्रा को संतुलित रखने के लिए हम नमक खाते रहते हैं। अब प्रश्न उठता है कि हम नमक क्यों खाते हैं?

विज्ञान के एक सिद्धान्त के अनुसार मनुष्य और जमीन पर रहने वाले सभी जानवरों की उत्पत्ति ऐसे जीवों से हुई है जो कभी समुद्र में रहते थे। इन जीवों के शरीर में समुद्र का खारा पानी था। चूंकि इनकी उत्पत्ति समुद्र में हुई थी इसलिए ये बिना नमकीन पानी के जिन्दा नहीं रह सकते थे। जब ये जन्तु सूखी धरती पर आये तब भी इनके शरीरों में नमकीन पानी था। धरती से इन्हें नमक नहीं मिल पाता था लेकिन शरीर की क्रियाओं के लिए नमक की आवश्यकता होती थी। अतः नमक की पूर्ति करने के लिए इन सभी जानवरों ने नमक खाना शुरू किया।

जो जानवर दूसरे जानवरों को खाकर जिन्दा रहते हैं उन्हें अतिरिक्त नमक की आवश्यकता नहीं होती क्योंकि इनकी नमक की पूर्ति मांस में उपस्थित नमक से हो जाती है। यह बात मनुष्यों के विषय में भी सत्य है। मांस खाने वाले लोगों को अलग से नमक खाने की कम आवश्यकता होती है,उदाहरण के लिए एस्कीमो जाति के लोग अधिकतर मांस खाते हैं,इसलिए उन्हें नमक की बहुत ही कम जरूरत होती है।

जो लोग जमीन पर रहते हैं उन्हें नमक की अधिक जरूरत होती है। प्राचीन मेक्सिको में तो नमक इतना कीमती समझा जाता था कि वे नमक की देवता के रूप में पूजा करते थे।यूरोप में लोगों को काम करने के बदले में नमक दिया जाता था। सैलरी (Salary) शब्द की उत्पत्ति भी लैटिन भाषा के Salt शब्द से हुई है।

हमारे शरीर में अधिकतर नमक त्वचा में रहता है। हमारे रक्त से विसर्जन क्रियाओं द्वारा नमक कम होता रहता है। यदि हम बिना नमक का भोजन करें तो रक्त का नमक कम होता जाएगा। ऐसी स्थिति में नमक की पूर्ति त्वचा में जमा नमक के भंडार से होती है। नमक का विसर्जन मुख्य रूप से गुर्दों द्वारा और पसीने द्वारा होता है। शरीर को सुचारु रूप से चलाने के लिए नमक बहुत जरूरी है।

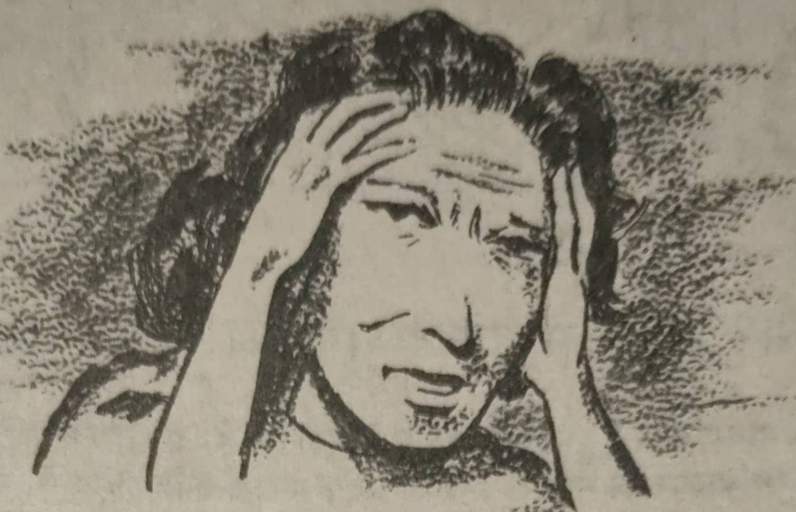


कुछ लोग खब्बू क्यों होते हैं?

दुनिया में अधिकतर लोग अपने सभी काम दायें हाथ से करते हैं लेकिन चार प्रतिशत लोग ऐसे भी हैं जो अपने कार्य बायें हाथ से करते हैं। इतिहास पर दृष्टि डालने से पता चलता है कि संसार के बहुत से महान व्यक्ति खब्बू ही थे। विश्व के महान संगतराश (Sculptors) लियोनारदो द विन्सी (Leonardo da Vinci) और माइकलएन्जलो (Michelangelo) खब्बू ही थे। जो बच्चे बायें हाथ से काम करते हैं उनके मा-बाप बहुत चिन्तित रहते हैं। वे हमेशा यह सोचते रहते हैं कि बायें हाथ से काम करने की आदत कैसे छुड़ाई जाए। लेकिन महान मनोवैज्ञानिकों के अनुसार यदि कोई बच्चा अपने कार्य बायें हाथ से करता है तो उसकी आदत बदलने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए।

अब प्रश्न आता है कि कुछ लोग खब्बू क्यों होते हैं? शरीर की संरचना पर सूक्ष्मता से विचार करने से पता चलता है कि यह पूर्ण रूप से समरूप (Symmetrical) नहीं है। शरीर के बायें और दायें हिस्सों में थोड़ी सी विषमता (Asymmetry) है। आमतौर पर दायीं ओर के अंग बायीं ओर के अंगों से आकार में कुछ भारी हैं। हमारे मस्तिष्क के भी बायें और दायें भाग हैं। इन दोनों भागों के कार्य भी कुछ अलग-अलग हैं। जिन लोगों में मस्तिष्क का बायां भाग दायें भाग से अधिक प्रबल (Predominant) होता है उन लोगों के मस्तिष्क से आने वाली नाड़ियां (Nerves) गर्दन से होती हुई शरीर के दायें हिस्सों में चली जाती हैं। ऐसे लोग अपने सभी कार्य दायें हाथ से करते हैं। संसार में अधिकतर लोग ऐसे ही हैं। लेकिन जिन लोगों के मस्तिष्क का दायां हिस्सा बायें हिस्से से अधिक प्रबल होता है उन लोगों के मस्तिष्क से आने वाली नाड़ियां शरीर के बायें भागों की ओर जाती हैं। ऐसे लोग अपने सभी काम बायें हाथ से करते हैं। यही कारण है कि कुछ बच्चे बायें हाथ से ही लिखते हैं और इसी से खाना खाते हैं।

अब प्रश्न उठता है कि बायें हाथ से काम करने वाले लोगों की संख्या दायें हाथ से काम करने वाले लोगों से कम क्यों है? इस प्रश्न का उत्तर वैज्ञानिक अभी तक नहीं ढूंढ पाये हैं। संसार में चूंकि दायें हाथ से काम करने वाले लोगों की संख्या बहुत अधिक है इसलिए हमारे दरवाजों के हैन्डल, ताले के कुन्दे, पेंचकस, मोटर गाड़ियां, संगीत-यन्त्र आदि सभी दायें हाथ से काम करने वालों की सुविधा के लिए बनाये जाते हैं। हमारे कपड़ों के बटन भी इसलिए दायीं ओर ही लगे होते हैं। बायें हाथ से काम करने वालों को इन सब के साथ थोड़ी परेशानी अवश्य होती है लेकिन अधिकतर लोग अपना काम चला ही लेते हैं।



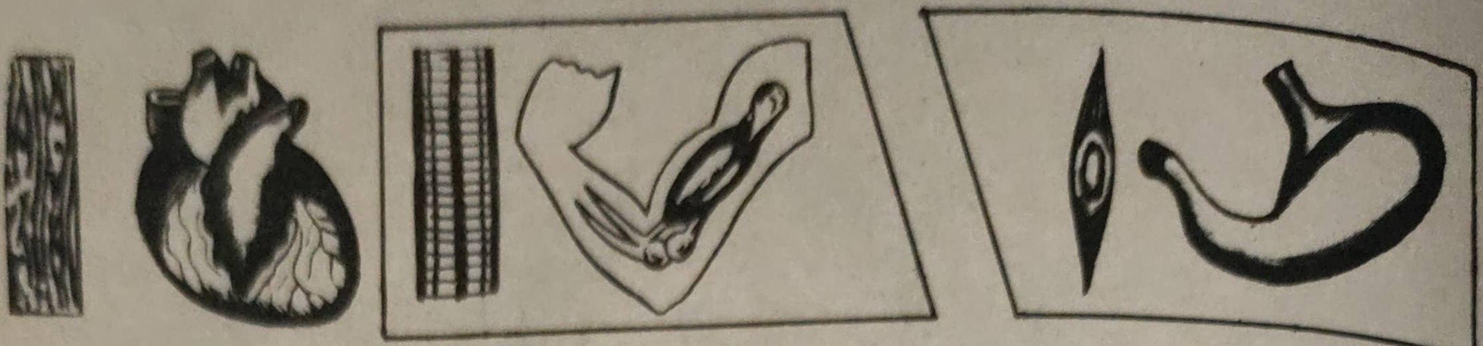
सिर में दर्द क्यों होता है ?

संसार में कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं होगा जिसके सिर में कभी न कभी दर्द न हुआ हो। सिर का दर्द कोई बीमारी नहीं है, बल्कि बीमारी का लक्षण (Symptom) है। सिर का दर्द यह प्रदर्शित करता है कि शरीर के किसी भाग या नाड़ी संस्थान के सामान्य कार्य में कोई गड़बड़ है। क्या तुम जानते हो, सिर दर्द क्यों होता है?

मस्तिष्क हमारे शरीर का बहुत ही महत्त्वपूर्ण भाग है। इसके खोल को हम खोपड़ी (Skull) कहते हैं। मस्तिष्क के इस खोल में कुछ धमनियां और शिराएं ऐसी हैं जो पीड़ा के प्रति संवेदनशील हैं। खोपड़ी के चारों ओर के बहुत से ऊतक (Tissues) भी पीड़ा के प्रति संवेदनशील होते हैं। जब इन संरचनाओं (शिराओं, धमनियों और ऊतकों) को किसी प्रकार का आघात या झटका लगता है तो सिरदर्द होने लगता है।

दर्द के प्रति संवेदनशील इन संरचनाओं पर बहुत सी बातों का प्रभाव पड़ता है। जब कभी दांत, नाक, कान, आंख या मांसपेशियों पर चोट लग जाती है तो इनमें होने वाला दर्द मस्तिष्क की इन संरचनाओं तक फैल सकता है, जिसके फलस्वरूप सिरदर्द हो जाता है। यदि सिर के पास और गर्दन के ऊपर की मांसपेशियों में किसी कारण सिकुड़न पैदा हो जाती है, तो सिरदर्द हो सकता है। अधिक रक्त-दबाव के कारण भी सिर दर्द होने लगता है। मस्तिष्क में उपस्थित ट्यूमर (Tumour) भी दर्द का कारण हो सकता है। ट्यूमर की उपस्थिति से होने वाला सिर दर्द उसी हिस्से में होता है, जहां ट्यूमर होता है।

सिर पर चोट लगना, अधिक भूख, गर्दन की हड्डियों की गड़बड़, दृष्टि का कमजोर होना, बुखार आदि ऐसे कारण हैं, जिनसे सिरदर्द हो जाता है। चिन्ता, मानसिक तनाव, अधिक सोचना, किसी चीज के लिए जिद करना और गुस्सा आना भी सिरदर्द के कारण हैं। इन स्थितियों में धमनियों, शिराओं और मांसपेशियों में ऐसे परिवर्तन हो जाते हैं, जिनसे सिरदर्द होने लगता है। सिरदर्द यदि अधिक समय तक रहता है, तो हमें इसकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए, बल्कि तुरन्त ही डाक्टर की सलाह लेनी चाहिए।



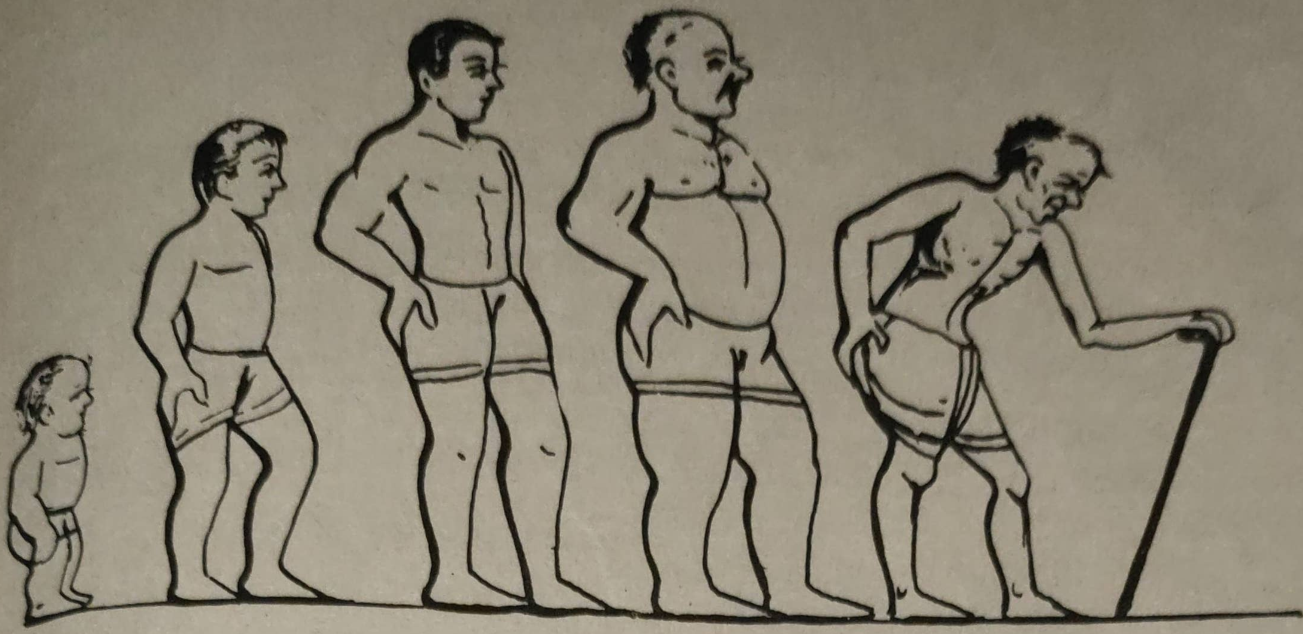
हमारे शरीर में मांसपेशियों का काम क्या है?

हमारे शरीर में 639 मांसपेशियां हैं। ये सभी हड्डियों से जुड़ी हुई हैं। इन सबका आकार और बनावट अलग-अलग है। एक मध्यम आकार की मांसपेशी लगभग एक करोड़ कोशिकाओं से मिलकर बनी है। शरीर की सभी मांसपेशियां लगभग 6 अरब कोशिकाओं से मिलकर बनी हैं। शरीर में जो मांस (Flesh) के लोथड़े हैं वे सब मांसपेशियां ही हैं। जानवरों का मांस जो हम खाते हैं वह वास्तव में उनकी मांसपेशियां ही हैं।

जन्म से लेकर मरने तक ये मांसपेशियां बहुत ही महत्त्वपूर्ण काम करती रहती हैं। ये हमारे शरीर में ऊष्मा(heat) पैदा करती हैं। इनके द्वारा ही भोजन, पाचन संस्थान (Digestive System) में,एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाता है। ये ही वायु को फेफड़ों तक भेजती हैं। बिना मांसपेशियों के न तो हम बोल सकते हैं, न चल सकते हैं और न ही भोजन कर सकते हैं। यदि मांसपेशियां काम करना बन्द कर दें तो हमारे शरीर के अंगों की सभी गतियां बन्द हो जाएंगी, यहां तक कि हृदय की धड़कन और आंतों का फैलना और सिकुड़ना भी बन्द हो जाएगा। इन सब बातों से यह स्पष्ट हो जाता है कि मांसपेशियां हमारे लिए कितनी आवश्यक हैं।

हमारे शरीर में दो प्रकार की मांसपेशियां हैं—ऐच्छिक (Voluntary) और अनैच्छिक (Involuntary)। ऐच्छिक मांसपेशियां वे हैं जो हमारी इच्छा के अनुसार काम करती हैं। हाथ, पैर, गर्दन और सिर की बहुत सी मांसपेशियां ऐच्छिक हैं क्योंकि इन अंगों का हिलना-डुलना हमारी इच्छा से ही होता है। अनैच्छिक मांसपेशियां वे हैं जो अपने आप ही काम करती रहती हैं। हृदय और पाचन संस्थान की मांसपेशियां अनैच्छिक हैं क्योंकि हृदय की गति, भोजन की गति अपने आप ही होती रहती है और साधारणतया उन पर हमारा कोई ज़ोर नहीं होता। हृदय की मांसपेशी सबसे अधिक महत्त्व की है। यह रेशेदार है। यह सदा ही अपना काम करती रहती है। क्या तुम जानते हो कि सत्तर वर्ष के जीवन काल में इसी मांसपेशी द्वारा हमारा हृदय लगभग 2 अरब 50 करोड़ बार धड़कन करता है।

अब प्रश्न उठता है कि शरीर में मांसपेशियां किस प्रकार काम करती हैं? जब किसी कार्य के लिए हमारा मस्तिष्क सन्देश भेजता है तो मांसपेशी सिकुड़ती है। ऐसा करने में कोशिकाओं में उपस्थित पोषक पदार्थों की रासायनिक ऊर्जा (Chemical energy) यांत्रिक ऊर्जा यानी कार्य में बदल जाती है। सिकुड़ने की क्रिया एक सैकिंड के दसवें भाग में पूरी हो जाती है। जैसे ही मांसपेशी अपनी मूल अवस्था को प्राप्त करती है मस्तिष्क फिर उसे कार्य करने का सन्देश देता है और यह सिकुड़ जाती है। इस प्रकार मांसपेशी के बार-बार सिकुड़ने से सतत रूप से कार्य होने लगता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि मांसपेशियां हमारे लिए बहुत ही उपयोगी एवं महत्त्वपूर्ण हैं।



हम एक खास उम्र तक ही क्यों बढ़ते हैं?

बढ़ना प्रत्येक जीवित प्राणी का एक जन्मजात गुण है। पेड़-पौधे, पशु-पक्षी और मनुष्य सभी में वृद्धि की क्रिया गर्भाधान के फौरन बाद ही शुरू हो जाती है। पहले नौ महीनों तक बच्चा गर्भ में बढ़ता है फिर पैदा होने के बाद बढ़ता है। बच्चा जब पैदा होता है उसकी ऊंचाई लगभग 50 से०मी० होती है और बीस साल की उम्र तक उसकी लम्बाई लगभग तीन गुनी हो जाती है। 20 या 22 साल की उम्र के बाद मनुष्य का बढ़ना बन्द हो जाता है। क्या तुम जानते हो कि मनुष्य में वृद्धि कैसे होती है और एक विशेष उम्र के बाद उसका बढ़ना बन्द क्यों हो जाता है?

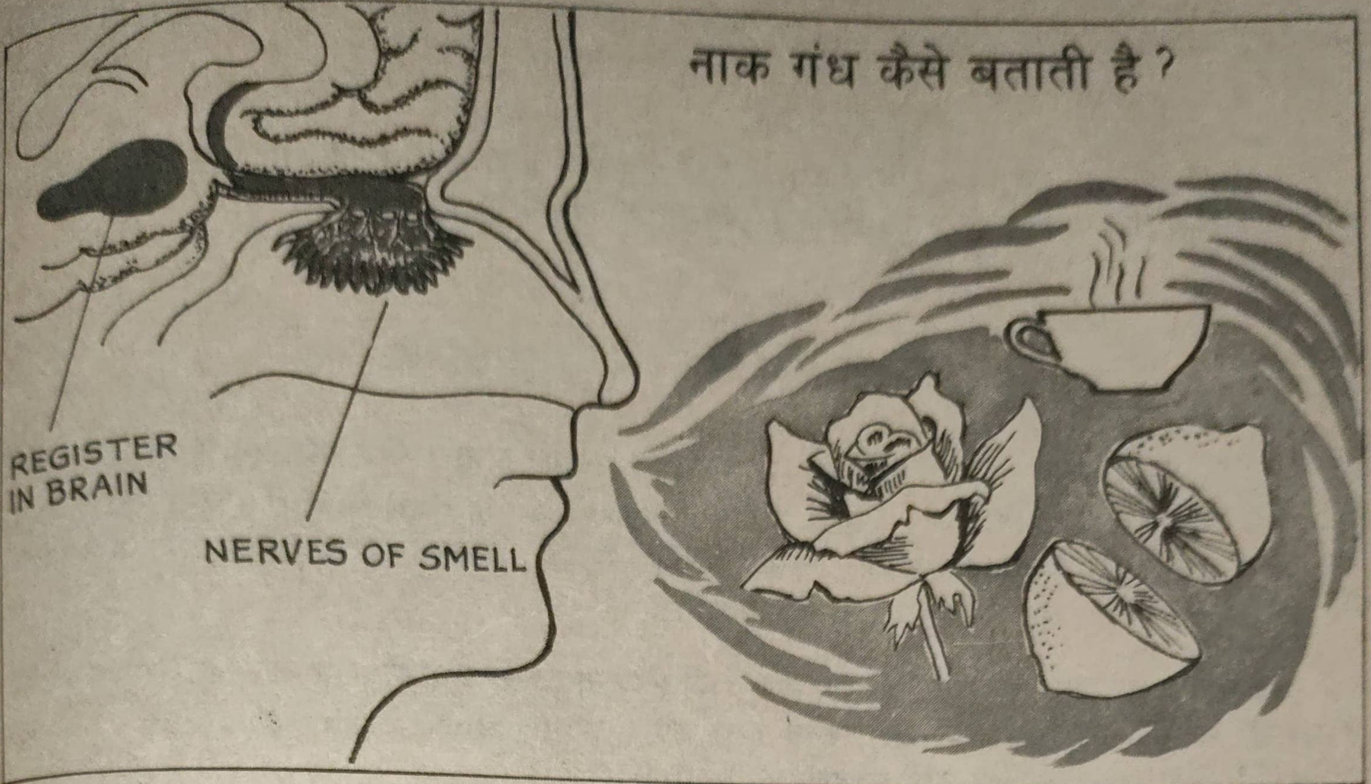
हमारे शरीर में वृद्धि का काम मुख्य रूप से प्रोटीन करते हैं। मांस, मछली, अण्डा, दूध, दूध से बने दूसरे पदार्थ, बीज, अनाज, बहुत सी सब्जियों और फलों से ये प्रोटीन हमें भोजन के रूप में प्राप्त होते हैं। भोजन की पाचन क्रिया के द्वारा ये प्रोटीन अमीनो अम्लों (Amino acids) में बदल जाते हैं। ये अमीनो अम्ल ही कोशिकाओं और ऊतकों के निर्माण का काम करते हैं। कैल्शियम, मेंग्नीशियम, फास्फेट, सोडियम, पोटाशियम और लोहा जैसे खनिज पदार्थ भी शारीरिक वृद्धि के काम आते हैं। प्रोटीन और खनिज पदार्थों से ऊतकों, मांसपेशियों और हड्डियों का निर्माण होता है। टूटी हुई कोशिकाओं और ऊतकों को ठीक करने के लिए भी ये ही प्रोटीन काम में आते हैं।

अब प्रश्न उठता है कि हम एक खास उम्र तक ही क्यों बढ़ते हैं? हम सारी उम्र ही क्यों नहीं बढ़ते रहते? हमारे शरीर की अन्तरस्रावी (Endocrine) ग्रन्थियां बढ़ोतरी पर नियंत्रण (Control) रखती हैं। वृद्धि को नियंत्रित करने का काम गले की थायरॉइड (Thyroid) ग्रन्थि, मस्तिष्क की पिट्यूटरी (Pituitary) ग्रन्थि छाती की थाइमस (Thymus) ग्रन्थि और कुछ सैक्स ग्रन्थियां करती है। पिट्यूटरी ग्रन्थि हमारी हड्डियों की वृद्धि का नियंत्रण करती है। जब बच्चा पैदा होता है तब उसकी थाइमस ग्रन्थि काफी बड़ी होती है लेकिन 13-14 साल की

उम्र के बाद यह सिकुड़ना शुरू हो जाती है। इस उम्र में सैक्स ग्रन्थियां वृद्धि का काम संभालती हैं। 20-22 वर्ष की उम्र तक व्यक्ति परिपक्व हो जाता है और इसके बाद उसकी वृद्धि रुक जाती है। इस उम्र के बाद वृद्धि करने वाली ग्रन्थियों की क्रिया मन्द हो जाती है। इस उम्र के बाद भी मनुष्य में बहुत धीरे-धीरे 35 से 40 वर्ष तक वृद्धि होती है। इसके बाद आदमी सिकुड़ना शुरू करता है। चालीस साल के बाद हर दस वर्षों में आदमी करीब 1 सेमी० सिकुड़ जाता है। यह सिकुड़ने की क्रिया जोड़ों की और रीढ़ की हड्डियों के सूखने के कारण होती है।

वृद्धि की दर अलग-अलग मौसमों में अलग-अलग होती है। बच्चे जाड़ों की अपेक्षा गर्मियों में तेज़ी से बढ़ते हैं। पोषक भोजन से वृद्धि अधिक तेज़ होती है। आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि हर सुबह हमारी लम्बाई पिछली शाम से अधिक होती है लेकिन दिन के समय हमारे शरीर में कुछ सिकुड़न आ जाती है।

नाक गंध कैसे बताती है?



वस्तुओं से आने वाली गंध का अनुभव हमें नाक द्वारा होता है। नाक हमारे शरीर का एक बहुत ही महत्वपूर्ण अंग है। यदि हमारी नाक ठीक नहीं है तो दुर्गन्ध और सुगन्ध का कोई अर्थ ही नहीं है। अगर हमें जुकाम हो जाए तो फूल की सुगन्ध का हम अनुभव नहीं कर पाते। क्या तुम जानते हो कि किसी भी गंध का अनुभव नाक द्वारा कैसे होता है?

हमारी नाक, होंठों के ऊपर और माथे के नीचे दोनों आंखों के बीच में दो हड्डियों से बनी हुई है। ये दो हड्डियां एक प्रकार का पुल बनाती हैं। इनके बीच में कार्टीलेज (Cartilage) की बनी नरम दीवार होती हैं जो नाक को दो भागों में बांटती हैं। इन्हें नासिका नलियां (Nasal cavities) कहते हैं। नासिका नलियों के अन्त में एक पतली झिल्ली होती है जिसे म्यूकस मेम्बरेन (Mucus Membrane) कहते हैं। इससे एक प्रकार का तरल पदार्थ निकलता रहता है जो नाक को गीला रखता है। नासिका में बाल होते हैं जो अन्दर जाने वाली वायु को गर्म करते हैं और धूल कणों को फेफड़ों में जाने से रोकते हैं। नासिका से छनी हुई वायु ट्रेकिया (Trachea) से होती हुई फेफड़ों में जाती है।

गंध का ज्ञान नासिका के अन्त में स्थित दो आलफेक्टरी नाड़ियों (Olfactory Nerve) में उपस्थित कुछ विशेष कोशिकाओं द्वारा किया जाता है। इन्हें रिसेप्टर कहते हैं। ये कोशिकाएं लगभग 250 वर्ग मिलीमीटर के क्षेत्रफल में फैली हुइ हैं। जब हम किसी वस्तु को सूंघते हैं तो उससे निकलने वाले कण नासिका द्वारा इस संवेदनशील क्षेत्र तक पहुंचते हैं। वहां जाकर ये नाड़ियों नें विद्युतधारा पैदा करते हैं। विद्युतधारा के रूप में यह सूचना मस्तिष्क के गंध केन्द्र (Smell centre) तक पहुंचती है और हमें गंध का अनुभव हो जाता है।

एक सिद्धांत के अनुसार हमारी नाक में सात प्रकार के गंध रिसेप्टर (Smell Receptors) हैं जो सात प्रकार की गंधों का भेद पता करते हैं। सात प्रकार की गंध इस प्रकार है : फूलों से आने वाली गंध, तीखी गंध, चीजों

के जलने से पैदा हुई गंध, एल्कोहल जैसी गंध, फलों से आने वाली गंध, कस्तूरी जैसी गंध और पिपरमेन्ट जैसी गंध। इन गंधों के कण नाक के अन्दर जाकर आलफेक्टरी नर्व की कोशिकाओं में घुलकर विद्युतधारा के रूप में गंध का संदेश मस्तिष्क तक पहुंचाते हैं और हमें गंध का पता चल जाता है।

जुकाम आदि में जब ये कोशिकाएं ढक जाती हैं तो हमें गंध का अनुभव नहीं होता। मनुष्य की सूंघने की शक्ति जानवरों से कम होती है। कुत्ते की सूंघने की शक्ति बहुत तेज होती है।

खून का रंग लाल क्यों होता है ?

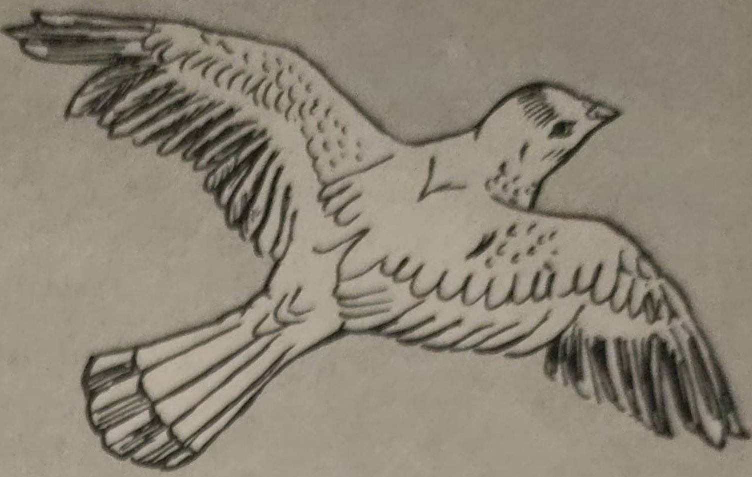
एक सामान्य व्यक्ति के शरीर में तीन से चार किलोग्राम खून की मात्रा होती है। यह खून जीवन पर्यन्त हमारी धमनियों (arteries) शिराओं (veins) और कोशिकाओं (capillaries) में भ्रमण करता रहता है। संसार के सभी स्त्री और पुरुषों के खून का रंग लाल होता है। खून के रंग का सम्बन्ध त्वचा के रंग से कुछ नहीं है। क्या तुम जानते हो कि खून का रंग लाल क्यों होता है ?

इस प्रश्न का उत्तर समझने के लिए हमें खून की संरचना को समझना होगा। हमारे रक्त के मुख्य रूप से 4 अवयव हैं; ये हैं—प्लाज्मा (Plasma), श्वेत रक्त कण (White blood corpuscles), लाल रक्त कण (Red blood corpuscles) और प्लेटलेट्स (Platelets)।

रक्त में आधे से अधिक मात्रा प्लाज्मा की होती है। यह पीले रंग का गाढ़ा द्रव होता है। इसमें प्रोटीन, एन्टीबॉडीज़ (Antibodies), फाइब्रिनोजन (Fibrinogen), कार्बोहाइड्रेट, वसा (Fat), लवण आदि मिले होते हैं। प्रोटीन शारीरिक वृद्धि का काम करते हैं, एन्टीबॉडीज़ हानिकारक बैक्टीरिया तथा उनसे निकले हुए विषैले पदार्थों (Toxins) को निष्क्रिय करते हैं। फाइब्रिनोजन से शरीर के कटने पर खून बहना बन्द हो जाता है। लाल रक्त कणों के कारण ही खून का रंग लाल दिखाई पड़ता है। इनकी बनावट तश्तरी जैसी होती है। इनका आकार 0.008 मिलीमीटर के लगभग होता है। ये ही कण शरीर में आक्सीजन को एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाते हैं। इनमें लाल रंग का हेमोग्लोबिन (Haemoglobin) नामक पिगमेन्ट होता है जो खून का रंग लाल बना देता है। हेमोग्लोबिन लोहे और प्रोटीन से मिलकर बना है। एक सामान्य स्त्री के प्रति घन मिलीमीटर में लाल रक्त कणों की संख्या लगभग 45 लाख होती है। आदमी के प्रति घन मिलीमीटर में इनकी संख्या 55 लाख तक होती है। शरीर में इनकी कमी हो जाने से रक्त की कमी (Anaemia) हो जाती है। जैसे ही रक्त फेफड़ों से गुजरता है इन कणों में आक्सीजन मिल जाती है जो सारे शरीर में भ्रमण करती है। प्रत्येक लाल रक्त कण लगभग चार महीने जिन्दा रहता है, इसके बाद यह टूट जाता है। इनके स्थान पर नए लाल कण बनते रहते हैं। इन कणों का बनना और टूटना जीवनभर चलता रहता है। अतः खून का लाल रंग इन कणों में उपस्थित हेमोग्लोबिन के कारण होता है।

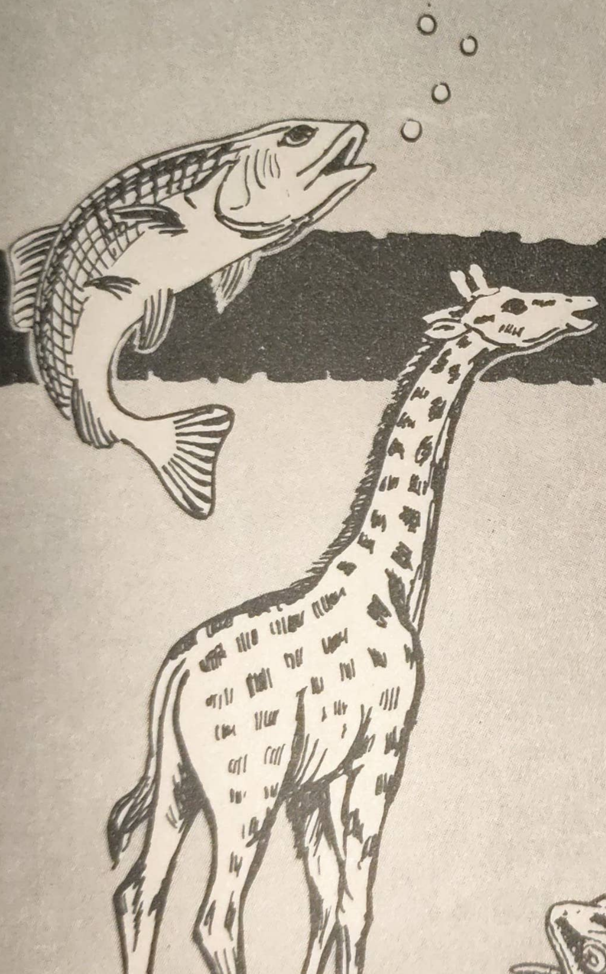
श्वेत रक्त कणों की संख्या काफी कम होती है। इनका आकार लगभग 0.01 मिलीमीटर होता है। लगभग प्रत्येक 700 लाल कणों के साथ एक श्वेत कण होता है। ये आमतौर पर रोग के कीटाणुओं के विरुद्ध संघर्ष करते रहते हैं।

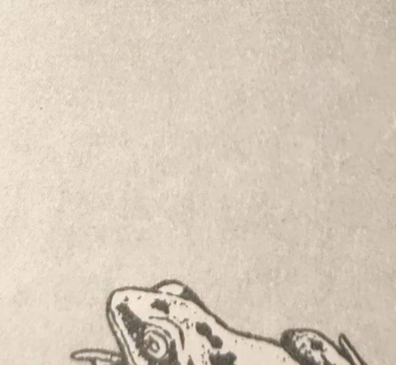
प्लेटलेट्स का आकार बहुत ही छोटा होता है। इनका आकार लगभग 0.002 मिलीमीटर होता है। इनकी संख्या एक घन मिलीमीटर में 150,000 से 400,000 तक होती है। शरीर के किसी हिस्से के कट जाने पर बहने वाले खून के बहाव को रोकने में इनका विशेष योगदान होता है।



3

जीव-जगत

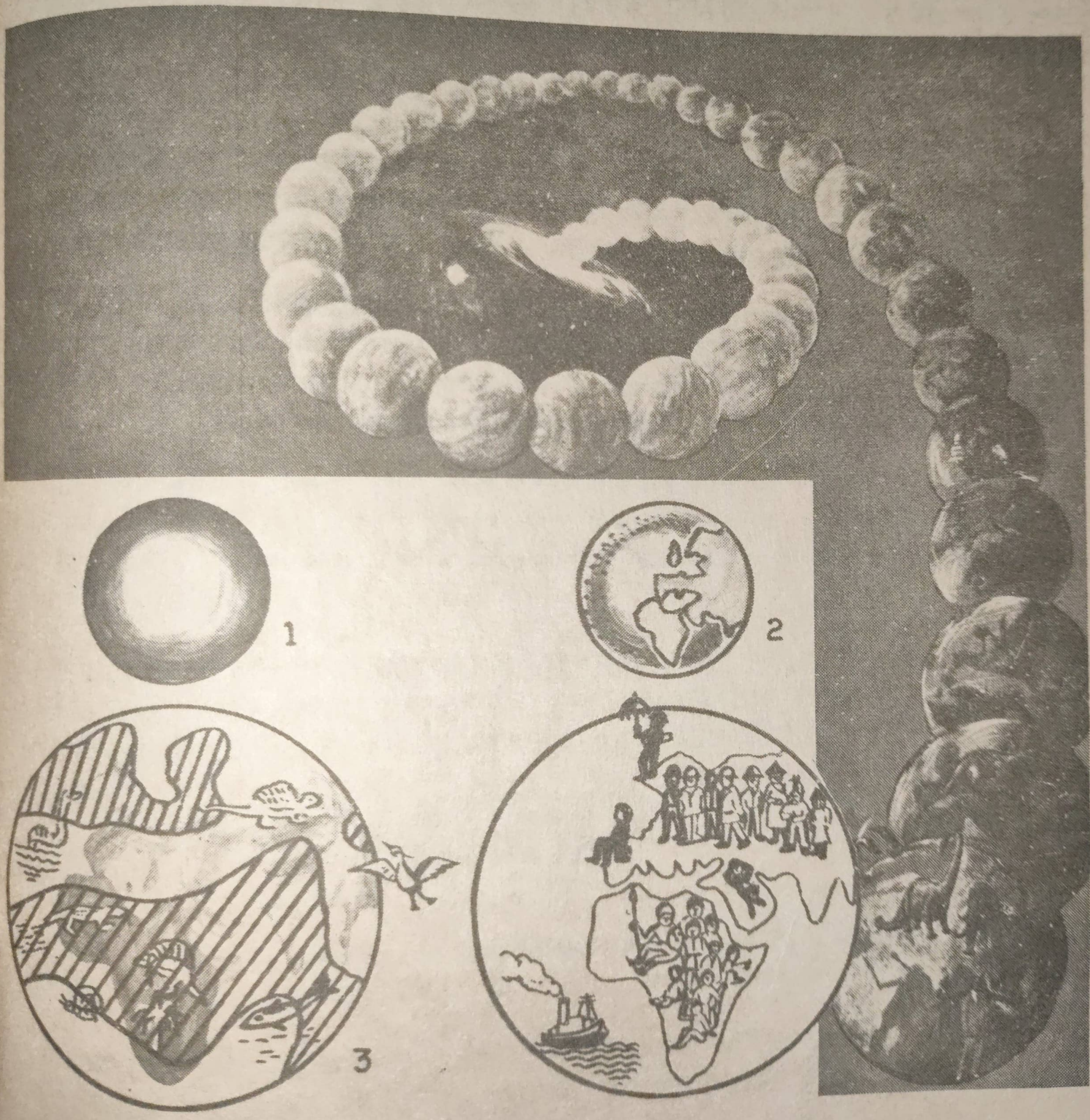




धरती पर जीवन कैसे प्रारम्भ हुआ ?

आज हम धरती पर अनेकों प्रकार के कीड़े, पक्षी और जानवर देखते हैं। इसी प्रकार हमें तरह-तरह के पेड़-पौधे और झाड़ियां भी दिखाई देती हैं। ये सभी वस्तुएं जीवितों की श्रेणी में आती हैं। वर्षा ऋतु में इन सब की संख्या बहुत अधिक बढ़ जाती है। क्या तुम जानते हो कि धरती पर जीवन कैसे आरम्भ हुआ?

धरती पर जीवन के आरम्भ को जानने के लिए हमें करोड़ों वर्ष पीछे जाना होगा, लेकिन विवशता यह है कि हम किसी भी तरह भूतकाल में वापस नहीं जा सकते। फिर कैसे पता लगाया जाए कि धरती पर जीवन का आरम्भ किस प्रकार हुआ? इस बात का पता लगाने के लिए हम उन जानवरों और पेड़-पौधों के जीवाश्मों (Fossils) का अध्ययन करते हैं जो आज से बहुत पहले धरती पर जिन्दा थे। धरती की खुदाई करने पर बहुत से जीवाश्म, चट्टानें



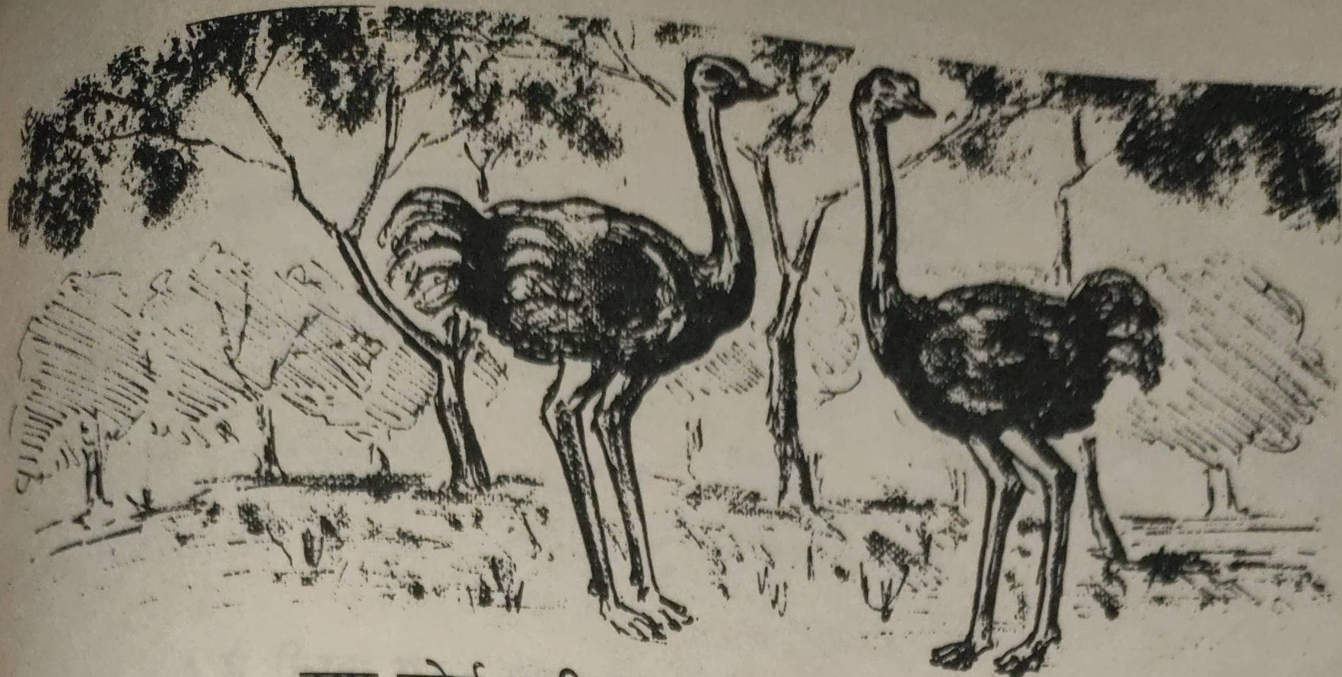
और हड्डियां मिली हैं, जो प्राचीन काल के जीवित प्राणियों के विषय में बहुत सी बातों पर प्रकाश डालती हैं। इन्हीं के आधार पर मनुष्य ने धरती पर जीवन के आरम्भ का अनुमान लगाया है।

वैज्ञानिकों द्वारा किए गए अध्ययनों से यह निष्कर्ष निकलता है कि धरती पर जीवन एक कोशिकीय (Unicellular) प्राणी अमीबा (Amoeba) से शुरू हुआ है। यह घटना आज से लगभग 57 करोड़ वर्ष पहले घटी। इसी एक कोशिकीय जीव से बहु कोशिकीय प्राणियों का जन्म हुआ। शुरू के 34.5 करोड़ वर्षों में समुद्री जीवों का विकास हुआ। इसके बाद 16 करोड़ वर्षों तक रेंगने वाले जन्तु विकसित होते रहे और अंत के साढ़े छः करोड़ वर्षों में स्तनधारी प्राणियों का विकास हुआ। मनुष्य का जन्म तो केवल 10 लाख वर्ष पुरानी घटना है।

जानवरों और पेड़-पौधों की कोशिकाओं के अध्ययन करने से पता चलता है कि ये प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, वसा और बहुत से पदार्थों से मिलकर बनी हैं। यह निश्चय है कि धरती पर इन पदार्थों का निर्माण एक कोशिकीय जीव के पैदा होने से बहुत पहले हुआ होगा। अब प्रश्न उठता है कि जीवन के लिए आवश्यक ये पदार्थ कैसे बने? हाल ही में किए गए अध्ययनों से पता चला है कि इन पदार्थों का निर्माण विद्युत विसर्जन (Electric discharge) द्वारा हुआ।

लगभग 350 करोड़ वर्ष पहले धरती का वायुमण्डल अमोनिया (Ammonia), मीथेन (Methane), हाइड्रोजन (Hydrogen), जलवाष्प आदि से भरा हुआ था। उस समय पृथ्वी काफी गर्म थी। इसके चारों ओर बादल छाये रहते थे, जिनमें बिजली चमकती रहती थी। किसी विद्युत विसर्जन से इन गैसों के अणु संयुक्त अवस्था में आ गए, जिससे प्रोटीन आदि बन गए। इन्हीं प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट और वसा से एक कोशिकीय जीव पैदा हुआ।

यद्यपि जीवन की शुरुआत के विषय में आज हमने बहुत से रहस्यों को समझ लिया है, लेकिन फिर भी बहुत सी बातों का समाधान अभी तक नहीं हो पाया है। उदाहरण के लिए परमाणु और अणु तो बेजानदार चीजें हैं, फिर इनके मिलने से एक जानदार वस्तु कैसे बन जाती है? वह क्या चीज है, जो एक कोशिका में दूसरी कोशिका पैदा करने की क्षमता पैदा कर देती है? इन जटिल प्रश्नों का उत्तर खोजना अभी बाकी है।



क्या कोई पक्षी पत्थर भी खाता है?

शुतुरमुर्ग एक ऐसा पक्षी है जो केवल पत्थर ही नहीं बल्कि लोहे के टुकड़े व ऐसी ही कुछ अन्य चीज़ें भी खाता है। यह खाने के मामले में बड़ा लालची होता है। वास्तव में इसका मुख्य भोजन तो पौधे, बीज, बेरी आदि ही हैं, लेकिन इन सब चीजों को पचाने के लिए वह पत्थर और लोहे के टुकड़े भी निगल (Swallow) जाता है।

दुनियाभर के सभी पक्षियों में शुतुरमुर्ग का आकार सबसे बड़ा होता है। अफ्रीका में पाए जाने वाले इस पक्षी का वजन 130 किलोग्राम व ऊंचाई 2½ मीटर तक होती है। शुतुरमर्ग के छोटे-छोटे पंख होते हैं लेकिन उनसे वह उड़ नहीं सकता। दौड़ते समय ये पंख सतुलन बनाए रखने में उसकी मदद करते हैं।

शुतुरमर्ग के पैर काफी लम्बे होते हैं, लेकिन उनमें से प्रत्येक में सिर्फ दो उंगलियां ही होती हैं। इसके सिर और लम्बी गर्दन पर पंख बहुत कम होते हैं। शुतुरमर्ग के पांव काफी सुन्दर होते हैं। नर शुतुरमर्ग के पंखों का रंग गहरा भूरा या काला होता है जबकि इसके पांव सफेद रंग के होते हैं। मादा शुतुरमुर्ग के पंखों का रंग धुंधला होता है और वे छोटे भी होते हैं।

शुतुरमर्ग के अंडे सबसे बड़े होते हैं। एक अंडे की लम्बाई 14 से 17 सें०मी० तक और व्यास (Diameter) 12 से 15 सें०मी० तक होता है। आमतौर पर तीन-चार मादा शुतुरमर्ग रेत में एक मांद बना कर उसमें अंडे देती हैं और बारी-बारी से उन्हें सेती हैं। नर शुतुरमुर्ग रात के समय अंडों को सेता है।

शुतुरमुर्ग की आवाज मीठी नहीं होती। यह केवल सिसकारी की आवाज़ निकालता हैं। जब नर शुतुरमर्ग मादा शुतुरमुर्ग से मिलता है तो उसके मुंह से एक तेज आवाज़ निकलती है।जसे काफी दूर तक सुना जा सकता है। इस पक्षी के पंख बड़े सुन्दर होते हैं।

जब यह एक साल का हो जाता है तब उसके पंख आसानी से उखाड़े जा सकते हैं। पंख उखाड़ने से इसको कोई नुकसान नहीं होता। प्रत्येक बार पंख उखाड़ने के बाद इसके नए पंख आ जाते हैं।

यह संसार में पाए जाने वाले पक्षियों में सबसे तेज़ दौड़ता है। इसका वेग 80 कि०मी० (50 मील) प्रति घंटा तक पहुंच जाता है और इस वेग से यह लगभग एक किलोमीटर तक दौड़ लेता है।



छिपकली अपनी पूंछ कैसे छोड़कर भाग जाती है ?

छिपकली देखने में डरावनी लगती है। दीवारों पर चलती छिपकलियों को देखकर बच्चे अकसर डर जाते हैं। जब छिपकली पर उसका कोई शत्रु हमला करता है और इसकी पूंछ जरा सी भी पकड़ में आ जाती है तो यह अपनी पूंछ का वह हिस्सा छोड़कर भाग जाती है और दुश्मन के चंगुल से अपने को बचा लेती है। कटी हुई पूंछ थोड़ी देर तक छटपटाती रहती है। कुछ ही दिनों में छिपकली के नई पूंछ उग आती है। छिपकली द्वारा पूंछ छोड़ने का गुण एक ऐच्छिक गुण है। इसकी पूंछ की हड्डियां दूसरी हड्डियों के साथ ढीले रूप में जुड़ी होती हैं इसलिए पूंछ इसके शरीर से आसानी से अलग हो सकती है। पूंछ कटने पर खून भी नहीं निकलता है क्योंकि इसकी रक्त कोशिकाओं के अंतिम सिरे लगभग बंद होते हैं। इन सब कारणों से इसे अपनी पूंछ शरीर से अलग करने में कष्ट नहीं होता है और पूंछ कटने पर इसे चलने में भी कोई परेशानी नहीं होती।

अब तक छिपकली की 25,000 से अधिक किस्मों का अध्ययन किया जा चुका है। आमतौर पर सभी छिपकलियों के शरीर को तीन हिस्सों में बांटा जा सकता है—सिर, धड़ और पूंछ। लगभग सभी छिपकलियों की चार टांगें होती हैं और ये अंडे देती हैं, लेकिन कुछ ऐसी भी हैं जो बच्चे पैदा करती हैं। ये कीड़े-मकोड़े खाकर जिंदा रहती हैं। इनका आकार अलग-अलग होता है। इनकी कुछ जातियां तो ऐसी हैं, जिनकी लम्बाई 3 मीटर तक होती है। ये देखने में बड़ी भयानक लगती हैं और बड़े-बड़े जानवरों को अपनी पूंछ में लपेटकर मार देती हैं। आमतौर पर छिपकली संसार के सभी गर्म देशों में पायी जाती है।

छिपकली की तरह केकड़ों की भी कई जातियां ऐसी होती हैं, जिन्हें अपने पैर छोड़ने पर कोई कष्ट नहीं होता। जब कोई मछली केकड़े की टांगें पकड़ती है तो वह अपनी टांगें मछली के मुंह में छोड़ कर भाग जाता है। यह कुछ ऐसे तरीके हैं जिनके सहारे बहुत से जानवर अपने को जीवित रख पाते हैं।



लोग बिल्ली को शेर की मौसी क्यों कहते हैं ?

बहुत से लोग बिल्ली को शेर की मौसी कहते हैं। इस कथन की सचाई के विषय में तो कुछ कहा नहीं जा सकता लेकिन इतना निश्चित है कि बिल्ली और शेर की शक्ल एक-दूसरे से काफी मिलती-जुलती है। जीव विज्ञान के अनुसार शेर, चीता, बाघ, तेंदुआ (Panther), जैगुआर (Jaguar), जंगली बिल्ली, पूमा (Puma) आदि सभी जानवर बिल्ली परिवार के ही सदस्य हैं। बिल्ली जाति के जानवरों को फेलाइन (Feline) कहते हैं। इनकी शारीरिक बनावट एक दूसरे से काफी मिलती है। शायद इसीलिए लोग बिल्ली को शेर की मौसी कहते हैं।

बिल्ली की जाति के ये जानवर संसार के लगभग सभी देशों में पाए जाते हैं। इन सभी के दांत बड़े तीखे होते हैं जो चाकू की तरह इनके शिकार के शरीर में घुस जाते हैं। इनके पंजे गद्देदार होते हैं जिससे इनके जमीन पर चलने में कोई आवाज नहीं होती। लगभग सभी जानवरों के शरीर चितकबरे होते हैं।

शेर बिल्ली परिवार का एक मुख्य सदस्य है। इसकी ऊंचाई एक मीटर तक होती है। इसकी लम्बाई लगभग 2 मीटर तक होती है। यह अधिकतर अफ्रीका और भारत के जंगलों में मिलता है। शेरनी एक बार में दो से चार तक बच्चे देती है। जब ये बड़े होते हैं तो इनके शरीर पर धब्बे बन जाते हैं। शेर के छोटे बच्चों को पकड़ कर पालतू बनाया जा सकता है।

बाघ (Tiger) की ऊंचाई भी लगभग 1 मीटर और लम्बाई 2 मीटर तक होती है। यह बिल्ली परिवार का सबसे बड़ा सदस्य है और अधिकतर एशिया के देशों में पाया जाता है। यह अपना शिकार रात में करता है। इसके शरीर पर काली-काली लकीरें होती हैं। टाइगर आदमी को भी खा जाता है।

तेंदुए की ऊंचाई लगभग 60 से. मी. और लम्बाई 1½ मीटर तक होती है। यह जानवर अफ्रीका और एशिया में पाया जाता है। यह बहुत ही मजबूत जानवर है। यह अपने बराबर तक के जानवरों को मार डालता है। यदि इसे छेड़ दिया जाए तो यह बहुत खतरनाक हो जाता है।

इनके अतिरिक्त जैगुआर, चीता, जंगली बिल्ली और घरेलू बिल्ली सभी एक ही परिवार के सदस्य हैं। चीता इस परिवार का एक ऐसा जानवर है जो सबसे तेज दौड़ता है। इसकी गति 110 कि०मी० प्रति घंटे तक पहुंच जाती है।



जुगनू रात में कैसे चमकते हैं?

रात के अंधेरे में चमकते हुए जुगनुओं के प्रकाश को देखकर कर हर कोई आश्चर्य में पड़ जाता है। बच्चे इन्हें देखकर बहुत खुश होते हैं। वे इन्हें पकड़कर बोतलों में बन्द कर लेते हैं या हाथ में पकड़कर उनका रुक-रुक कर चमकना देखते रहते हैं। वैज्ञानिक शुरू से ही यह जानने की कोशिश करते रहे हैं कि जुगनू के शरीर से प्रकाश कैसे और क्यों निकलता है?

जुगनू एक प्रकार का उड़ने वाला कीड़ा है। इनमें नर और मादा दोनों के ही पर (Wings) होते हैं। इनका शरीर मुलायम होता है। ये आमतौर पर फूलों का रस (Nectar) चूसकर जिन्दा रहते हैं। इनका शरीर कालापन लिए होता है। ये उष्ण प्रदेशों में अधिक संख्या में मिलते हैं। इनमें नर और मादा दोनों के शरीर से ही प्रकाश निकलता है। इनके शरीर से प्रकाश रुक-रुक कर (Flashes of light) निकलता है। इनके पेट के नीचे पीछे की ओर प्रकाश पैदा करने वाले अंग होते हैं जिनका नियंत्रण नाड़ियों द्वारा होता है। इन अंगों में ल्यूसीफ़ेरिन (Luciferin) और ल्यूसीफ़ेरेस (Luciferase) नामक दो पदार्थ होते हैं। ल्यूसीफेरिन आक्सीजन से संयोग करता है तो प्रकाश निकलता है। ल्यूसीफेरेस इस संयोग की क्रिया में मदद करता है अर्थात् यह पदार्थ उत्प्रेरक (Catalyst) का काम करता है। जुगनू से प्रकाश निकलने की क्रिया में ऊष्मा (Heat) पैदा नहीं होती। इस प्रकार से प्रकाश पैदा होने की क्रिया को बायोल्यूमिनिसेन्स (Bio-Luminescence) कहते हैं।

जुगनू के शरीर से निकलने वाले प्रकाश का रंग पीला या नारंगी हाता है। इसी प्रकार का प्रकाश आज के वैज्ञानिक अपनी प्रयोगशाला में पैदा कर सकते हैं। उन्हें इस प्रकाश को पैदा करने के लिए जुगनू से ये पदार्थ प्राप्त करने होते हैं।

अब प्रश्न उठता है कि जुगनू प्रकाश क्यों पैदा करता है? इसके दो कारण हो सकते हैं। पहला कारण तो यह है कि नर और मादा जुगनू एक दूसरे को आकर्षित करने के लिए प्रकाश पैदा करते हैं। दूसरा कारण यह हो सकता है कि इसके प्रकाश को देखकर दूसरे पक्षी इस पर डर के कारण हमला नहीं कर पाते। प्रकाश पैदा करने का कारण चाहे कुछ भी हो लेकिन ये प्राणी रात को बरबस ही हमारा मन मोह लेते हैं।



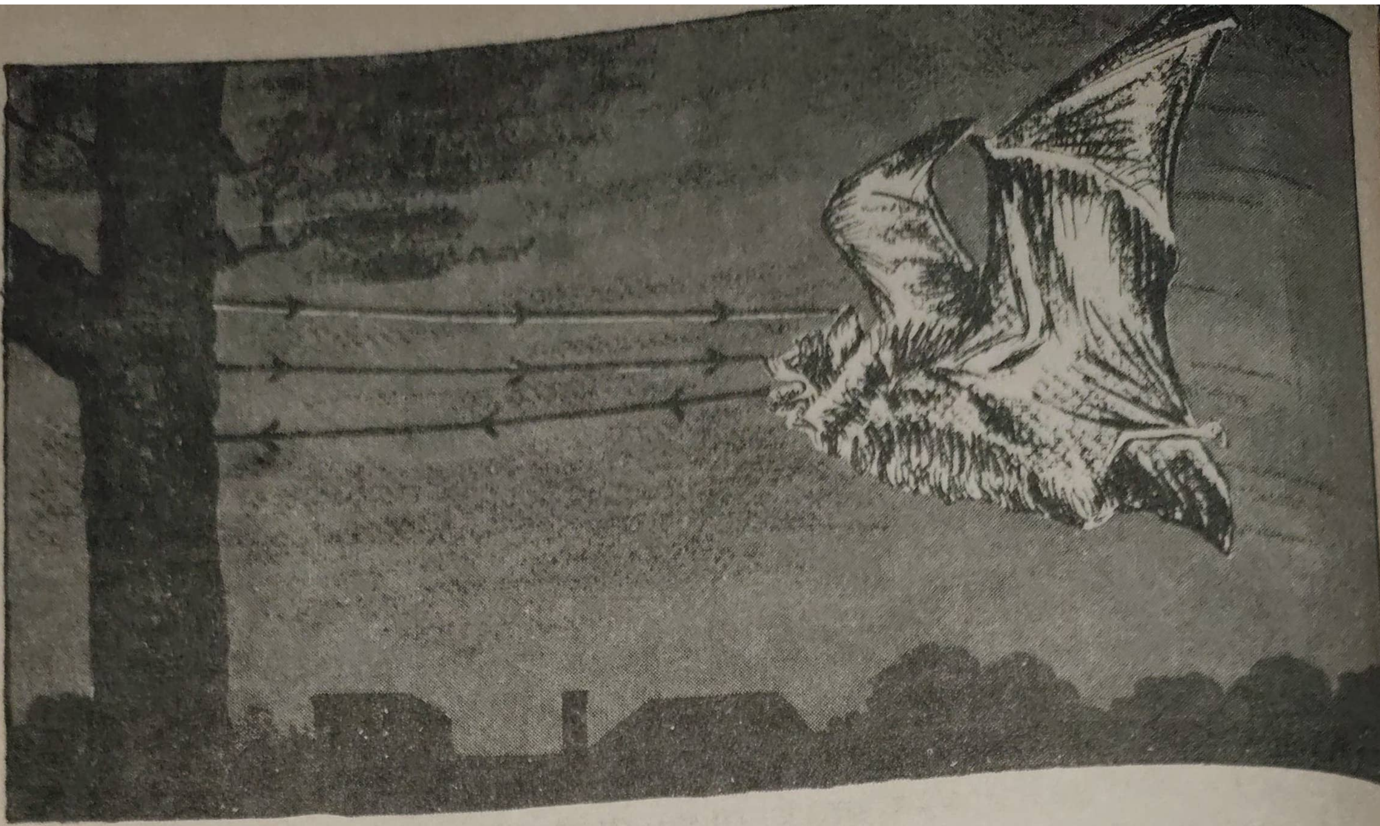
गिरगिट रंग कैसे बदलता है ?

गिरगिट एक ऐसा जंतु है जो अपनी खाल का रंग बदलता रहता है। आम लोगों का विचार है कि यह जंतु अपने रंग को वातावरण के अनुसार बदल लेता है, लेकिन वास्तविकता यह नहीं है। इसकी त्वचा का रंग बदलने का वातावरण से कोई सम्बन्ध नहीं है। क्या तुम जानते हो कि गिरगिट अपनी त्वचा का रंग किस प्रकार बदलता है?

गिरगिट की त्वचा की ऊपरी परत पारदर्शक (Transparent) होती है। इस परत के नीचे की कोशिकाओं में पीले, काले और लाल रंग के पदार्थ (Pigments) होते हैं। इन पदार्थों की रचना दानेदार होती है। ये दाने इसके शरीर में एक स्थान से दूसरे स्थान तक जा सकते हैं। जब गिरगिट की कोशिकाएं सिकुड़ती हैं तो इन दानों की संख्या एक स्थान पर बढ़ जाती है जिससे इसकी त्वचा का रंग काला हो जाता है। जब ये दाने शरीर में तितर-बितर हो जाते हैं तब दूसरे रंग पैदा होते हैं। अतः इन कोशिकाओं के सिकुड़ने और फैलने से इसकी त्वचा के रंग बदलते हैं। अब प्रश्न उठता है कि ये कोशिकाएं किस प्रकार सिकुड़ती या फैलती हैं?

जब गिरगिट को गुस्सा आता है या यह डर जाता है तो इसका तन्तु संस्थान (Nervous System) इन कोशिकाओं को एक संदेश भेजता है। गुस्से के कारण इसका रंग काला हो जाता है। उत्तेजना और भय से त्वचा पर पीले धब्बे दिखाई देने लगते हैं। सूर्य के प्रकाश से भी गिरगिट का रंग बदलता है। सूर्य की गरम रोशनी में इसकी कोशिकाओं का रंग काला हो जाता है। लेकिन अंधेरे में गर्मी के कारण इसका रंग हरा हो जाता है। कम तापमान और अंधेरे में इसकी त्वचा का रंग हल्का पीला हो जाता है। अतः आवेग, प्रकाश और तापमान के कारण ये कोशिकाएं सिकुड़ती और फैलती हैं, जिससे गिरगिट की त्वचा के रंग बदलते रहते हैं।

त्वचा का रंग बदलने से गिरगिट को कई लाभ हैं। त्वचा के रंग बदलने से यह सांप या दूसरे पक्षियों को दिखाई नहीं देता और शत्रुओं से अपना बचाव कर लेता है। गिरगिट एक धीमी गति से चलने वाला जन्तु है, इसलिए इसे इस प्रकार की सुरक्षा की आवश्यकता होती है।



चमगादड़ को रात में कैसे दिखाई देता है?

चमगादड़ अंधेरे का जन्तु है। यह रात में उड़ता है और दिन में सोता है। रात के घोर अंधकार में भी घने से घने जंगल के बीच बिना किसी पेड़ की टहनी और पत्ती से टकराये यह बड़ी तेजी से उड़ सकता है। यह क्षमता किसी दूसरे जानवर में नहीं मिलती। अपने इस असाधारण गुण के कारण यह वैज्ञानिकों के अध्ययन का एक अच्छा विषय रहा है। चमगादड़ पर कुछ प्रयोग किए गए हैं। एक कमरे की छत से बहुत सारी रस्सियां लटका दी गईं। कई चमगादड़ों की आंखों को गोंद से चिपका कर उस कमरे में छोड़ दिया गया। यह देखा गया कि चमगादड़ किसी भी रस्सी से बिना टकराये बड़ी तेज़ी के साथ कमरे में उड़ते रहे। इस प्रयोग से यह सिद्ध हो गया कि चमगादड़ों को उड़ने के दौरान आंखों की मदद नहीं लेनी पड़ती। इसके पश्चात् चमगादड़ों के मुंह और कान बंद करके फिर उसी कमरे में छोड़ा गया। इस बार उन्हें उड़ने में परेशानी हुई। बार-बार ये रस्सी या कमरे की दीवारों से टकरा जाते थे। इस प्रयोग के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला गया कि उड़ान के समय चमगादड़ कान और मुंह की सहायता लेते हैं। क्या तुम जानते हो ऐसा क्यों होता है?

उड़ते समय चमगादड़ अपने मुंह से उच्च आवृत्ति (High frequency) की ध्वनि तरंगें पैदा करते हैं। इन विशेष ध्वनि तरंगों को पराश्रव्य तरंगें (Ultrasonic waves) कहते हैं। इनकी आवृत्ति एक लाख हर्ट्ज़ (Hertz) के लगभग होती है। हर्ट्ज़ आवृत्ति की इकाई है। यदि कोई वस्तु एक सेकिन्ड में एक कम्पन करती है तो उसकी आवृत्ति एक हर्ट्ज कही जाती है। इस आवृत्ति की तरंगें लगभग सीधी रेखाओं में चलती हैं। ये तरंगें वस्तुओं से परावर्तित होकर चमगादड़ के कानों पर आती हैं जिनके लिये इसके कान संवेदनशील होते हैं। इन्हीं तरंगों की सहायता से चमगादड़ यह पता लगा लेता है कि अमुक वस्तु कहां स्थित है तथा उड़ते समय यह अपने को वस्तुओं से टकराने से बचा लेता है। इस आवृत्ति की तरंगों के लिये हमारे कान संवेदनशील नहीं होते। हम केवल 20 से 20,000 हर्ट्ज़ तक की आवृत्तियों को सुन सकते हैं। जहां तक इसकी आंखों का सम्बन्ध है यह उनका प्रयोग कीड़े-मकोड़ों और अपने भोजन को देखने में करता है।



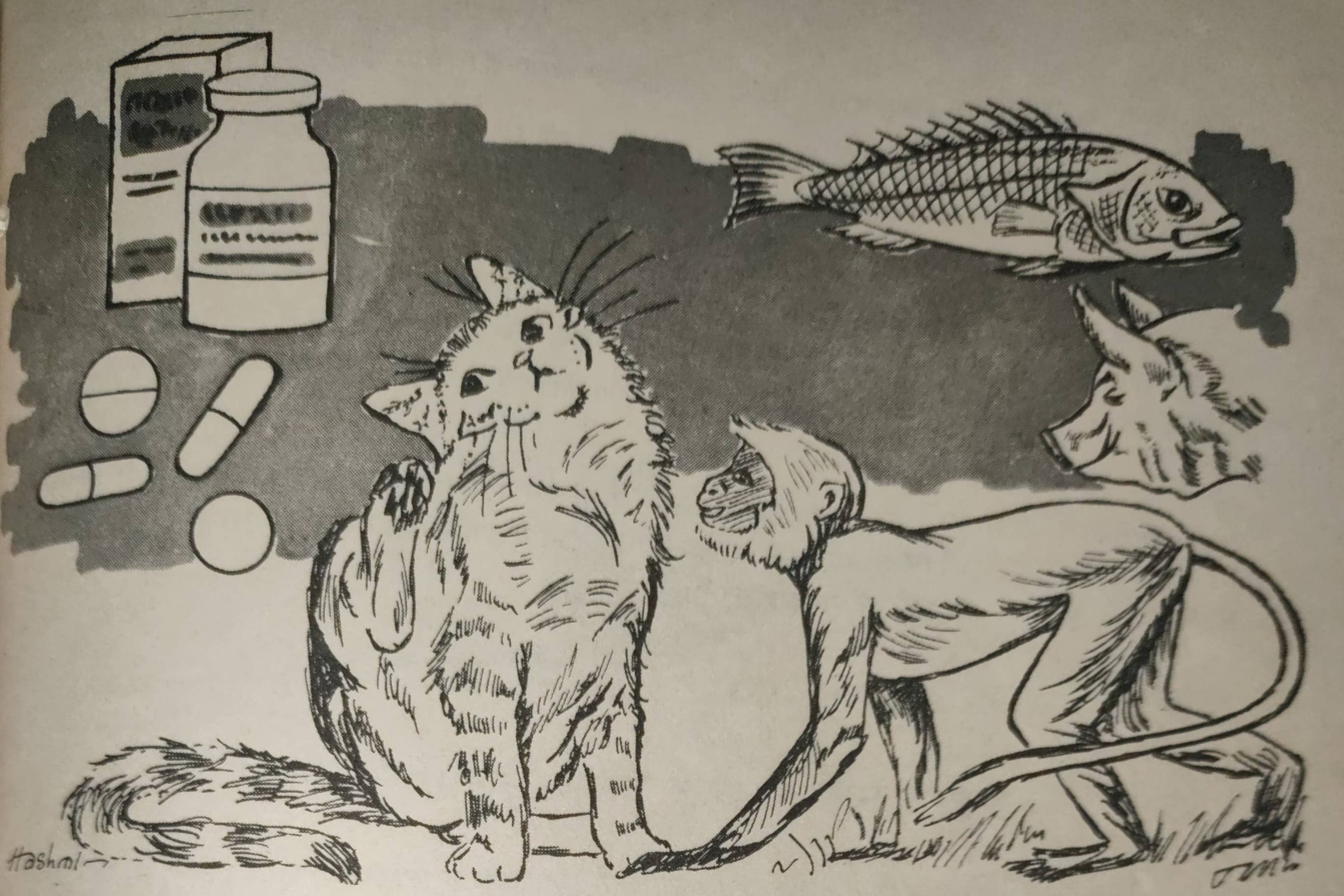
क्या मेंढक भी घोंसला बनाते हैं?

पक्षियों को अपने घोंसले बनाते हुए तो हम सभी ने देखा है, लेकिन मेंढकों द्वारा घोंसला बनाने की बात बड़ी विचित्र लगती है। आमतौर पर मेंढक और टोड (Toad) दोनों ही पानी में रहते हैं। ये जमीन पर भी रह सकते हैं, लेकिन मेंढकों और टोडों की कुछ ऐसी जातियां भी हैं जो अपने रहने के लिए घोंसले बनाती हैं। ये जातियां अपने जीवन का काफी समय पेड़ों पर घोंसले बनाकर बिताती हैं, साथ ही साथ जीवन के कुछ कार्य ये जल और थल दोनों में ही पूरे करती हैं। मेंढक और टोडों की ये जातियां सुरक्षित स्थानों पर पेड़ के पत्तों और तिनकों से घोंसले बनाती हैं। इन्हीं घोंसलों में ये अंडे देती हैं और वहीं पर इनके बच्चों का विकास होता है। क्या तुम जानते हो कि मेंढक और टोडों की कौन सी जातियां हैं जो पेड़ों पर घोंसले बनाकर रहती हैं?

हाइलाफेबर (Hylafaber) नाम का मेंढक पेड़ पर घोंसला बनाकर रहता है। प्रजनन काल में मादा मेंढक अपने घोंसले को छोड़कर तालाब में आ जाती है और वहां पर मिट्टी का एक छोटा सा घर बनाती है। इसका व्यास लगभग 30 सेंटीमीटर होता है और इसका ऊपरी किनारा पानी की सतह से ऊंचा उठा रहता है। मादा मेंढक इसी में अपने अंडे देती है। इनमें से कुछ दिनों में बच्चे निकलकर बड़े हो जाते हैं। दक्षिण अमरीका में पाया जाने वाला लेप्टोडेक्टाइलिस (Leptodactylis) नाम का मेंढक अपना घोंसला किसी तालाब के किनारे गीली मिट्टी में एक बिल के रूप में बनाता है और इसी में अपने जीवन का बहुत बड़ा भाग बिताता है। इसी में मादा अंडे देती है, जिनसे कुछ समय में टैडपोल (Tadpole) निकल आते हैं। वर्षा होने पर घोंसला पानी में डूब जाता है और बच्चे तालाब में विचरण करने लगते हैं।

अफ्रीका में पाई जाने वाली कायरोमेन्टिस (Kayromentis) मादा मेंढक पेड़ की किसी टहनी अथवा पत्ती से चिपककर एक झागदार पदार्थ पैदा करती है और इसी पदार्थ में अंडे देती है। अंडों से जब टैडपोल निकलते हैं तो वर्षा के पानी के साथ बहकर तालाब में गिर जाते हैं। जापान में पायी जाने वाली एक मादा मेंढक, जिसे रैकोफोरस (Rhacophorus) कहते हैं तालाब के ढालों पर अपने बिल बनाती हैं। इसी बिल में ये अंडे देती है, जिनसे बाद में बच्चे निकल आते हैं। दक्षिण अमरीका में फिलोमेड्यूसा (Phyllomeduca) नाम का मेंढक तालाब के किनारे के वृक्षों पर रहता है। शत्रुओं से बचने के लिए यह अपने अंडे पेड़ की पत्तियों से चिपका देता है। अंडों से निकले टैडपोल तालाब के पानी में गिर जाते हैं।

इनके अलावा मेंढक की और भी जातियां हैं जो पेड़-पौधों पर घोंसले बनाकर रहती हैं।



जानवरों से हमें कौन-कौन सी दवायें प्राप्त होती हैं ?

अब तक वैज्ञानिक लोग 8000000 से भी अधिक किस्म के जानवरों का अध्ययन कर चुके हैं। इन जानवरों से हमें मांस, अंडे, दूध, चमड़ा आदि अनेकों उपयोगी पदार्थ तो प्राप्त होते ही हैं, इनके साथ-साथ बहुत सी दवाएं भी प्राप्त होती हैं जो अनेकों रोगों के इलाज में काम आती हैं। क्या तुम जानते हो कि जानवरों से प्राप्त होने वाली औषधियां कौन सी हैं?

अधिकतर हारमोन औषधियां हमें जन्तुओं से ही मिलती हैं। एपिनफेरिन (Epinepherin) नाम की औषधि जो दिल के रोगों में काम आती है बिल्ली और सुअर की एड्रेनल ग्रन्थियों (Adrenal glands) से बनायी जाती है। इसे एड्रेनलिन (Adrenalin) भी कहते हैं। इस दवा का आविष्कार सन् 1904 में हुआ था। इसका प्रयोग दमे के मरीज़ों के लिए भी किया जाता है।

थाइरोक्सिन (Thyroxine) नाम की औषधि बिल्ली की थाइरोइड (Thyroid) ग्रन्थि से निकाली जाती है। इसे गले की थाइरोइड ग्रन्थि के रोगों के इलाज के लिए प्रयोग में लाया जाता है। मधुमेह (Diabetes) नामक रोग के इलाज के लिए बिल्ली और सुअर की पैंक्रियाज (Pancreas) ग्रन्थियों से इन्सुलिन (Insulin) नामक औषधि तैयार की जाती है। बहुत से जानवरों से सेक्स हारमोन प्राप्त करके इन्हें पुरुष और स्त्रियों के सैक्स सम्बन्धी रोगों के इलाज के काम में लाया जाता है।

बहुत से रोगों के टीके भी जानवरों से प्राप्त किए जाते हैं। उदाहरण के लिए पोलियो रोग का टीका बन्दर के

गुर्दे से पोलियो के वायरस लेकर और उन्हें मारकर बनाया जाता है।

इन औषधियों के अतिरिक्त चिकित्सा विज्ञान में जानवरों के और भी बहुत से उपयोग हैं। किसी भी नई दवा का परीक्षण सबसे पहले जानवरों पर ही किया जाता है। जब रोग नियंत्रण जानवर पर सफल हो जाता है तभी वह दवा मनुष्यों को दिए जाने की सलाह दी जाती है।

जीव विज्ञान के विद्यार्थियों को शरीर के विभिन्न भागों के विषय में ज्ञान भी जन्तुओं की चीरफाड़ द्वारा ही कराया जाता है। अनेकों वायरस और बैक्टीरिया की रोकथाम में ये जीवित प्राणी हमें बहुत-सा ज्ञान देते हैं। रैबीज, चेचक, मलेरिया, टाइफाइड, डिप्थीरिया आदि रोगों का नियंत्रण जन्तुविज्ञान के द्वारा ही सफल हो पाया है।

दवाओं के अतिरिक्त रेशम, लाख, सरेस, शहद, मोती जैसे पदार्थ भी हमें जीवित प्राणियों से ही प्राप्त होते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि मानव स्वास्थ्य के लिए जन्तुओं से हमें केवल दवाएं ही प्राप्त नहीं होतीं बल्कि मानव शरीर का ज्ञान भी इन्हीं से प्राप्त होता है।



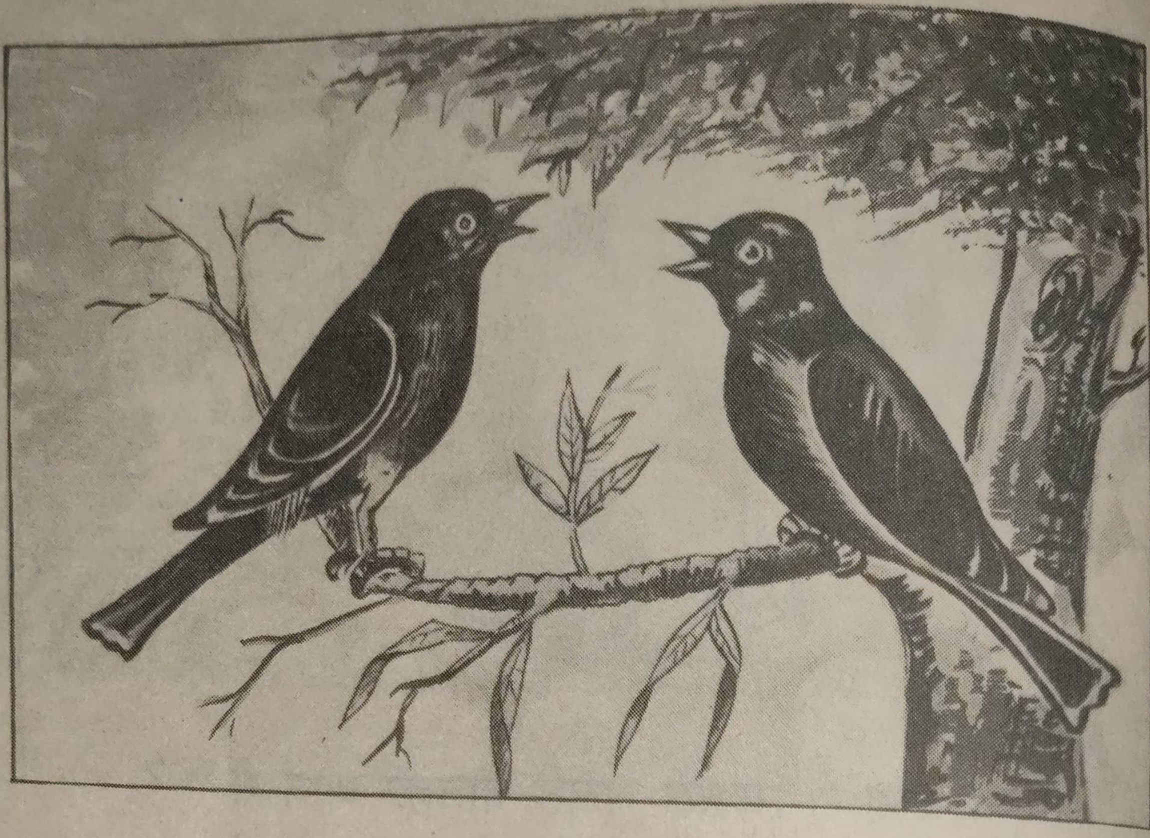
मनुष्य से मिलते-जुलते जानवर कौन से हैं?

मनुष्य से मिलते-जुलते जानवरों में मुख्य रूप से गोरिल्ला (Gorilla), चिम्पान्जी (Chimpanzee) और ओरंगउटान (Orang-utan) आते हैं। ये एक प्रकार के बिना पूंछ वाले बन्दर हैं जो मनुष्य से काफी मिलते-जुलते हैं। ये जानवर एन्थ्रोपोइड (Anthropoid) वर्ग में आते हैं। ये अफ्रीका और एशिया के घने जंगलों में पाए जाते हैं।

इन जानवरों में चिम्पान्जी आदमी से बहुत अधिक मिलता-जुलता है। इन सभी जानवरों की हड्डियों का ढांचा मनुष्य जैसा ही होता है। इनके दांतों की संख्या और बनावट हमारे जैसी ही है। इनके माथे पर भी मनुष्य की तरह झुर्रियां पड़ती हैं। इनकी खोपड़ी भी हमसे काफी मिलती-जुलती है। फर्क इतना है कि ये जानवर हमारी तरह बोल नहीं सकते। यहां तक कि इनका खून भी हमारे जैसा ही है।

गोरिल्ला की लम्बाई मनुष्य के बराबर होती है, लेकिन यह मनुष्य से भारी और अधिक शक्तिशाली होता है। गोरिल्ला 20 से 30 के समूहों में रहते हैं। इनके बच्चे जब तक बड़े होते हैं मां-बाप के पास ही रहते हैं। छोटे बच्चे पेड़ों पर सोते हैं और बड़े गोरिल्ला जमीन पर। गोरिल्ला को गुस्सा कम आता है लेकिन छेड़ने या घायल होने पर यह अपनी छाती पीटने लगता है। मुंह से ढोल बजने जैसी आवाज निकालता है। इसकी त्वचा काली होती है। इन की संख्या अब काफी कम हो गई है। जहां पर भी ये मिलते हैं वहां इन्हें सुरक्षित रखने के सभी उपाय किए जाते हैं। इनके बच्चे कीड़े-मकोड़े, चिड़ियों के अंडे, पेड़ों की पत्तियां और कलियां खाते हैं लेकिन बड़े हो जाने पर ये शुद्ध शाकाहारी हो जाते हैं।

चिम्पान्जी इन तीनों प्रकार के जानवरों में सबसे अधिक काबिल होता है। यह आदमी की बहुत सी बातों की नकल कर लेता है। इसके शरीर पर काले बाल होते हैं। इन्हें आसानी से पकड़ा जा सकता है। चिड़ियाघरों में इन जानवरों को आप देख सकते हैं। यह जानवर विचित्र आवाजें पैदा कर सकता है।



कोयल वसन्त ऋतु में ही क्यों गाती है?

वसंत ऋतु आते ही हमें कोयल की कुहू-कुहू की मधुर आवाज़ सुनाई देने लगती है। आमतौर पर लोगों का विश्वास है कि कुहू-कुहू की ध्वनि मादा कोयल पैदा करती है, लेकिन लोगों का यह विश्वास गलत है। वास्तव में यह आवाज नर कोयल पैदा करता है।

नर और मादा कोयल देखने में अलग-अलग लगते हैं। नर क़ोयल का रंग कौवे जैसा काला होता है जबकि मादा कोयल का रंग राख जैसा होता है। मादा के शरीर पर कुछ सफेद धब्बे भी होते हैं। मादा कोयल मीठी आवाज पैदा नहीं कर सकती।

वसंत ऋतु नर और मादा कोयलों के मिलने (Mating) का मौसम है। इस मौसम में नर कोयल कुहू-कुहू की आवाज पैदा करके मादा कोयल को आकर्षित करता है। जैसे ही उनके मिलने का मौसम समाप्त हो जाता है वैसे ही उनका गाना भी समाप्त हो जाता है। यही कारण है कि कोयल के मधुर स्वर केवल वसंत ऋतु में ही सुनाई देते हैं

मादा कोयल अपने अंडे स्वयं नहीं सेती (Hatch) वह अपने अंडे कौवे के घोंसले में देती है और कौवा ही इसके अंडों को सेता है। कौवे चूंकि हमारी बस्तियों के आस-पास ही रहते हैं इसलिए कोयल अपने अंडे देने के लिए गर्मियों में यहां आ जाती है। जैसे ही उसका मिलने और अंडे देने का काम समाप्त होता है वह घने जंगलों की ओर उड़ जाती है। आमतौर पर ये पक्षी अधिक पत्तों वाले बड़े-बड़े वृक्षों पर रहना पसंद करते हैं ताकि वे वहां अपने को दुश्मनों से छिपा सकें।

तोता और मैना आदमी की आवाज में कैसे बोल लेते हैं ?



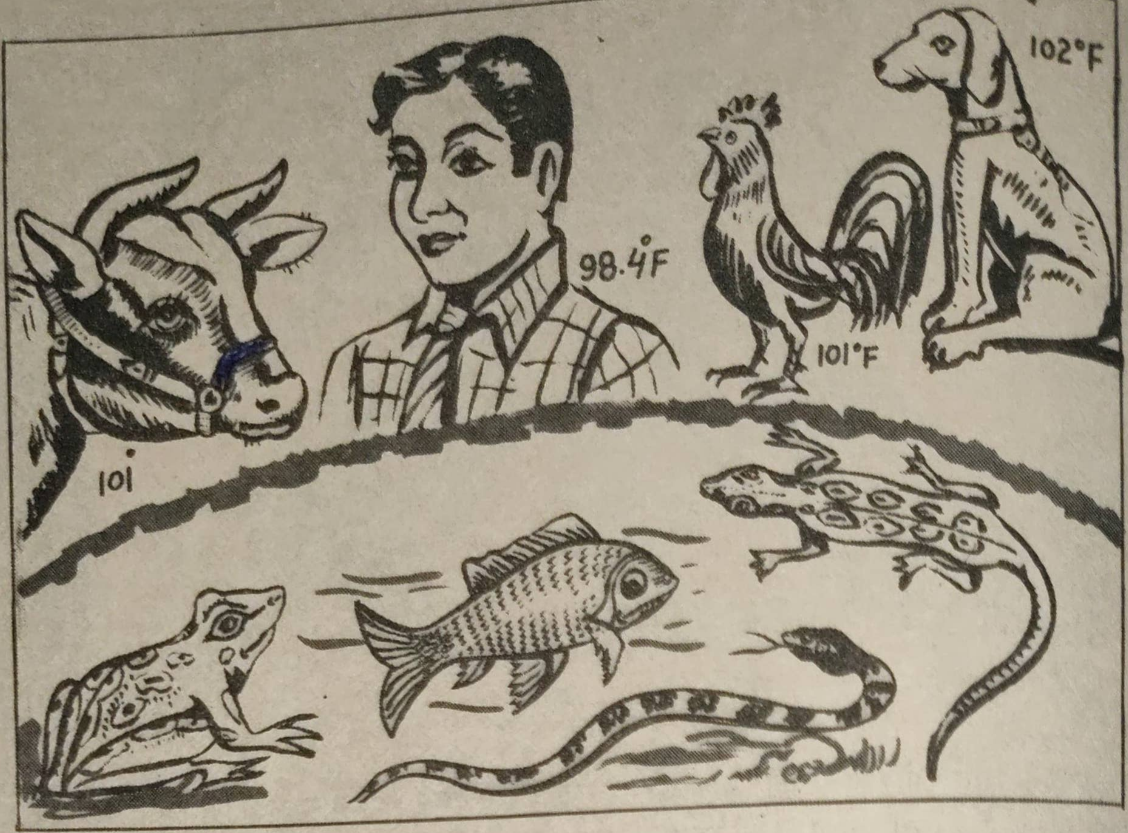
सदियों से आदमी तोता और मैना को प्यार करता रहा है। ये दोनों ही ऐसे पक्षी हैं जो आदमियों की आवाज़ की नकल कर लेते हैं। तोते व मैना की बहुत सी ऐसी किस्में हैं जो ठीक प्रकार से सिखाने पर बहुत से शब्द और छोटे-छोटे वाक्य मनुष्य की तरह स्पष्ट रूप से बोल लेते हैं। क्या तुम जानते हो कि ये पक्षी आदमियों की आवाज में कैसे बोल लेते हैं?

कुछ लोगों का विचार है कि तोतों की जीभ लम्बी और मोटी होती है इसलिए वे हमारी आवाज़ की नकल कर लेते हैं, लेकिन वास्तविकता यह नहीं है। यदि ऐसा होता तो श्येन पक्षी (Hawk) और बाज (Eagle) में भी बोलने की क्षमता होनी चाहिए थी क्योंकि उनकी जीभ भी तोते से मिलती-जुलती होती है। मैना की जीभ लम्बी और मोटी नहीं होती, फिर भी वह हमारी आवाज़ की नकल कर लेती है।

वास्तविकता यह है कि तोते और मैना दूसरे पक्षियों की तुलना में अधिक समझदार होते हैं। मनुष्य द्वारा बोले गये शब्दों की ये नकल कर लेते हैं। इनके बोलने और सुनने की क्रियायें धीमी होती हैं। इनके मुंह से निकलने वाली आवाजें मनुष्य से काफी मिलती जुलती हैं। दिलचस्प बात तो यह है कि तोते व मैना जो बोलते हैं उसे वे स्वयम् नहीं समझ पाते हैं। मनुष्य को बोलता देखकर उसके होठों के हिलने से ये शब्दों का अनुमान लगा लेते हैं और उसी तरह की आवाज निकालने की खुद कोशिश करते हैं। लंदन में एक तोते को 1965 से 1971 तक सबसे अधिक बोलने पर इनाम दिया गया था।

अधिकतर तोते उष्ण प्रदेशों में पाये जाते हैं। तोते एशिया, अफ्रीका और दक्षिण अमरीका में काफी संख्या में पाए जाते हैं। आमतौर पर तोते शाकाहारी होते हैं। यदि तोते की भली-भांति देखभाल की जाए तो यह 50 वर्ष तक जिन्दा रह सकता है।

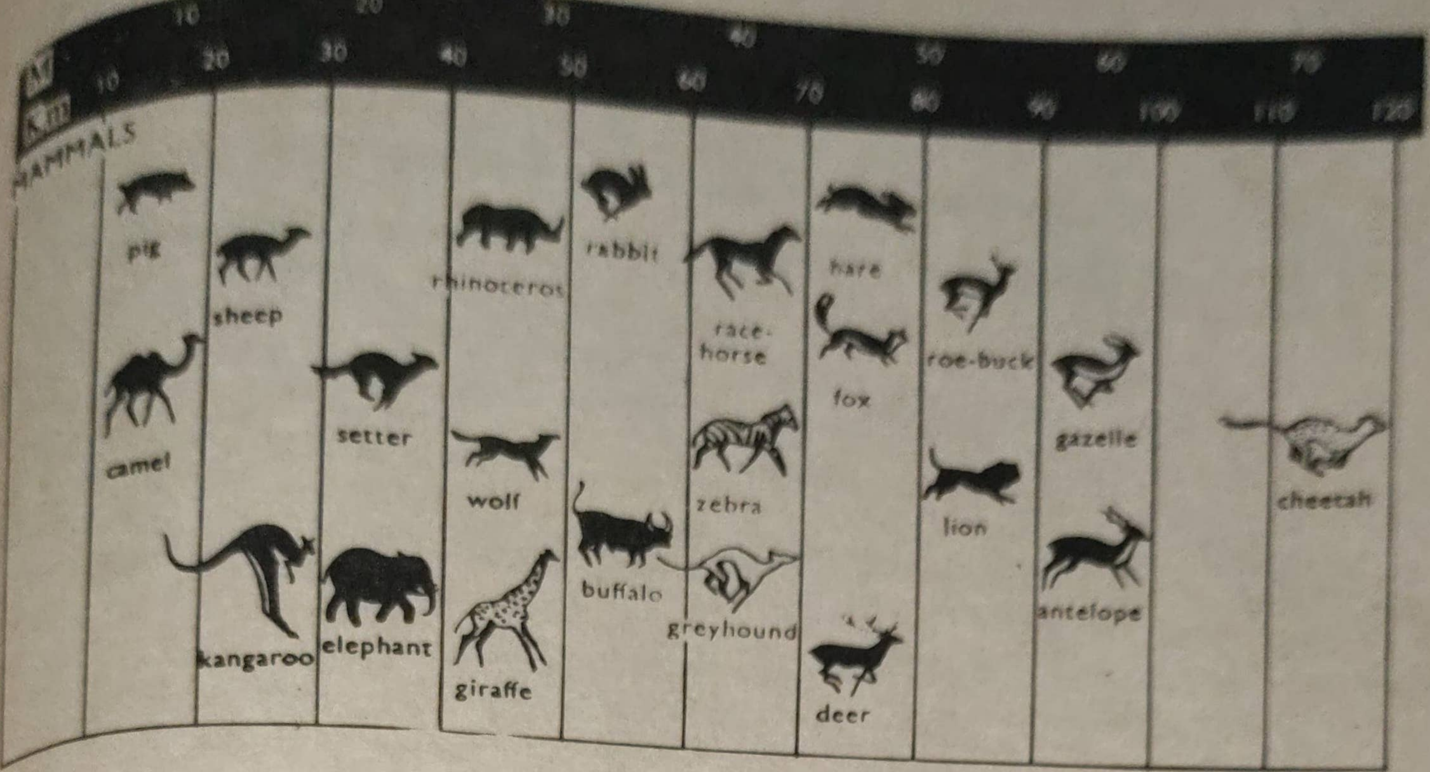
तोतों की बहुत सी किस्में होती हैं। अधिकतर तोते हरे रंग के होते हैं। इनकी चोंच काफी तीखी होती है। उड़ने के लिए इनके पंख होते हैं। इनकी लम्बाई 15 सेमी० से 90 सेमी० तक होती है। दक्षिणी अमरीका में मिलने वाला मैका (Macaw) नामक तोता 90 सेमी० लम्बा होता है। न्यूजीलैण्ड में मिलने वाला 'की' (Kea) नाम का तोता 50 सेमी० लम्बा होता है। सभी तरह के तोतों की मादा सफेद रंग के अंडे देती है। तोते एक वायरस द्वारा सिटाकेसिस (Psitacasis) नाम की बीमारी भी फैलाते हैं।



ठंडे और गर्म रक्त वाले प्राणी कौन-कौन से हैं ?

शरीर के तापमान के आधार पर प्राणियों को दो वर्गों में बांटा जाता है। ठंडे रक्त वाले (Cold blooded) और गर्म रक्त वाले। ठंडे रक्त वाले प्राणी वे हैं जिनके शरीर का तापमान स्थिर नहीं रहता। उनके शरीर का तापमान वातावरण के अनुसार बदलता रहता है। गर्मियों में उनका तापमान अधिक और सर्दियों में कम हो जाता है। यहां तक कि सुबह की ठंडक में उनके शरीर का तापमान कम होता है लेकिन दोपहर को कुछ अधिक हो जाता है। ठंडे रक्त वाले प्राणियों में मुख्य रूप से मेंढक, कछुआ, न्यूट, सांप, स्किक, शार्क, ट्राउट आदि आते हैं। इन सभी प्राणियों का तापमान सर्दियों में इतना कम हो जाता है कि जीवित रहने के लिए ये जमीन के अन्दर अपने बिलों में चले जाते हैं। यदि ये ऐसा न करें तो इनका रक्त जम जाए और ये मर जाएं। जाड़े के दिनों में ये जमीन के अन्दर सोते रहते हैं। इस अवस्था को शिशिर सुप्तावस्था (Hybernation) कहते हैं। इस अवधि में वे भोजन नहीं करते हैं। उनकी शारीरिक क्रियाएं भी मंद हो जाती हैं। इस अवस्था के बाद जब ये जमीन के ऊपर आते हैं तो काफी कमजोर हो जाते हैं।

गर्म रक्त वाले (Warm blooded) प्राणी वे हैं जिनके शरीर का तापमान स्थिर रहता है। उनके रक्त के तापमान पर वातावरण का प्रभाव नहीं पड़ता। मनुष्य, चमगादड़, कुत्ता, बिल्ली, मुर्गा, गाय, आदि इसी वर्ग में आते हैं। सर्दी हो या गर्मी, इनके शरीर का तापमान स्थिर ही रहता है। जैसे आदमी के शरीर का तापमान 98.4° F, चमगादड़ का 104° F, कुत्ते का 102° F, गाय का 101° F, बिल्ली का 101.6° F और मुर्गे का 101° F रहता है। शरीर के तापमान को स्थिर बनाए रखने के लिए इन्हें अधिक ऊर्जा की आवश्यकता होती है। यही कारण है कि गर्म रक्त वाले प्राणियों को अधिक भोजन की आवश्यकता होती है। पूरे वर्ष में इनके शरीर की सभी क्रियाएं सामान्यरूप से चलती रहती हैं। इनके शरीर में ऐसे अंग होते हैं जो तापमान का नियंत्रण करते रहते हैं और उसे एक विशेष स्थिति से अधिक या कम नहीं होने देते।



जानवर कितनी तेज दौड़ सकते हैं?

कुछ ही वर्ष पहले की बात है, अमरीका के राय चैपमैन एन्ड्रूज (Roy Chapman Andrews) नामक वैज्ञानिक एक यात्री दल के नेता बनकर भारत आये हुये थे। एक दिन वे अपनी जीप में बैठकर नेपाल की सीमा के पास से गुजर रहे थे कि उन्होंने एक चीता (Cheetah) देखा। उन्होंने अपनी जीप चीते के पीछे दौड़ा दी। चीता भी तेजी से भागने लगा। उन्होंने अपनी जीप की गति 80 किलोमीटर प्रति घंटे कर दी, लेकिन फिर भी उनकी जीप चीते से पीछे ही रही। 100 किलोमीटर प्रति घंटे की चाल से भी वे चीते को.पकड़ न पाए। आखिर चीता झाड़ियों में घुस कर लुप्त हो गया। इस तथ्य से आप अनुमान लगा सकते हैं कि चीते की गति 100 किलोमीटर प्रति घंटासे भी अधिक ही थी।

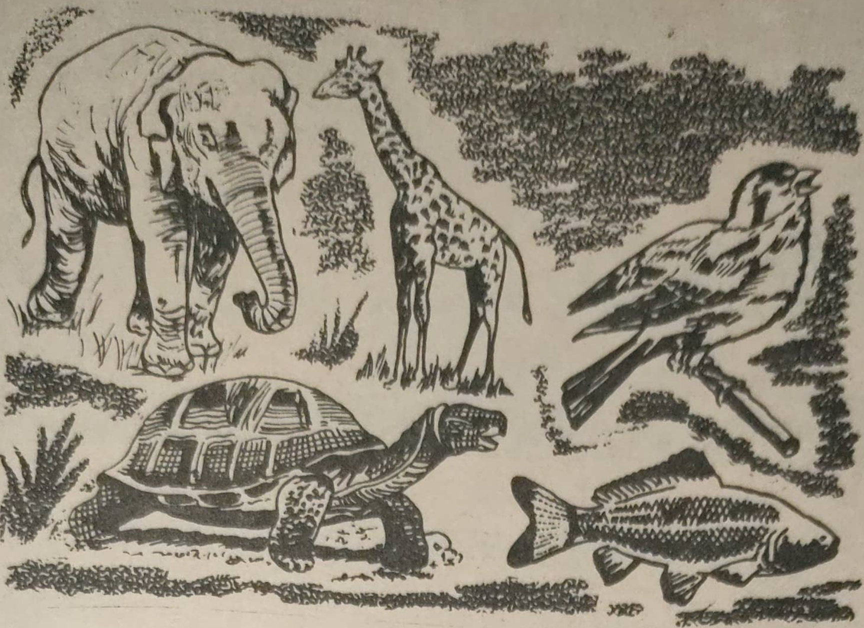
वास्तव में चार टांगों वाले जानवरों में चीता ही सबसे तेज़ दौड़ता है। इसकी गति 112 किलोमीटर (70 मील)प्रति घंटातक पहुंच जाती है। तेज़ दौड़ने में दूसरा स्थान ब्लैक बक (Black Buck) का आता है। यह एक प्रकार का (काला) हिरन होता है। तेज़ दौड़ने में तीसरा स्थान मंगोलिया के एक बारहसिंगे (Mongolian stag) और प्रोंगहार्न (Pronghorn) का है। प्रोंगहार्न भी एक प्रकार का मृग है। इनकी गति 95 किलोमीटर (60 मील) प्रति घंटा तक पहुंच जाती है। तेज़ दौड़ने में चौथा स्थान शेर (Lion) का है। यह 88 किलोमीटर (55 मील) प्रति घंटे के वेग से दौड़ सकता है।

हिरन (Deer), शशक (Hare) और लोमड़ी (Fox) लगभग 75 किलोमीटर (47 मील) प्रति घंटे के वेग

से दौड़ सकते हैं। घोड़ा, जेब्रा (Zebra) और ग्रे हाउन्ड (Grey-hound) 64 किलोमीटर (40 मील) प्रति घंटे के वेग से दौड़ सकते हैं। भैंस (Buffalo) और खरगोश 55 कि०मी० तथा जिराफ और भेड़िया 45 कि०मी० के वेग से दौड़ सकते हैं। हाथी 35 कि०मी०, कंगारू और भेड़ 25 कि०मी० तथा ऊंट और सुअर (Pig) 15 कि०मी० प्रति घंटे के वेग से दौड़ सकते हैं।

चार टांगों वाले जानवरों की गतियों के ये आंकड़े अनेक लोगों द्वारा किए गए परीक्षणों पर आधारित हैं।

इन गतियों से ये जानवर बहुत देर तक नहीं दौड़ सकते। अधिक से अधिक वे दो मील तक की दूरी ही इन वेगों से तय कर सकते हैं।



जानवर कितने दिन जिन्दा रह सकते हैं ?

जानवरों की लंबी उम्र के विषय में बहुत सी कहानियां प्रचलित हैं, लेकिन ये सभी तथ्यों को बढ़ा-चढ़ा कर ही प्रस्तुत करती हैं। प्रस्तुत लेख में, कुछ दीर्घजीवी जानवरों की उम्र के आंकड़े दिए गए हैं। ये आंकड़े इन जानवरों की औसत आयु नहीं बताते बल्कि उनकी अधिकतम आयु बताते हैं।

स्तनधारी जानवरों में हाथी की उम्र सबसे अधिक मानी जाती है। यद्यपि कहानियों में हाथी की उम्र 150 से 200 वर्ष तक बताई जाती है, लेकिन इसके लिए लिखित प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं। उपलब्ध प्रमाणों के अनुसार सबसे अधिक आयु तक जीने वाला हाथी 60 साल से अधिक उम्र में मरा। बहुत से घोड़े 50 साल से अधिक आयु तक जीवित रहे हैं। कुछ दूसरे स्तनधारी जानवरों की अधिकतम आयु के आंकड़े इस प्रकार हैं। दरयाई घोड़ा (Hippopotamus)—41 वर्ष, गैंडा (Rhinoceros)—40 वर्ष, भालू (Bear)—34 वर्ष, बन्दर (Monkey)—20 वर्ष, बिल्ली (Cat)—23 वर्ष, कुत्ता (Dog)—22 वर्ष। उम्र के ये आंकड़े कुछ विशेष जानवरों के हैं। इनसे उनकी औसत आयु का पता नहीं चलता।

पक्षियों में चील और तोते की उम्र सबसे अधिक मानी जाती है। कुछ तोतों के 54 वर्ष तक और चीलों के 55 वर्ष तक जीवित रहने के प्रमाण हैं। एक सफेद बत्तख (White Pelican) 51 वर्ष की उम्र तक जीवित रही। छोटी चिड़ियों में मैना (Starling) की उम्र 17 वर्ष, कैनरी (Canary) की उम्र 22 वर्ष, गौरैया (Sparrow) की उम्र 23 वर्ष और कार्डीनल (Cardinal) की उम्र 30 वर्ष तक पाई गई है।

कार्प (Carp) नाम की मछली को 25 वर्ष तक जिन्दा रहते हुए देखा गया है। कैटफिश (Cat fish) की उम्र 60 साल तक पाई गई है। अमरीकन ईल (American eel) की उम्र 50 वर्ष तक पाई गई है।

कछुआ एक ऐसा जानवर है, जिसकी उम्र सभी जानवरों से अधिक पाई गई है। मौरिशस (Mauritius) नामक कछुआ 152 वर्ष तक जिंदा रहा। कुछ वैज्ञानिकों का तो कहना है कि यह 200 साल तक जीवित रहा। कैरोलिना (Carolina) नामक कछुए के विषय में यह अनुमान किया जाता है कि यह 123 वर्ष तक जिंदा रहेगा। यह कछुआ अमरीका में है।



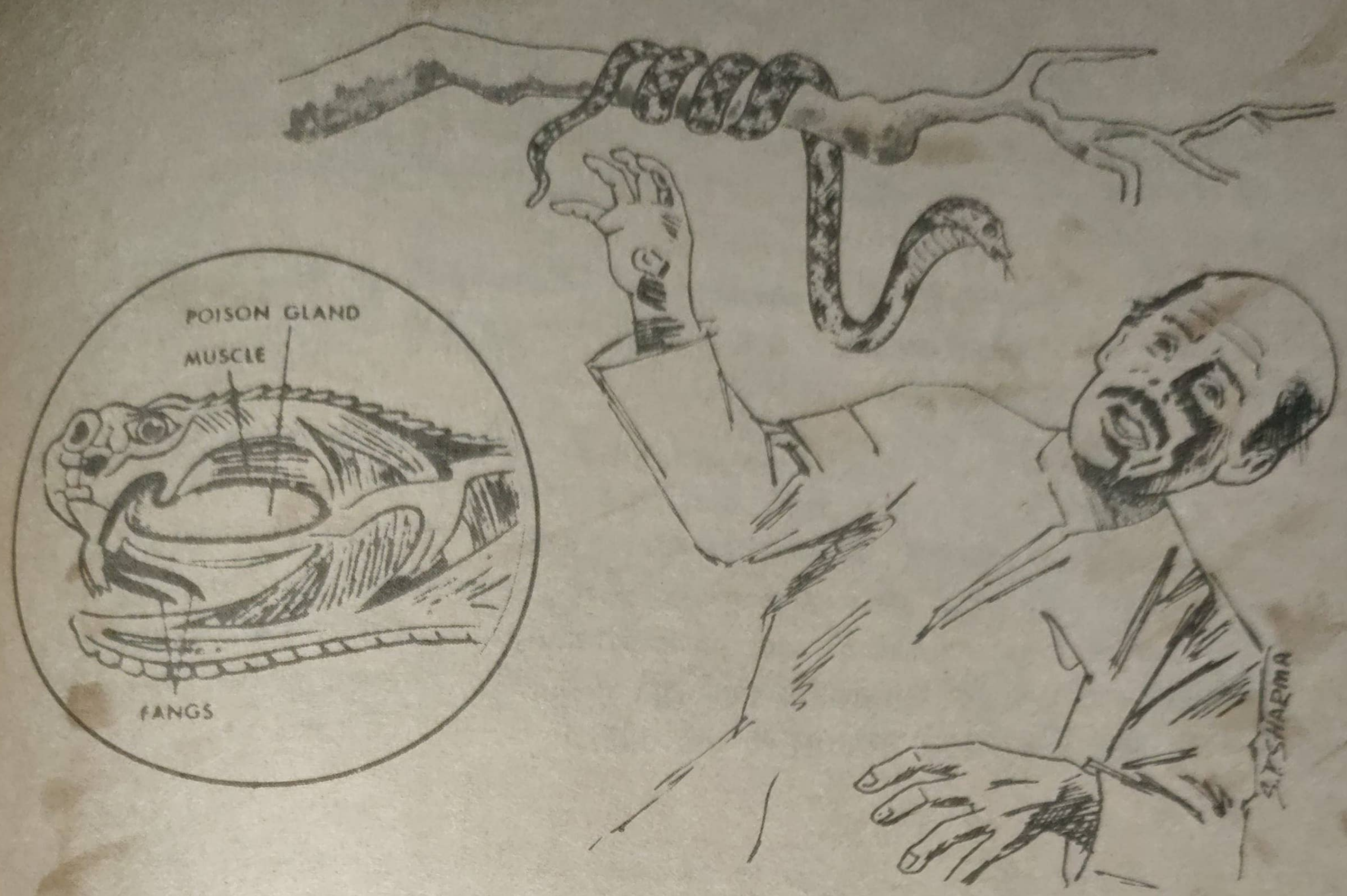
सर्दियों में मेंढक कहां चले जाते हैं ?

मेंढक एक ऐसा जन्तु है, जो जल तथा थल दोनों में समान रूप से रह सकता है। ये अकसर तालाबों, पानी से भरे गड्ढों, नालियों तथा नदियों के आसपास की नम घास में रहते हैं। जुलाई के महीने में जैसे ही वर्षा शुरू होती है, इनकी टर्र-टर्र की आवाज़ चारों ओर सुनाई देने लगती है। यह ऋतु मेंढकों के लिए सबसे अधिक अनुकूल और आनन्ददायक होती है। पहली वर्षा के पश्चात् चारों ओर मेंढक ही मेंढक दिखाई देने लगते हैं। जैसे-जैसे समय बीतता है और अक्टूबर का अंत आने को होता है, मेंढक गायब होने लगते हैं। अक्टूबर से लेकर फरवरी के अंत तक दिखाई नहीं देते। क्या तुम जानते हो कि जाड़े के मौसम में मेंढक कहां चले जाते हैं?

मेंढक ठण्डे रक्त वाले प्राणियों की श्रेणी में आते हैं। ये जल और थल दोनों में ही रह सकते हैं। इनको एम्फीबिआ (Amphibia) कहते हैं, जिसका अर्थ होता है दोहरा जीवन बिताने वाले जन्तु। मेंढक के शरीर का ताप एक सा नहीं रहता बल्कि वातावरण के साथ घटता-बढ़ता रहता है। जाड़े का मौसम शुरू होते ही जैसे वातावरण का ताप गिरने लगता है, मेंढक के शरीर का ताप भी कम होने लगता है। इससे इनकी जीवन क्रियाएं शिथिल होने लगती हैं। ये अपने को जीवित रखने के लिए तालाबों के नीचे गीली मिट्टी में सिर के बल धीरे-धीरे धंसना शुरू कर देते हैं। मिट्टी के अंदर यह 60 सेंटीमीटर की गहराई तक चले जाते है। सारे जाड़े के मौसम में ये इसी अवस्था में पड़े रहकर विश्राम करते रहते हैं। इस दशा को शिशिर सुप्तावस्था (Winter sleep or Hibernation) कहते हैं।

शिशिर सुप्तावस्था में मेंढक की जीवन-क्रियाएं मंद पड़ जाती हैं। इसके मुख नेत्र और नाक बन्द रहते हैं। इस समय यह नाक से सांस नहीं लेता, बल्कि सांस की क्रिया गीली त्वचा द्वारा होती है। इन दिनों मेंढक जीवित रहने के लिए अपने शरीर में जमा चर्बी तथा ग्लाइकोजन को प्रयोग में लाता है। इस अवस्था में मेंढक बहुत कमज़ोर हो जाता है, लेकिन मरने से बच जाता है। फरवरी के महीने के बाद वातावरण का तापमान बढ़ने लगता है, जो मेंढक के लिए अनुकूल होता है। यह शीत निद्रा से जाग उठता है और भूमि के अंदर से बाहर निकल आता है।

तीन महीने के बाद अर्थात् मई के महीने में वातावरण का तापमान बढ़ने लगता है, तालाब सूख जाते हैं और मेंढक को फिर अपनी रक्षा के लिए गीली मिट्टी में धंसना पड़ता है। इस अवस्था को ग्रीष्म निष्क्रियता (Summer Aestivation) कहते हैं। जुलाई मास में बारिश शुरू होते ही मेंढक की यह अवस्था भी खत्म हो जाती है।



सांप के काटने पर शरीर में जहर कैसे फैलता है?

विषैला सांप अपने विष को शत्रु तथा शिकार को मारने के काम लाता है। जब यह सांप किसी को काटता है तो छेदों वाले विषदन्तों द्वारा यह अपना विष अपने शिकार के शरीर में प्रविष्ट करा देता है। काटते वक्त विष की जितनी अधिक मात्रा शरीर में जाती है उतना ही अधिक विषैला प्रभाव शरीर पर होता है। सांप के जहर का हमारे शरीर पर तब तक प्रभाव नहीं होता जब तक कि यह जहर खून में न चला जाए। रक्त में मिलने के बाद ही यह विष हमारे शरीर पर प्रभाव डालता है। विष को रक्त में पहुंचने में काफी समय लगता है। कोबरा तथा करैत का विष मस्तिष्क तथा रीढ़ की हड्डी पर असर डालता है। जैसे ही सांप काटता है, काटने वाले स्थान पर जलन के साथ-साथ दर्द होता है। कटा हुआ स्थान सुन्न हो जाता है और उस जगह सूजन आ जाती है। (चित्र देखें) कभी-कभी काटे हुए स्थान से खून भी निकल आता है। आदमी को नींद सी आने लगती है। मांसपेशियों पर उसका नियंत्रण खत्म हो जाता है। थोड़ी ही देर में मुंह से झाग आने लगते हैं, सांस की गति धीमी पड़ जाती है तथा अंत में श्वसन क्रिया बन्द होने पर मृत्यु हो जाती है। सांप के काटने पर एक से बारह घंटे के बीच में आदमी की मृत्यु हो जाती है।

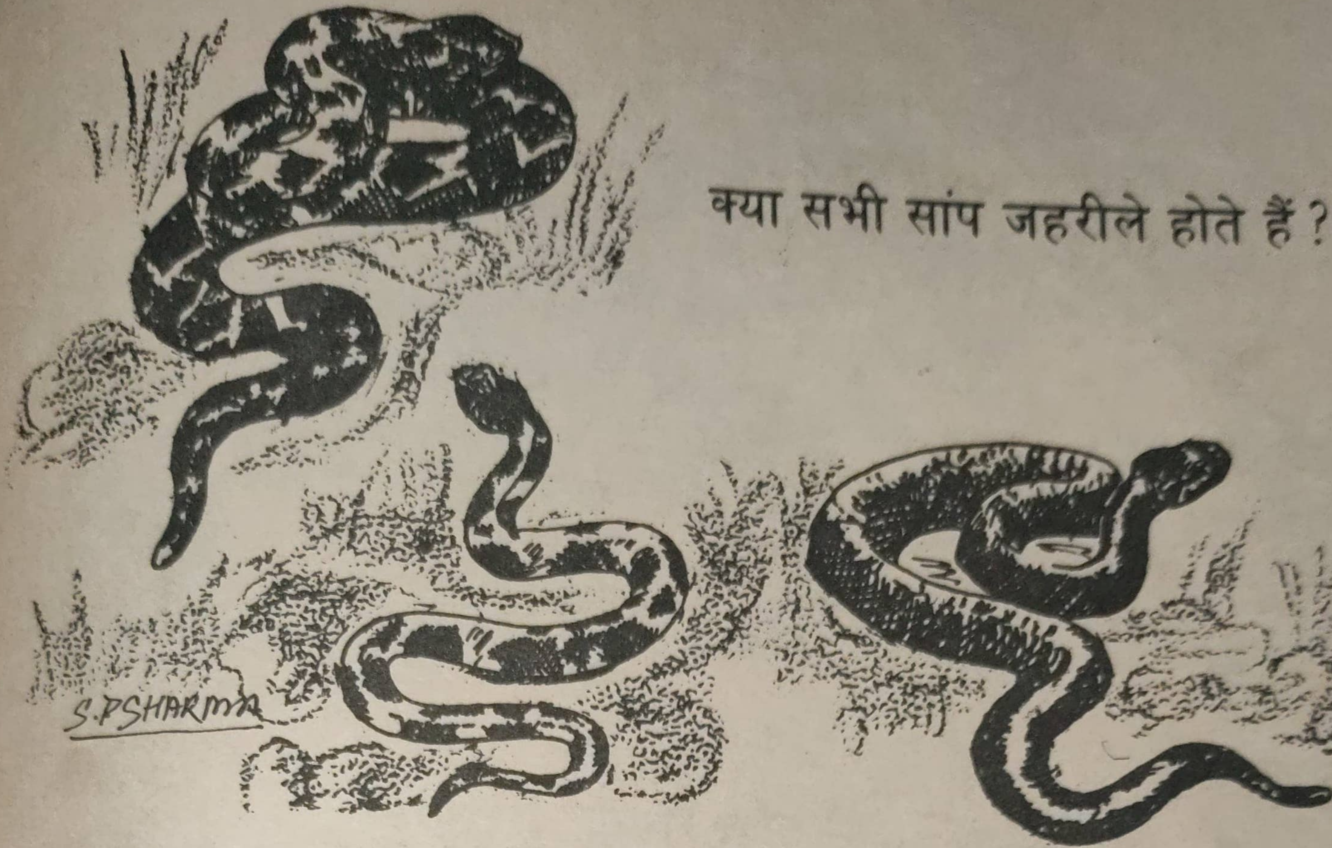
विषैले वाइपर द्वारा काटे जाने पर रक्त-प्रवाह और हृदय पर असर पड़ता है। काटे हुए स्थान पर बहुत अधिक सूजन आ जाती है। मरीज को बहुत अधिक दर्द होता है। सूजन चारों ओर फैलने लगती है। आदमी को पसीना बहुत आता है और उल्टियां भी होने लगती हैं। वाइपर के काटने पर कुछ ही घंटों में हृदय की गति रुक जाने से मृत्यु हो जाती है। कई बार वाइपर के काटने पर असर कई दिनों बाद भी होता है लेकिन यह असर भी बड़ा

घातक होता है जो आदमी की जान ले लेता है।

यदि किसी आदमी को किसी बिना जहर वाले सांप ने काट लिया है तो चिंता की कोई बात नहीं है और न ही किसी उपचार की आवश्यकता है। काटे हुए स्थान को साफ करके पोटाशियम परमैंगनेट का घोल लगा कर साफ कपड़े से बांध देना चाहिए।

यदि आदमी को किसी जहरीले सांप ने काट लिया है तो उसे फौरन ही अस्पताल ले जाना चाहिए। सांप के काटे के लिए आज ऐसी औषधियां उपलब्ध हैं जो रोगी की जान बचा सकती हैं। यदि अस्पताल दूर है तो रोगी को प्राथमिक उपचार के बाद अस्पताल ले जाना चाहिए।

प्राथमिक उपचार में दो काम करना अत्यन्त आवश्यक है। सबसे पहले शरीर के जिस स्थान पर सांप ने काटा है उसके ऊपर वाले भाग में पतले कपड़े का टुकड़ा कसकर बांध देना चाहिए। ऐसा करने से विष जल्दी ही शरीर में नहीं फैलता है। काटे हुए स्थान को तेज ब्लेड से थोड़ा सा काट देना चाहिए और उसके चारों ओर दबाकर खून निकालना चाहिए। यदि तुम्हारे मुंह में फोड़ा या जख्म हो तो काटे हुए स्थान से मुंह लगाकर खून चूस लो जिससे सांपकाटे व्यक्ति के शरीर में विष की मात्रा कम हो जाएगी। ऐसा करने से चूसने वाले पर विष का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है क्योंकि सांप का विष तब तक प्रभाव नहीं डालता जब तक यह खून में न मिल जाए। प्राथमिक उपचार के फौरन बाद ही मरीज को अस्पताल ले जाना चाहिए।



क्या सभी सांप जहरीले होते हैं?

मनुष्य शुरू से ही सांप से डरता आया है। इसकी बनावट और चलने का तरीका कुछ ऐसा विचित्र होता है, जिसे देखकर आदमी कांप जाता है। अधिकतर लोग इसी भय के कारण सांप के काटने पर मर जाते हैं।

अब तक सांपों की 2400 से अधिक किस्मों का अध्ययन किया जा चुका है। इन अध्ययनों से पता चला है कि केवल आठ प्रतिशत सांप ही जहरीले होते हैं अर्थात्, संसार में पायी जाने वाली सांपों की अनेक जातियों में से लगभग 200 जातियां ही जहरीली होती हैं। सांप जमीन, पानी, जमीन के नीचे और पेड़ों पर रहते हैं। ये संसार के सभी भागों में पाए जाते हैं। भारत में सांपों की लगभग 200 जातियां पायी जाती हैं जिनमें से केवल चार जातियां ही ऐसी हैं, जो वास्तव में जहरीली हैं। इनमें कोबरा (Cobra), करैत (Krait), सा स्केल वाइपर (Saw scale viper) और रसल वाइपर (Russell viper) जहरीली जातियां हैं।

सांपों में पाए जाने वाले जहर को वेनम (Venom) कहते हैं। अधिकतर सांपों में या तो वेनम की मात्रा कम होती है या कम जहरीली होती है। कुछ सांपों में वेनम इतना अधिक होता है, कि हाथी तक को मार सकता है। दूसरी किस्मों में वेनम इतना कम जहरीला होता है, कि केवल छिपकली जैसे प्राणियों को ही मार पाता है। अधिक जहरीले वेनम वाले सांप मनुष्य के लिए घातक होते हैं।

सांप के सिर के दोनों ओर और आंखों के थोड़ा नीचे विष-ग्रन्थियां (Poison glands) होती हैं। ऊपरी जबड़े के आगे वाले भाग पर दोनों ओर एक-एक विषदन्त (Fangs) होता है। विषदन्तों में छेद होते हैं। विष ग्रन्थियों से विष निकलकर एक नली द्वारा विषदन्त में आ जाता है। कोबरा और करैत के विषदन्तों में खांचा होता है। वाइपर के विषदन्त नलिकाकार होते हैं। अब प्रश्न उठता है कि विषैले सांपों की पहचान कैसे की जाए? कोबरा या नाग की पहचान आसानी से हो जाती हे। इसका सिर छत्र जैसा लगता है। अधिकतर नागों के छत्र पर वी (V) के आकार का चिन्ह होता है। करैत की पीठ पर सफेद लकीरें होती हैं। ये लकीरें पूंछ की ओर बहुत साफ तथा सिर की ओर फीकी होती हैं। वाइपर सांप मोटा भूरे लाल रंग का होता है। इसके शरीर पर हीरे के आकार के चिन्ह होते हैं।



क्या किसी जन्तु की जीभ उसके शरीर से भी लम्बी हो सकती है?

भारत में नीलगिरि के जंगलों में एक ऐसा गिरगिट पाया जाता है जिसकी जीभ उसके शरीर से भी लम्बी होती है। इसका शरीर लगभग 45 से०मी० लम्बा होता है परन्तु इसकी जीभ 1.25 मीटर लंबी होती है। इससे भी बड़ी जीभ वाले गिरगिट अफ्रीका और मैडागास्कर के जंगलों में पाए जाते हैं। इनका शरीर तो केवल 45 से०मी० लम्बा ही होता है किन्तु जीभ 2 मीटर तक लम्बी होती है।

इस गिरगिट की जीभ काफी पतली होती है। यह मुंह के अन्दर कुंडली की तरह लिपटी रहती है। इतनी लम्बी जीभ होने के कारण यह गिरगिट स्वयं पेड़ की शाखा पर बैठा हुआ दूसरी शाखा पर बैठे कीड़ों को अपनी जीभ से चिपकाकर अपने मुंह में ले आता है और उन्हें खा जाता है। इसकी जीभ से एक चिपचिपा पदार्थ निकलता रहता है। इसी चिपचिपे पदार्थ से कीड़े-मकोड़े चिपक जाते हैं।

यह गिरगिट बड़ा आलसी प्राणी है। पेड़ की एक ही डाल पर यह कई दिन तक बैठा रहता है। वहीं बैठा-बैठा अपनी जीभ को चारों तरफ फेंककर पेड़ की डालों से कीड़े-मकोड़ों को अपना शिकार बनाता रहता है।

इस जन्तु के सभी गुण दूसरे गिरगिटों से मिलते हैं। जिस प्रकार आम जीवन में दिखने वाले गिरगिट अपना रंग बदल लेते हैं ठीक उसी प्रकार यह भी अपना रंग बदल लेता है।



स्तनधारी जानवर कौन से हैं?

स्तनधारी प्राणी वे हैं जो बच्चे पैदा करते हैं और उन्हें स्तनों से दूध पिलाते हैं। इस वर्ग के सभी प्राणी फेफड़ों द्वारा सांस लेते हैं। इनका रक्त गर्म होता है और इनके शरीर पर बाल होते हैं। आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न दिखने वाले कुछ जानवर भी इसी वर्ग में आते हैं। जैसे गाय, सील (Seal) और चमगादड़ में कोई समानता नहीं है लेकिन तीनों ही स्तनधारी वर्ग के प्राणी हैं।

स्तनधारी समुदाय में कई जीव बहुत ही विचित्र हैं। इनमें बहुत से प्राणी जमीन पर रहते हैं। बहुत से पेड़ों पर या जमीन के नीचे रहते हैं। कुछ ऐसे भी हैं जो ताजे पानी और समुद्रों में रहते हैं। इस वर्ग के प्राणी दौड़ सकते हैं, कूद सकते हैं, उड़ सकते हैं, तैर सकते हैं और यहां तक कि लिख और पढ़ भी सकते हैं। कुछ स्तनधारी मांस खाते हैं तो दूसरे शुद्ध शाकाहारी हैं। कुछ ऐसे भी हैं जो शाकाहारी और मांसाहारियों का मिश्रण हैं। क्या तुम जानते हो कि मुख्य-मुख्य स्तनधारी प्राणी कौन से हैं?

आदमी, बन्दर, गोरिल्ला, चिम्पान्जी, लंगूर आदि एक दूसरे से मिलते-जुलते स्तनधारी प्राणी हैं। गाय, सुअर, ऊंट, घोड़ा, गेंडा, हाथी, खरगोश, चूहा, गिलहरी आदि कुछ दूसरे स्तनधारी प्राणी हैं। ये अक्सर जमीन पर रहते हैं। डुगोंग (Dugong), डोलफिन, व्हेल आदि पानी में रहने वाले स्तनधारी प्राणी हैं। उड़ने वाले स्तनधारी जन्तुओं में चमगादड़ और कोलुगो (Colugo) आते हैं। कंगारू एक ऐसा विचित्र स्तनधारी प्राणी है जिसके पेट पर बच्चों को रखने के लिए एक थैला होता है।

प्लेटीपस (Platypus) एक ऐसा स्तनधारी प्राणी है जो बच्चे पैदा न करके अण्डे देता है। यह आमतौर पर आस्ट्रेलिया में मिलता है। पेंगोलिन (Pangolin) नाम के जानवर के दांत ही नहीं होते। यह चींटिया खाकर जिन्दा रहता है। भेड़िया, शेर, चीता, भालू, बिल्ली, सील आदि भी स्तनधारी वर्ग में ही आते हैं। इनके अतिरिक्त और भी हजारों प्राणी ऐसे हैं जो इस वर्ग में आते हैं। यहां सबका विवरण देना सम्भव नहीं है,केवल कुछ विचित्र स्तनधारियों का ही विवरण दिया गया है।



चमगादड़ पक्षियों से किस प्रकार विचित्र है?

चमगादड़ एक ऐसा विचित्र उड़ने वाला जन्तु है जो चिड़ियों की श्रेणी में नहीं आता बल्कि स्तनधारियों (mammals) की श्रेणी में आता है। स्तनधारी प्राणी वे होते हैं जिनमें मादा बच्चे पैदा करती है और उन्हें अपने स्तनों से दूध पिलाती है। इनके शरीर पर पंख नहीं होते बल्कि बाल होते हैं। मादा चमगादड़ भी अपने बच्चों को अपना दूध पिलाती है। इसके शरीर पर भी बाल होते हैं। यही एक ऐसा स्तनधारी जन्तु है जिसके शरीर में उड़ने के लिए पर भी होते हैं।

जीवाश्मों (Fossils) का अध्ययन करने से पता लगा है कि चमगादड़ आज से लगभग 6 करोड़ वर्ष पहले भी थे। आज के वैज्ञानिकों ने लगभग 2000 से अधिक चमगादड़ों की किस्मों का अध्ययन कर लिया है। चमगादड़ केवल ध्रुवों को छोड़कर संसार के सभी भागों में पाए जाते हैं। पंख फैलाए हुए चमगादड़ों का आकार 15 से०मी० से लेकर 2 मीटर तक होता है।

अधिकतर चमगादड़ कीड़े-मकोड़े खाते हैं। गर्म स्थानों में रहने वाले चमगादड़ फल-फूल खा कर ही जीवित रहते हैं। कुछ चमगादड़ ऐसे भी होते हैं जो दूसरे जानवरों का ख़ून पीकर जिंदा रहते हैं, इनको वैम्पायर चमगादड़ (Vampire Bats) कहते हैं। शायद यही कारण है कि बहुत से लोग चमगादड़ों से डरते हैं। ख़ून पीने वाले चमगादड़ का आकार 30 से०मी० तक होता है और इसके दांत सुई की तरह तेज़ होते हैं। इन्हीं दांतों से ये किसी भी जानवर की खाल में छेद कर देते हैं और अपनी जीभ की सहायता से उसका ख़ून पी लेते हैं। यह चमगादड़ सोते हुए आदमी पर भी हमला करके उसका ख़ून पी जाते हैं। आमतौर पर ये गाय, मुर्गा, घोड़े आदि का ख़ून पीते हैं।

चमगादड़ की एक और विशेषता है। आराम की स्थिति में यह पेड़ों की टहनियों पर उल्टा लटक जाता है, अर्थात् इसका सिर नीचे की ओर होता है और पिछली टांगों के पंजों से यह टहनियों को जकड़े रहता है। चमगादड़ के अंगों की बनावट कुछ ऐसी होती है जिससे यह सीधा खड़ा नहीं हो सकता। इसे उल्टा लटकने में ही आसानी रहती है।



शेर को जंगल का राजा क्यों कहते हैं ?

संसार के सभी देशों में शेर को शक्ति का प्रतीक माना गया है। अकसर लोगों को कहते हुये सुना जाता है कि अमुक व्यक्ति शेर की तरह ताकतवर है या अमुक व्यक्ति का शेर जैसा दिल है। इसके अलावा खिलाड़ियों को दी जाने वाली बहुत सी शील्डों (Shields) पर भी शक्ति के प्रतीक के रूप में शेर का चित्र होता है। कुछ झंडों के ऊपर भी शेर की तस्वीर बनी होती है।

कुछ लोगों का विचार है कि शेर जंगल के सभी जानवरों से अधिक शक्तिशाली होता है और उन सबको हरा सकता है इसलिए इसे जंगल का राजा कहते हैं। लेकिन वास्तविकता यह नहीं है। शेर को जंगल का राजा इसलिए कहते हैं कि यह किसी भी जानवर या मनुष्य पर इतनी तेजी और भयानकता से हमला करता है कि डर के मारे वह जानवर या व्यक्ति अपने बचाव के सभी तरीके भूल जाता है। जब यह घायल हो जाता है तो हथियार युक्त आदमी को भी अपने पंजों से चीर-फाड़ डालता है। जंगली भैंस और जिराफ जैसे अपने से बड़े जानवरों पर यह पीछे से हमला करता है और उन्हें अपने कब्जे में कर लेता है। इसके हमले की भयानकता और तेजी के कारण ही यह सभी जानवरों को हरा सकता है। इसी कारण शेर को जंगल का राजा कहते हैं।

आज से 2000 वर्ष पहले यूरोप के बहुत से हिस्सों में भी शेर पाए जाते थे लेकिन धीरे-धीरे इन शेरों को मार दिया गया। अब शेर केवल अफ्रीका और उत्तरी-पश्चिमी भारत के जंगलों में पाए जाते हैं।

शेर एक मांसाहारी जानवर है जो जंगली जानवरों को मारकर खाता रहता है। यह बिल्ली परिवार का एक सदस्य है। एक जवान शेर की औसत लम्बाई लगभग 3 मीटर होती है और वजन 180 से 225 किलो के बीच में होता है। नर शेर का आकार मादा से बड़ा होता है। इसके बच्चे बिल्ली के बच्चों की तरह उछलते-कूदते रहते हैं। शेर की आवाज दहाड़ के रूप में निकलती है। बिल्लियों की तरह यह पेड़ पर नहीं चढ़ सकता।

शेर छोटे-छोटे झुण्डों में जंगलों में रहते हैं। दिन में ये आराम करते हैं और रात को शिकार करते हैं। हाथी और गैंडे पर शेर हमला नहीं करता है। इसका मुख्य शिकार जेब्रा, हिरन , भालू, गीदड़ आदि हैं। यदि शेर को छेड़ा न जाए तो यह शान्ति से रहता है लेकिन छेड़ने या घायल हो जाने पर यह बहुत खतरनाक हो जाता है। कुछ शेर मनुष्य का मांस बहुत पसन्द करते हैं। ये आमतौर पर गांवों के पास के जंगलों में रहते हैं। जब भी इन्हें मौका मिलता है ये आदमियों, भेड़ों और बकरियों को मारकर खा जाते हैं।

शेर को पालतू बनाया जा सकता है। सर्कसों में दिखाए जाने वाले शेर पालतू ही होते हैं।



कबूतर लम्बी यात्राएं करके वहीं वापिस कैसे आ जाते हैं?

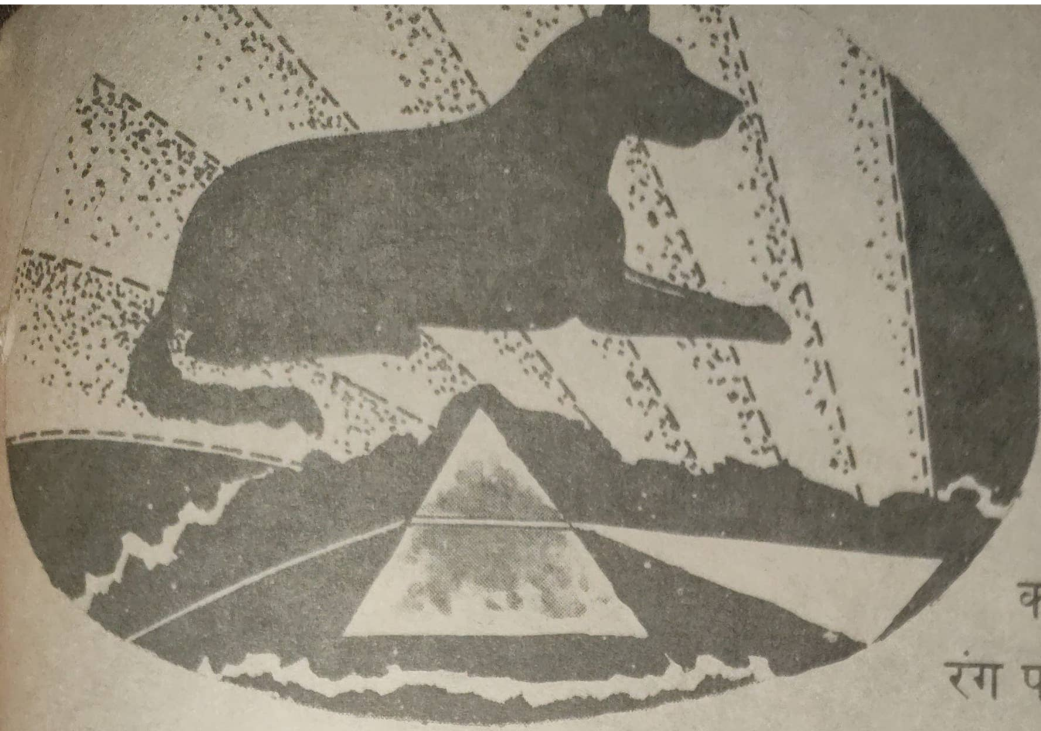
कबूतर के विषय में यह प्रसिद्ध है कि वह लम्बी से लम्बी यात्रा करने के बाद भी बिना रास्ता भूले अपने स्थान पर वापस आ जाता है। यही कारण है कि आज से लगभग 2000 वर्ष पूर्व रोम के लोग कबूतरों को सेना के गुप्त सन्देश भेजने के लिए काम में लाते थे। बारहवीं सदी में बगदाद का सुलतान (Sultan of Baghdad) कबूतरों द्वारा ही डाक सन्देश भेजने का काम लेता था। दूसरे महायुद्ध में भी सेनाओं द्वारा गुप्त सन्देश भेजने का काम कबूतरों से लिया गया था। आज सन्देश भेजने के सभी आधुनिक साधन सेनाओं को उपलब्ध होते हुए भी कुछ गुप्त सन्देशों को भेजने के लिए कबूतरों का ही इस्तेमाल किया जाता है।

क्या तुम जानते हो कि कबूतर रास्ता कैसे पहचानते हैं? जिस स्थान से वे उड़ते हैं उसी स्थान पर वे बिना रास्ता भूले लौट कर वापस कैसे आ जाते हैं? यह एक ऐसा प्रश्न है जिसका अभी तक सही-सही उत्तर नहीं मिल पाया है। वैज्ञानिकों की मान्यता है कि कबूतर सूर्य की मदद से रास्ते का पता लगाता है। दिन भर सूर्य की स्थिति बदलती रहती है। सुबह के समय सूर्य उगता हुआ दिखता है,दोपहर को इसकी स्थिति ऊंचाई पर पहुंच जाती है और शाम को यह फिर नीचे हो जाता है। कबूतर में यह क्षमता होती है कि वह दिन में सूर्य की स्थिति के परिवर्तनों के आधार पर दिशा का पता लगा लेता है।

सभी कबूतरों में दिशा ज्ञात करने का गुण नहीं होता। लगभग 289 किस्म के कबूतर और फाख्ता (Doves) ऐसे हैं जो लम्बी उड़ानें भर सकते हैं और दिशा ज्ञात कर सकते हैं।

कबूतरों की कुछ विचित्र आदतें भी होती हैं। कुछ कबूतर बिल्कुल अकेले रहना व उड़ना चाहते हैं जबकि कई झुंड में रहना पसंद करते हैं। कई कबूतरों को जमीन अच्छी लगती है तो कई घने जंगलों में घोंसले बनाकर रहने में खुश होते हैं।

कबूतर में उड़ने की अद्भुत शक्ति होती है। 8 अप्रैल 1845 को इशाबो द्वीप (पश्चिम अफ्रीका) से वैलिंगटन के प्रथम ड्यूक का कबूतर उड़ाया गया जो 55 दिन बाद 1 जून 1845 को लंदन से 1½ कि०मी० दूर गिर कर मर गया। इस अरसे में उसने लगभग 11265 कि०मी० की दूरी तय की। 1941 में एक कबूतर ने 24 घंटे में सबसे ज्यादा, 1292 किमी० की, दूरी अमरीका में तय की। इंग्लैंड में तो 8 मई 1965 को एक कबूतर 177 किमी० प्रति घंटे की रफ़्तार से उड़ा।



क्या जानवर भी रंग पहचान सकते हैं?

आम अनुभवों से यह तो स्पष्ट है कि जानवरों को भी हमारी तरह दिखाई देता है लेकिन क्या वे हमारी तरह अलग-अलग रंगों को भी देख सकते हैं? इस प्रश्न का उत्तर पाने के लिए वैज्ञानिकों ने बिल्ली, कुत्ता, बन्दर, शहद की मक्खी आदि बहुत से प्राणियों पर रंग की पहचान से सम्बन्धित बहुत से प्रयोग किए हैं।

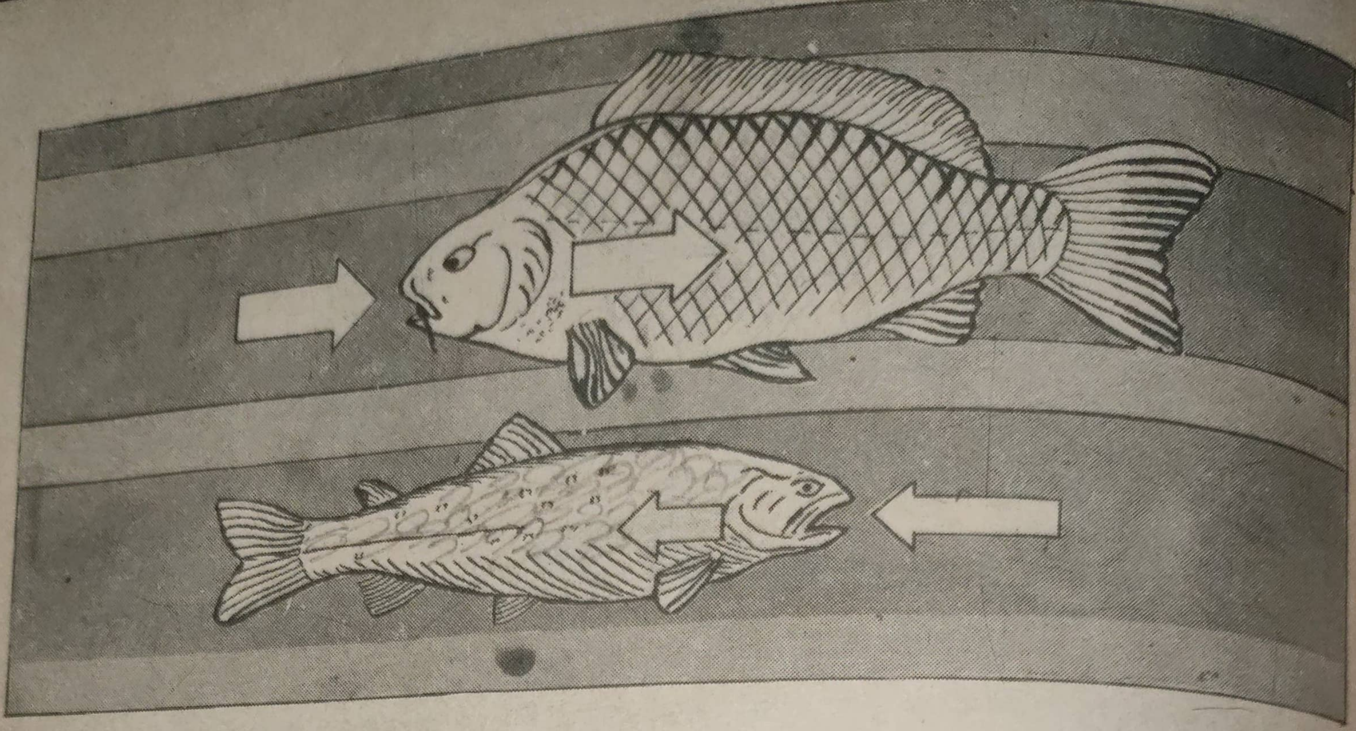
कुत्तों के विषय में यह निष्कर्ष निकाला गया है कि वे रंगों की पहचान नहीं कर सकते। कुछ कुत्तों को कई रंग की खाने की चीजें दी गईं। अलग-अलग रंगों का इन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। इससे यह सिद्ध हो गया है कि कुत्ते रंग-भेद नहीं कर सकते। इसी प्रकार के कुछ प्रयोग बिल्लियों पर भी किए गए। ये भी अलग-अलग रंगों की पहचान करने में असमर्थ पाई गईं।

मनुष्य के अतिरिक्त केवल बन्दर (Ape) ऐसा जानवर है जो अलग-अलग रंगों की पहचान कर सकता है। अधिकतर स्तनधारी प्राणी रंग-भेद नहीं कर सकते हैं।

शहद की मक्खी में रंग-भेद करने का आश्चर्यजनक गुण है। ये मक्खियां लाल रंग की पहचान नहीं कर सकतीं। इनको लाल रंग काले रंग की तरह दिखता है। रंगों की पहचान के आधार पर ही ये मक्खियां अलग-अलग रंग के फूलों की ओर आकर्षित होकर शहद इकट्ठा करने जाती हैं। शहद की मक्खी पराबैंगनी किरणों (Ultra violet rays) को भी देख सकती हैं। इन किरणों को मनुष्य भी नहीं देख सकता है। रंग पहचान कराने के लिए नीले और लाल रंग के दो कार्ड रखे गए। नीले कार्ड पर थोड़ा सा शर्बत लगा दिया गया था लेकिन लाल कार्ड पर शर्बत नहीं लगाया गया था। मक्खियां नीले कार्ड की तरफ पहुंच गईं। नीले कार्ड को बिना शर्बत लगाए दूसरी जगह रखा गया। मक्खियां वहां पर भी पहुंच गईं। इससे यह स्पष्ट हो गया कि ये मक्खियां रंग देख सकती हैं।

पक्षियों में भी रंग-भेद की अपूर्व क्षमता पाई गई है। नर पक्षियों का रंग मादाओं की अपेक्षा अधिक चमकीला होता है। मादा चिड़िया इन रंगों की ओर आकर्षित हो जाती हैं। यह देखा गया कि चिड़िया इन्द्रधनुष के सभी रंगों को देख सकती हैं।

आमतौर पर जानवर रंग इसलिए नहीं देख पाते क्योंकि उन्हें रात में या शाम के अंधेरे में अपना शिकार या भोजन ढूंढना पड़ता है। जानवरों की सूंघने की शक्ति अधिक होती है इसलिए इन्हें रंग के अन्धेपन से अधिक परेशानी नहीं होती।

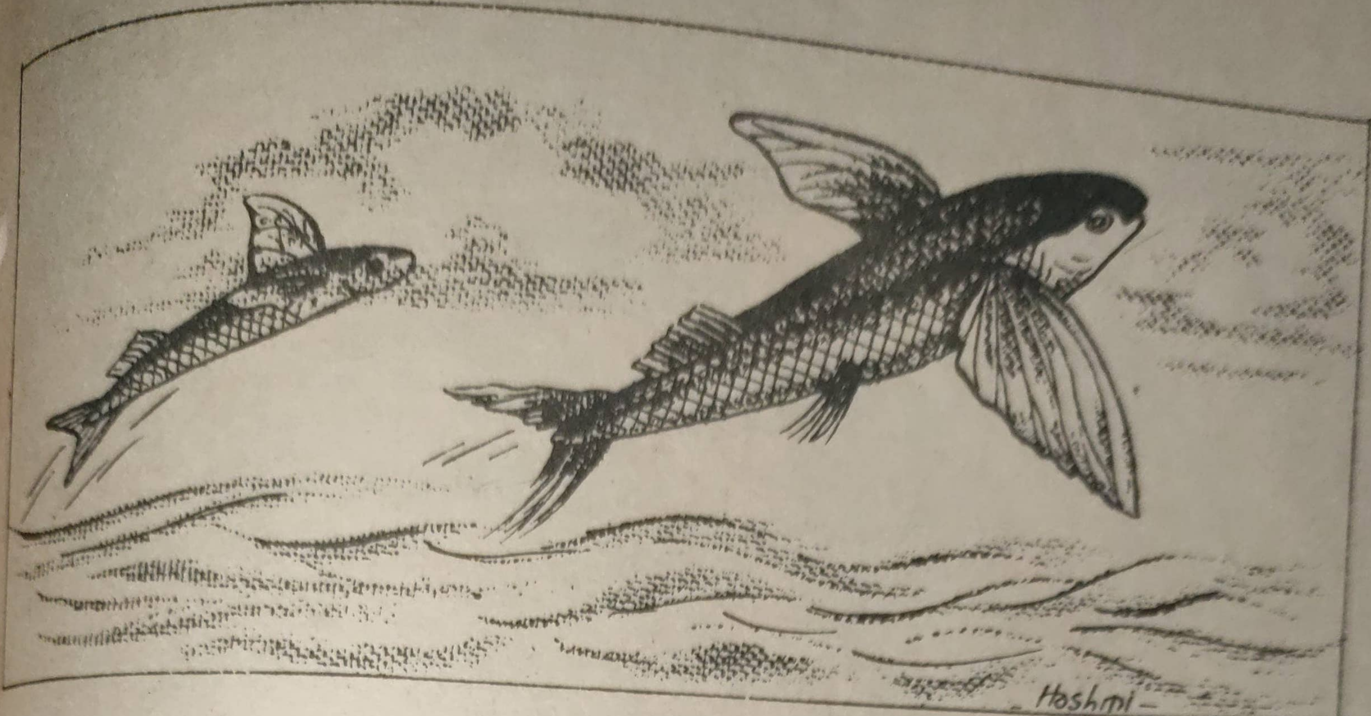


मछलियां पानी में सांस कैसे लेती हैं ?

अनेक प्रकार की मछलियां तालाबों, झीलों और समुद्रों में देखने को मिलती हैं। ये सभी मछलियां आमतौर पर जल के बिना नहीं रह सकतीं। जब कोई आदमी पानी में डूब जाता है तो सांस न ले सकने के कारण थोड़ी ही देर में मर जाता है। लेकिन मछलियां तो पानी में नहीं मरतीं बल्कि पानी में ही जिन्दा रहती हैं। अब प्रश्न उठता है कि ये पानी के अन्दर सांस कैसे लेती हैं?

केवल लंगफिश (Lung Fish) नाम की मछली को छोड़कर सभी मछलियां गलफड़ों (Gills) से सांस लेती हैं। उनके हमारी तरह फेफड़े नहीं होते और न ही वे हमारी तरह नाक से सांस लेती हैं। मछली में सांस लेने की क्रिया कुछ विचित्र ढंग से होती है। सांस लेने के लिए मछली अपने मुंह में पानी लेती है। यह पानी गलफड़ों से होता हुआ बाहर निकल जाता है। पानी में मिली हुई आक्सीजन गलफड़ों की कोशिकाओं द्वारा सोख ली जाती है। गलफड़ों का क्षेत्रफल काफी अधिक होता है जिससे आक्सीजन की अधिक मात्रा सोख ली जाती है। गलफड़ों में बहने वाले खून के साथ यह आक्सीजन मिल जाती है और सारे शरीर में भ्रमण करती है। इसी आक्सीजन से मछली का खून शुद्ध होता रहता है। रक्त कण शरीर से कार्बन-डाइआक्साइड लेकर गलफड़ों तक आते रहते हैं। गलफड़ों से यह कार्बन-डाइआक्साइड पानी में मिल जाती है और शरीर से बाहर निकल जाती है। इस प्रकार मछली में सांस लेने की क्रिया पूरी हो जाती है।

यदि पानी गंदा होता है तो कभी-कभी मछली पानी की सतह पर आ जाती है और वायु को सांस के रूप में अन्दर ले जाती है। यह क्रिया गलफड़ों द्वारा नहीं होती। मछली एक ठंडे रक्त वाला जीव है। ये भी स्पर्श, स्वाद, गंध आदि के प्रति संवेदनशील होती है। इनके शरीर में इन सब कामों के लिए अलग-अलग अंग होते हैं। अब तक मछलियों की 20,000 से अधिक किस्मों का अध्ययन वैज्ञानिक लोग कर चुके हैं।



क्या कुछ मछलियां उड़ भी सकती हैं?

पक्षियों के उड़ने की बात तो समझ में आती है लेकिन मछलियों के उड़ने की बात कुछ विचित्र सी लगती है। लेकिन समुद्रों में कुछ उड़ने वाली मछलियां भी मिलती हैं। इन मछलियों को फ्लाइंग फिश (Flying fish) कहते हैं। ये चिड़ियों की भांति तो नहीं उड़तीं, परंतु पहले ये पानी की सतह पर तेजी से दौड़ती हैं और उसके बाद अपने अगले फिन्स (Fins) को फैलाकर हवा में उड़ने लगती हैं। उड़ते समय इनके फिन्स फैल जाते हैं लेकिन जैसे ही ये पानी में उतरती हैं वैसे ही फिन्स सिकुड़ जाते हैं। कुछ मछलियां तो हवा में 365 मीटर लम्बी उड़ान भरती देखी गई हैं।

फ्लाइंग फिश की लम्बाई 5 से 45 से०मी० तक होती है। उड़ान का काम यह अपने अगले फिन्स से लेती है। उड़ने से पहले इसे हवाई जहाज की तरह 'दौड़ना' पड़ता है। जैसे ही यह हवा में उड़ती है इसके अगले फिन्स फैल जाते हैं। अपनी मांसपेशियों की सहायता से यह उन्हें मज़बूती के साथ फैलाए रहती है। कभी-कभी उड़ते समय यह पानी की लहरों से टकराती रहती है। उस समय इसका उड़ना बहुत ही सुन्दर लगता है। लहरों से टकराने के कारण इसे उड़ने के लिए अतिरिक्त शक्ति मिल जाती है जिससे यह अधिक दूर तक उड़ सकती है। यह मछली पानी से काफी ऊंचाई तक हवा में उड़ती रहती है। कई बार तो ऐसा देखा गया है कि यह मछली इतनी ऊंची उड़ जाती है कि समुद्री जहाजों के डेक के ऊपर पहुंच जाती है। इससे जहाज के यात्रियों को ताजी मछली खाने के लिए मिल जाती है।

फ्लाइंग फिश संसार के सभी समुद्रों में मिलती हैं। लेकिन इनकी संख्या बहुत कम है, इसलिए इनको उड़ते देखकर लोग आश्चर्य में पड़ जाते हैं।



क्या बिजली पैदा करने वाली मछलियां भी होती हैं?

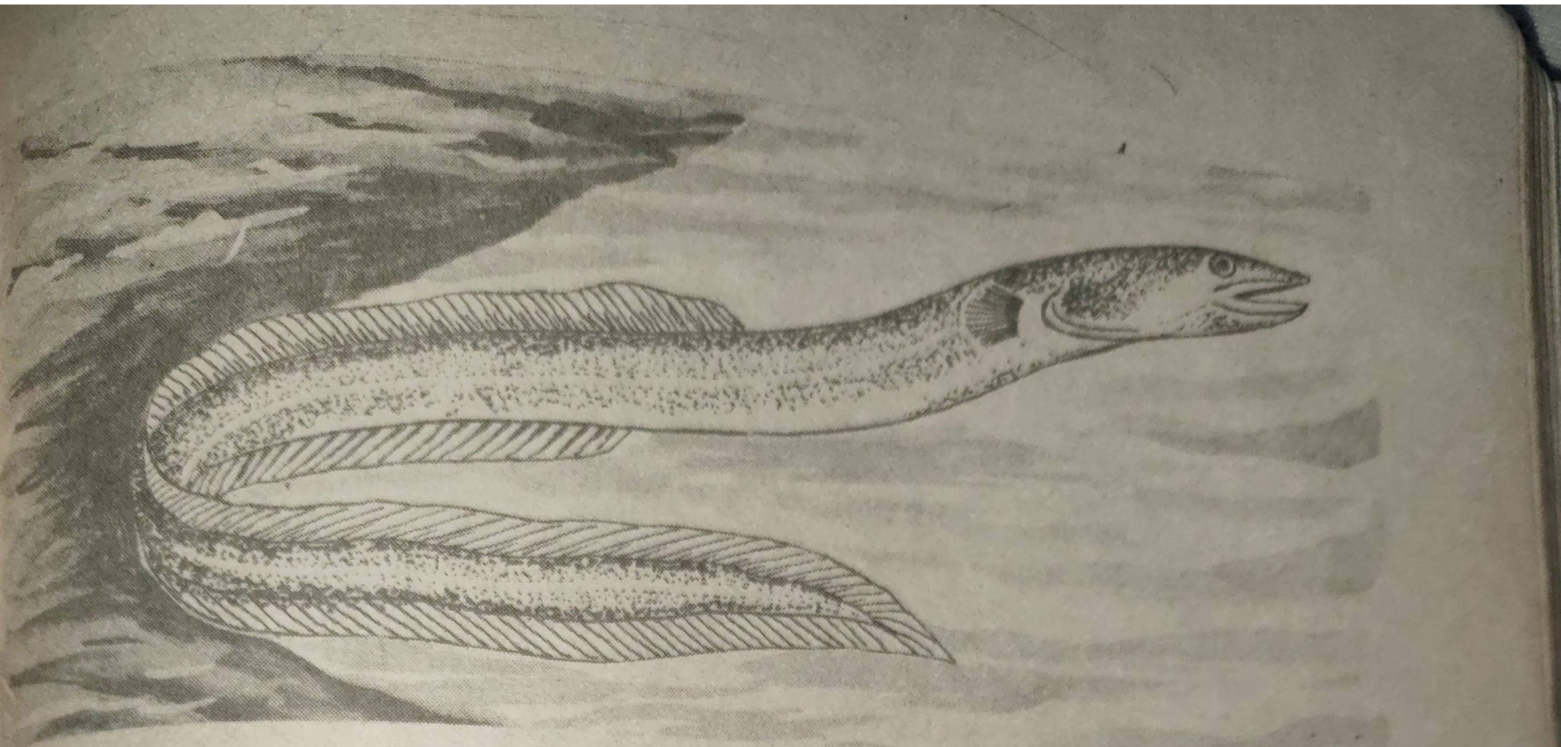
समुद्रों में कई प्रकार की ऐसी मछलियां भी मिलती हैं जो बिजली पैदा करती हैं। इस शक्ति का प्रयोग वे अपनी सुरक्षा और भोजन प्राप्ति के लिए करती हैं। अभी तक वैज्ञानिक इस बात का पता नहीं लगा पाए हैं कि इन मछलियों में बिजली कैसे पैदा होती है।

बिजली पैदा करने वाली मछलियों की बनावट दूसरी मछलियों जैसी ही होती है। इन मछलियों में सबसे खतरनाक इलेक्ट्रिक ईल (Electric Eel)होती है। यह दक्षिणी अमरीका की अमेजन और अर्निको नदियों के दलदल में मिलती हैं। कुछ लोग इसे ब्राजीलियन इलेक्ट्रिक ईल के नाम से भी पुकारते हैं। इसका रंग कालापन लिए हुए होता है। इसकी लम्बाई 1.8 मीटर तक होती है। इसकी पूंछ में बिजली पैदा करने वाले अंग होते हैं। यह घोड़े के आकार तक के प्राणियों को बिजली के झटके से पछाड़ देती है। कुछ मनुष्यों ने भी इस मछली द्वारा दिए गए बिजली के झटके कई घंटों तक महसूस किए हैं। ये मछलियां एक एम्पीयर विद्युतधारा पर 400 वोल्ट बिजली पैदा कर सकती हैं। कुछ मछलियों को तो 650 वोल्ट तक विद्युत विभवान्तर पैदा करते हुए पाया गया है।

कैट फिश (Cat fish) नाम की एक दूसरी मछली के शरीर से भी बिजली पैदा होती है। यह अफ्रीका की नदियों में मिलती है। इसकी लम्बाई 1.2 मीटर तक हो सकती है।

तारपीडो रे (Torpedo Ray) नाम की एक तीसरी मछली है जो बिजली पैदा करती है। यह गर्म सागरों में मिलती है। एटलांटिक महासागर में मिलने वाली इन मछलियों की लम्बाई 1.5 मीटर तक होती है और वजन 90 कि.ग्रा.तक होता है। इस मछली को इलेक्ट्रिक रे के नाम से भी पुकारते हैं। यह ऊपर से काली और नीचे से हल्के रंग की होती है। इसके बिजली पैदा करने वाले अंग सिर और गिल्स के बीच में होते हैं।

वैज्ञानिक परीक्षणों से पता चला है कि बिजली पैदा करने वाली मछलियों की मांसपेशियों में विद्युत कोशिकाएं (Electric cells) होती हैं। इनकी विद्युत पैदा करने की क्षमता समाप्त भी हो जाती है, लेकिन खाना खाने और आराम करने के बाद यह क्षमता फिर से पैदा हो जाती है। इन्हें लोग खाने में भी प्रयोग करते हैं।



क्या कोई मछली बिना पानी के भी जीवित रह सकती है?

मछलियों के विषय में यह प्रसिद्ध है कि पानी के बिना वे थोड़ी देर भी जिंदा नहीं रह सकतीं। जैसे ही किसी मछली को पानी से जमीन पर लाया जाता है वह थोड़ी देर में ही दम तोड़ देती है। लेकिन मछली की एक किस्म ऐसी भी है, जो पानी के बाहर जमीन पर भी जिंदा रह सकती है। यह मछली है ईल (Eel)।

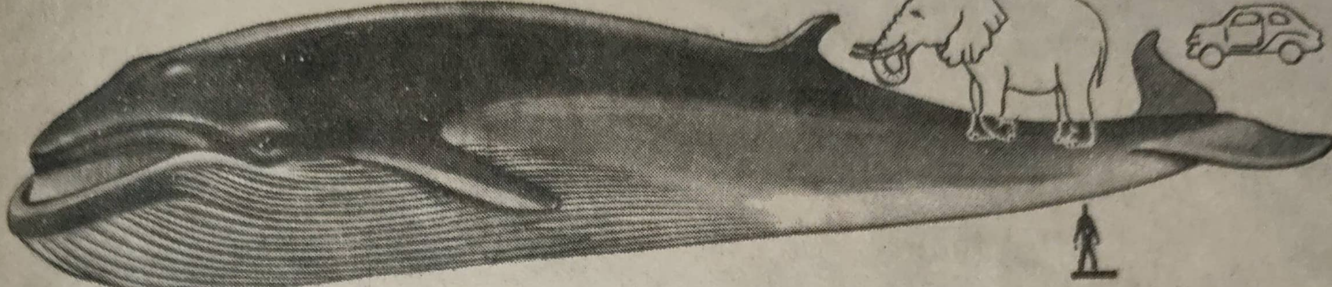
अधिकतर ईल मछलियां समुद्र में रहती हैं। कुछ ईल मछलियां ताजे पानी में भी रहती हैं। ताजे पानी में रहने वाली ईल मछलियों को जमीन पर चलने में कोई परेशानी नहीं होती। सभी ईल मछलियां खारे पानी में अण्डे देती हैं। इसलिए ताजे पानी में रहने वाली ईल मछलियों को अण्डे देने के लिए खारे पानी में जाना होता है। ताजे पानी से खारे पानी में जाने के लिए उन्हें कई-कई दिन तक जमीन पर चलना पड़ सकता है। अब प्रश्न उठता है कि जमीन पर चलने में ये मछलियां मर क्यों नहीं जातीं?

ईल मछलियों के शरीर में एक लिसलिसा पदार्थ होता है जिसे म्यूकस (Mucus) कहते हैं। यह उनके शरीर को जमीन पर सूखने नहीं देता और जमीन पर ये अपनी त्वचा से सांस लेती हैं। यही कारण है कि ये जमीन पर भी जिंदा रह सकती हैं। हमें ईल मछलियां जमीन पर इसलिए नहीं दिखाई देतीं, क्योंकि वे रात में ही अपनी यात्रा पूरी करती हैं। हम ईल मछलियों को कुछ तालाबोंव कुओं में देख सकते हैं। इन तालाबों में दिखने वाली मछलियां आमतौर पर मादा ईल होती हैं। नर ईल का आकार मादा से छोटा होता है। नर ईल 30 सेमी० से 50 सेमी० तक लम्बी होती हैं।

जब नर और मादा का मिलन होता है तो वे गहरे पानी में चली जाती हैं। ईल मछलियां मजबूत और मोटी होती हैं। पतझड़ के मौसम में तो ये समुद्र में सैकड़ों मील की गहराइयों में चली जाती हैं। वहीं पर अण्डे देती हैं और मर जाती हैं। यूरोप में पायी जाने वाली मछलियों में एक विचित्र गुण होता है कि वे खारे पानी में अण्डे न देकर, ताजे पानी में अण्डे देने आती हैं। जब अण्डे लार्वा वाली स्थिति में पहुंचते हैं, तो इन्हें गल्फ की धारा पूर्व की ओर ले जाती

है। लगभग ढाई या तीन वर्ष में ये लार्वा यूरोपीय नदियों के मुहाने पर पहुंच जाते हैं जहां इन में से बड़ी-बड़ी ईल मछलियां निकल आती हैं।

सामान्य ईल मछली का रंग कालापन लिए हुए कत्थई होता है। इसकी त्वचा चिकनी होती है। ईल मछली की उम्र 12 वर्ष तक की होती है। अमरीका के बरमुडा (Bermuda) नामक स्थान पर अंधमहासागर में ये मछलियां मिलती हैं। यहां पर हर वर्ष लगभग 900,000 कि.ग्रा. मछलियां पकड़ी जाती हैं जिन्हें खाने के काम लाया जाता है।

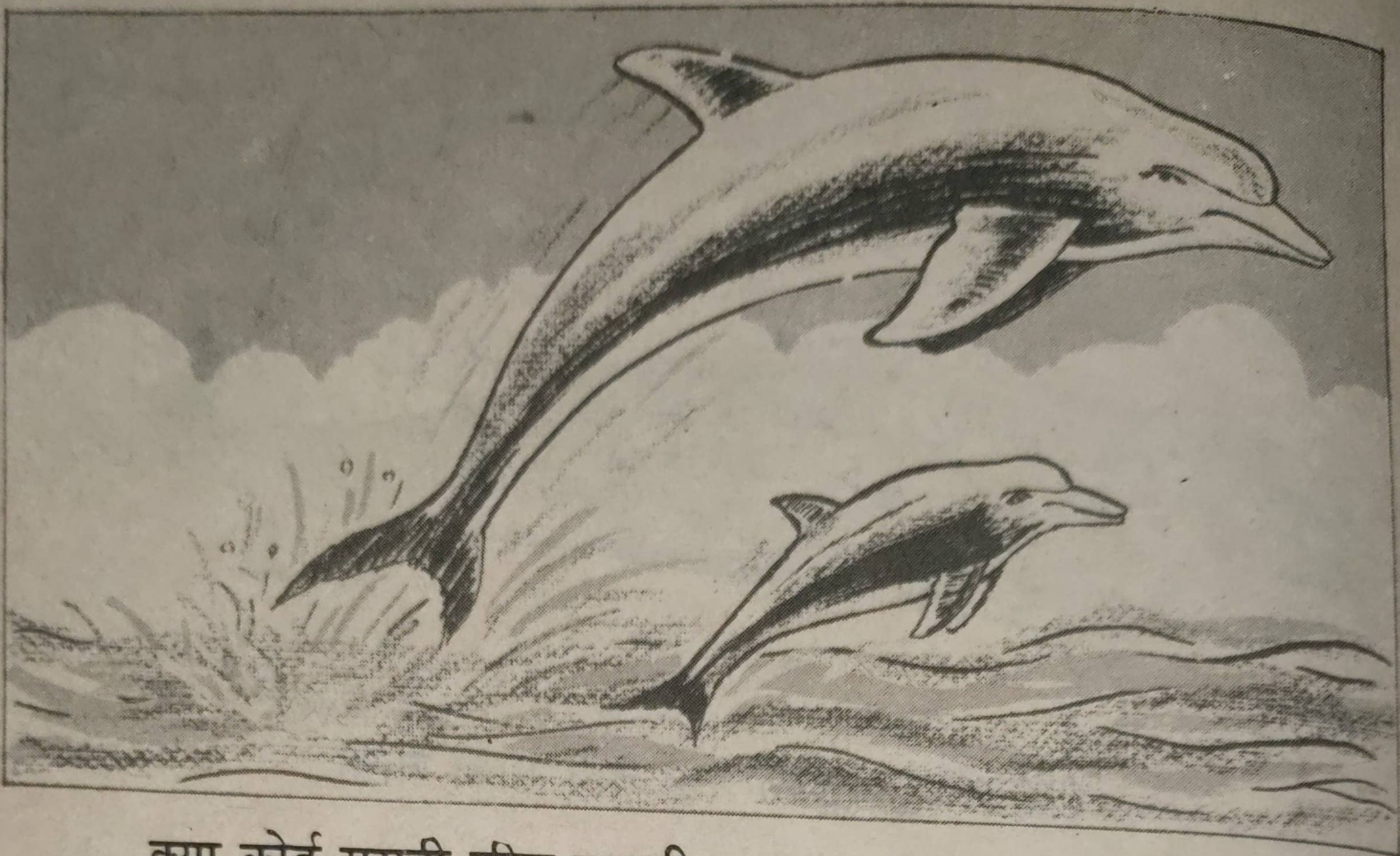


ह्वेल को मछली क्यों नहीं माना जाता ?

व्हेल एक समुद्री जीव है जो पानी में रहता है और शक्ल में मछली से मिलता जुलता है, इसलिये अधिकतर लोग सोचते हैं कि यह एक प्रकार की मछली है। लेकिन वास्तविकता यह है कि व्हेल मछलियों की श्रेणी में नहीं आती। यह एक स्तनधारी (Mammal) प्राणी है। व्हेल का विकास विशालकाय जंतुओं डाइनोसॉर (Dinosaur) से माना जाता है जो आज से करोड़ों वर्ष पहले धरती पर विचरण किया करते थे। व्हेल का आकार सभी जतुओं से विशाल है। नीली व्हेल (Blue whale) या सल्फर बॉटम व्हेल (Sulphur bottom whale) सबसे विशालकाय जीव है। इसकी लंबाई लगभग 30 मीटर है और इसका भार 125 टन के लगभग है। इसकी पूंछ की चौड़ाई 6 मीटर है। इसकी मांसपेशियों का वज़न 50 टन और हड्डियों का वजन 20 टन है। इस प्राणी की जीभ ढाई टन की है। ऐसे विशालकाय जन्तु की कल्पना भी नहीं की जा सकती।

अब प्रश्न उठता है कि व्हेल को मछली न मान कर स्तनधारी जन्तु क्यों माना जाता है? व्हेल हमारी तरह फेफड़ों से सांस लेती है। मछलियों की भांति इसके गिल्स (Gills) नहीं होते। सिर के अगले भाग में इसके नथुने होते हैं। पानी के अन्दर ये नथुने बन्द हो जाते हैं। यह सांस लेने के लिए हर पांच से दस मिनट के बीच पानी से ऊपर अपना सिर लाती है। पहले यह शरीर के अन्दर की हवा बाहर निकालती है। जब इसकी सांस बाहर आती है तो बड़ी तेज़ी से आवाज होती है जो काफी दूर तक सुनी जा सकती है। उसके बाद यह हवा अंदर ले जाती है और पानी में डुबकी लगा जाती है। वैसे बिना सांस लिए यह पानी के अन्दर लगभग 45 मिनट तक रह सकती है। पानी के अन्दर यह 2000 फीट की गहराई तक जा सकती है।

यह बच्चे पैदा करती है और उनको दूध पिलाती है। इसके बच्चे थोड़े दिन इसके पास ही रहते हैं। व्हेल एक गर्म रक्त वाला प्राणी है। इसने पानी के अन्दर रहने के लिए अपने शरीर को ढाल लिया है। इसके शरीर के अंग स्तनधारियों से मिलते हैं। कुछ व्हेल दांत वाली होती हैं और कुछ एक ऐसी भी हैं जिनके दांत नहीं होते, बल्कि मुंह में प्लेट के आकार की हड्डियां होती हैं। इन सभी गुणों के आधार पर व्हेल को मछली न मानकर स्तनधारी प्राणी माना जाता है।



क्या कोई समुद्री जीव हमारी तरह बात कर सकता है ?

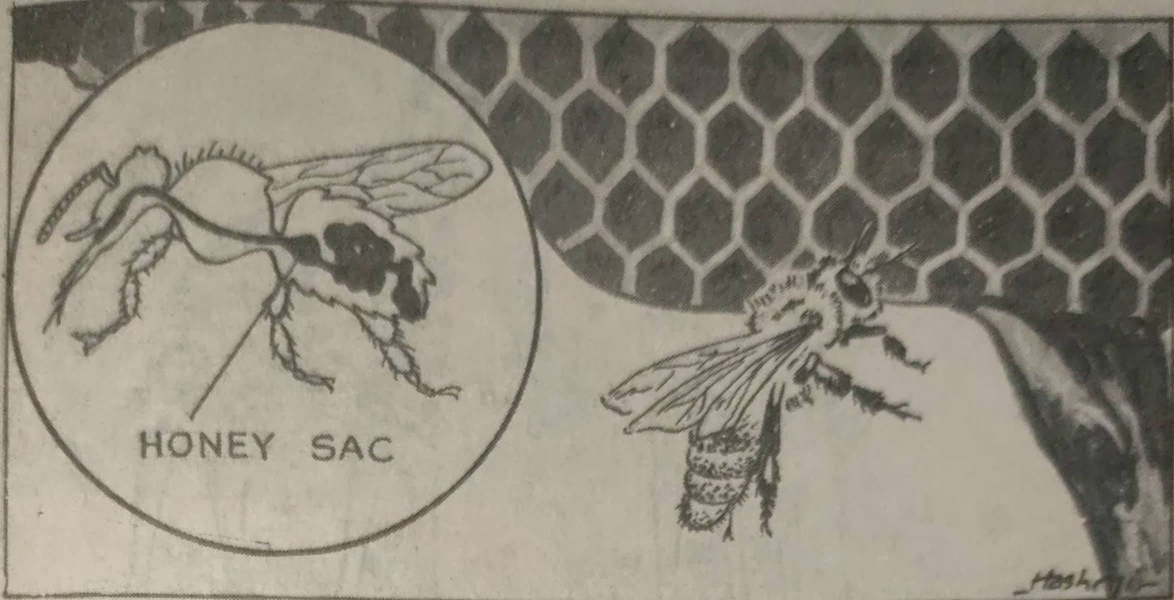
समुद्री जीवों में पोरपोइज़ (Porpoise) एक ऐसी प्राणी है जो बहुत सी बातों में आदमी की नकल कर लेती है। इसकी बनावट मछली से मिलती जुलती है लेकिन यह मछलियों की श्रेणी में नहीं आती। यह एक स्तनधारी जीव है जो अंडे न देकर बच्चे पैदा करती है और उन्हें दूध पिलाती है। व्हेल, डोलफिन और पोरपोइज़ तीनों ही समुद्री जीव स्तनधारियों की श्रेणी में आती हैं।

पोरपोइज़ की एक विशेषता और है। सांस लेने के लिए इसके गिल्स (Gills) नहीं होते। यह फेफड़ों से सांस लेती है। इसके सिर के ऊपर एक छेद होता है जिसे नाक कहते हैं। यह अपना सिर पानी की सतह से ऊपर लाकर इसी नाक द्वारा सांस लेती है। इसकी पूंछ क्षैतिज (Horizontal) अवस्था में होती है जबकि मछलियों की पूंछ उनके शरीर की लम्बवत दिशा में होती है। इसकी लम्बाई 1.75 मीटर तक होती है। इसके मुंह में 80 से लेकर 100 तक दांत होते हैं। इसका रंग काला या भूरा होता है। यह अन्धमहासागर और प्रशान्त महासागर में मिलती है।

पोरपोइज़ सभी जानवरों की तुलना में बहुत अधिक चतुर जीव है। यह आदमी की नकल करने में बहुत माहिर है। यह आदमी की आवाज की नकल कर लेती है। फ्लोरिडा (Florida) के मेरिन स्टूडियो में एक ऐसी पोरपोइज़ है जो आदमी की आवाज में बोल लेती है। एक बार एक महिला इसके पास जाकर हंसने लगी। उस महिला को हंसते देखकर वह पोरपोइज़ भी हंसने लगी। इसके आवाज पैदा करने वाले अंग ऐसे होते हैं जो हमारे जैसी आवाज पैदा कर सकते हैं। बात करने के लिए इन्हें ट्रेनिंग देनी पड़ती है।

पोरपोइज के सिर और जबड़ों से एक प्रकार का तेल निकाला जाता है। इसे घड़ियों और दूसरे कीमती यंत्रों में चिकनाहट (Lubrication) पैदा करने के लिए प्रयोग किया जाता है। पोरपोइज की चतुराई के विषय में वैज्ञानिक लोग बहुत से परीक्षण कर रहे हैं।

मधु-मक्खी शहद कैसे बनाती है ?



शहद की मक्खियों की भी हमारी तरह बस्तियां (Colonies) होती हैं। कोई भी दूसरा जंगली जीव एकता में इनकी बराबरी नहीं कर सकता। इनकी बस्ती में एक रानी मक्खी होती है और दूसरी काम करने वाली मक्खियां होती हैं। इनकी बस्तियां शहद के छत्तों में रहती हैं। रानी मक्खी अंडे देने का काम करती हैं लेकिन अंडों की देखभाल दूसरी मक्खियां करती हैं। रानी मक्खी एक दिन में 1500 से अधिक और एक मौसम में लगभग 250,000 अंडे देती है। एक मक्खी अपनी जीवन काल में 1,000,000 से भी अधिक अंडे देती है। अधिकतर मक्खियों का जीवन-काल एक से दो वर्ष होता है। इनकी एक बस्ती में 60,000 तक मक्खियां हो सकती हैं। कमेरी मक्खियों के कई काम होते हैं। शुरू में ये छत्तों की सफाई और पालिश करने का काम करती हैं। कुछ दिनों बाद ये अंडों से निकले बच्चों का पालन-पोषण करती हैं और बाद में फूलों के पराग से शहद जुटाने के लिए जाती हैं। क्या तुम जानते हो कि ये मक्खियां शहद-निर्माण कैसे करती हैं?

शहद वास्तव में इन मक्खियों का भोजन होता है। अतः शहद बनाने का काम अपनी बस्ती की मक्खियों के लिए एक प्रकार से भोजन जुटाने का कार्य है। शहद जुटाने के लिए ये मक्खियां फूलों पर जानी हैं। फूलों में एक प्रकार का पुष्प रस (Nectar) या पुष्पासव होता है जिसे ये मक्खियां चूसकर अपनी शहद की थैली में जमा करके छत्ते तक ले आती हैं। शहद की थैली मक्खी के पेट के पास होती है। पेट और इस थैली को अलग करने के लिए बीच में एक वाल्व (Valve) होता है। पुष्प रस (Nectar) में उपस्थित चीनी में एक रासायनिक परिवर्तन होता है। नेक्टर में जो पानी होता है वह छत्ते से वाष्पीकरण द्वारा उड़ जाता है। पानी निकलने के बाद यह शहद छत्ते में बिना खराब हुए बहुत लम्बे अरसे तक रखा जा सकता है। यही शहद छत्ते में भोजन के रूप में भविष्य के लिए जमा रहता है।

छत्ते से शहद निकालने के कई तरीके हैं। छत्ते को दबाकर शहद निकाला जा सकता है। शहद निकालने की एक मशीन भी होती है, जिसे हनी एक्सट्रैक्टर (Honey Extractor) कहते हैं। अलग-अलग शहद के स्वाद और रंगों में कुछ अंतर होता है। शहद का स्वाद और रंग इस बात पर निर्भर करता है कि पुष्प रस किन फूलों से लिया गया है। शहद में कई पदार्थ होते हैं। इसमें लेवुलोज (Levulose) और डेक्सट्रोज (Dextrose) नाम की दो प्रकार की चीनी होती है। शहद में सुक्रोज (Cane sugar), माल्टोज (Maltose), डैक्सट्रिन (Dextrins), खनिज, एन्जाइम, बहुत से विटामिन, कुछ प्रोटीन और अम्ल होते हैं। इसलिए शहद हमारे स्वास्थ्य के लिए बहुत उपयोगी है।

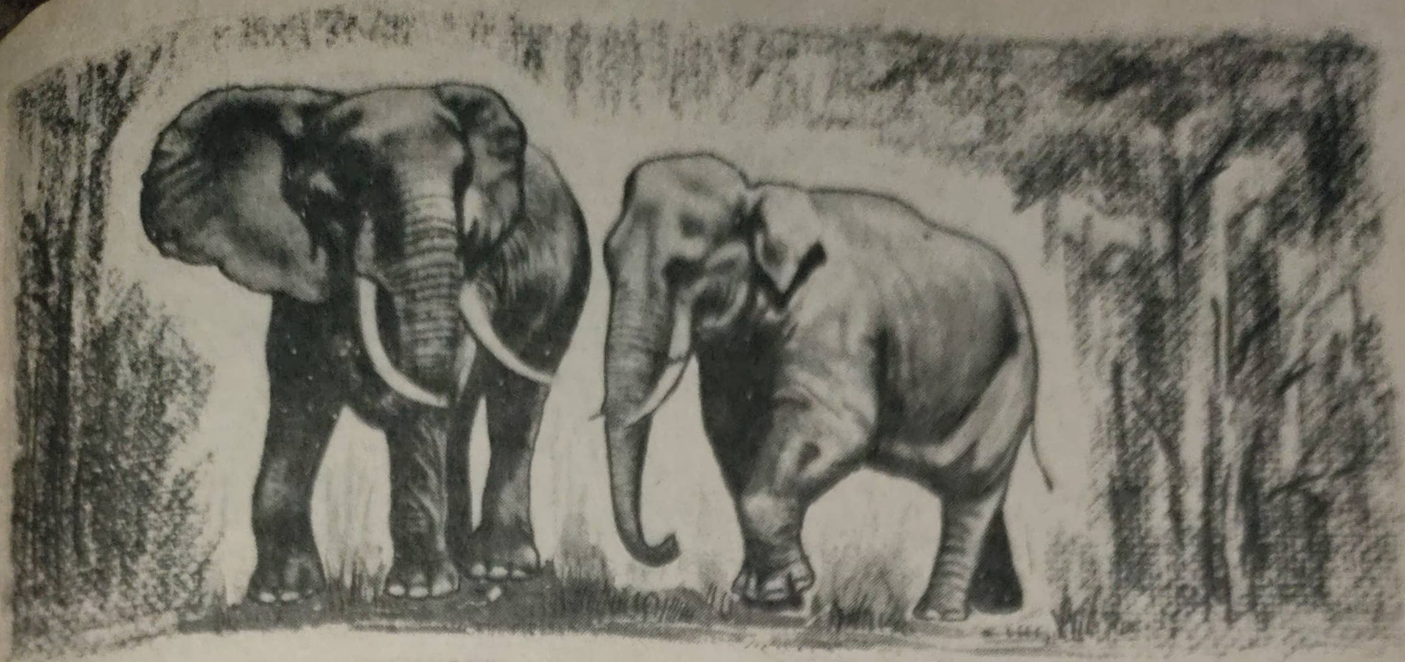


जिराफ की गरदन लम्बी क्यों होती है?

जिराफ की लम्बी गर्दन होने का अभी तक कोई युक्तिसंगत कारण नहीं बता पाया है। इसकी लम्बी गर्दन के विषय में फ्रांस के प्रसिद्ध जीवशास्त्री जे. बी. द लेमार्क (Jean Baptiste de Lamarck) ने एक सिद्धांत दिया था। उनके अनुसार इस जानवर की गर्दन शुरू-शुरू में छोटी थी, लेकिन यह पेड़ों की पत्तियां खाता था और इन पत्तियों को खाने के लिए इसे गर्दन ऊंची करनी होती थी। लेमार्क के अनुसार जो जीव अपने जिस अंग का अधिक इस्तेमाल करता है, उसका वही अंग अधिक विकसित हो जाता है, चूंकि पेड़ों की पत्तियों तक पहुंचने के लिए जिराफ अपनी गर्दन को बहुत बार ऊंची करता था, इसलिए गर्दन के अधिक प्रयोग के कारण इसकी आने वाली पीढ़ियों की गर्दन धीरे-धीरे बढ़ने लगी और बढ़ते-बढ़ते वह आज के रूप में आ गई।

जिराफ के शरीर का ढांचा ऐसा होता है जो आसानी से ऊंचे-ऊंचे पेड़ों की पत्तियों तक गर्दन उठाकर अपना मुंह पहुंचा देता है और अपना भोजन प्राप्त कर लेता है। यह केवल पेड़-पौधे ही खाता है। इसकी जीभ लगभग 45 सेमी० लम्बी होती है। इसकी बनावट ऐसी होती है, जिससे यह कांटेदार पौधों की पत्तियां भी खा सकता है। इसका ऊपर का होंठ लम्बा होता है, जिससे यह एक ही बार में बहुत सी पत्तियां मरोड़कर तोड़ लेता है।

जिराफ की त्वचा का रंग ऐसा होता है जो पेड़ों की परछाईं से मिलता-जुलता है। इस रंग के कारण यह अपने शत्रुओं को दिखाई नहीं देता। इसके कान बड़े संवेदनशील होते हैं। यह मंद से मंद आवाज भी सुन सकता है लेकिन इसकी विचित्रता यह है कि यह बोलने में लगभग असमर्थ होता है। लगभग शब्द का प्रयोग यहां इसलिए किया गया है कि कुछ मादा जिराफ और उनके बच्चों को गाय या बैल जैसी आवाज निकालते हुए चिड़ियाघरों में देखा गया है, परन्तु अधिकतर जिराफ बोल नहीं पाते। इसका कारण यह है कि इनके गले में स्थित ध्वनि पैदा करने वाला अंग (Voice box or larynx) बहुत ही कम विकसित होता है सम्भवतः इसलिए इसमें सूंघने और देखने की शक्ति बहुत अधिक होती है जिससे यह दुश्मनों से अपनी रक्षा कर सके। जब इस पर कोई आक्रमण करता है तो इसकी गति 45 किमी० प्रति घंटे तक पहुंच जाती है। यह दौड़ने में अच्छे तेज़ दौड़ने वाले घोड़े को हरा सकता है। जब इस पर कोई जानवर हमला करता है तो यह अपने सिर और पिछली टांगों से उस जानवर पर हमला करता है। यहां तक कि शेर को भी जिराफ पर हमला करते समय बड़ी सावधानी बरतनी पड़ती है। जिराफ अपने सिर से हथौड़े जैसी टक्कर मारता है। इसलिए शेर हमेशा जिराफ पर पीछे से ही हमला करता है।



हाथी के सूंड क्यों होती है ?

हज़ारों वर्ष पहले मैमथ (mammoth) नाम के विशालकाय जानवर हमारी धरती पर विचरण करते थे। वातावरण की बदलती हुई कठिन परिस्थितियों के अनुसार वे अपने को ढाल न पाए और एक-एक करके धरती से इनका लोप हो गया। इन जानवरों से पैदा हुई संतान ने ही आज के हाथियों का रूप ले लिया। हाथी की दो जातियां इस समय पृथ्वी पर मिलती हैं। एक अफ्रीका का हाथी और दूसरा भारतीय हाथी।

आज हाथी धरती का सबसे विशालकाय जानवर है। यह बहुत ही शांत स्वभाव वाला भोला जन्तु है। यही कारण है कि इसको दूसरे जानवरों की अपेक्षा आसानी से पाला जा सकता है। एक हाथी का वजन पांच टन तक हो सकता है। इसकी चार टांगें होती हैं जो आकार में मोटी और छोटी होती हैं। इसका कारण यह है कि छोटी टांगें भारी वजन का संतुलन ठीक प्रकार से रख सकती हैं। इसके बाहर निकले हुए दो दांत होते हैं। ये दांत हाथी के लिए हथियार का काम करते हैं। खाने के दांत दूसरे होते हैं जो इसके मुंह में होते हैं।

हाथी समूह में रहना पसन्द करता है। एक समूह में दस से लेकर पचास हाथी तक होते हैं। हाथियों के ये समूह जंगलों में घूमते रहते हैं। आमतौर पर हाथियों का रंग कालापन लिए हुए कत्थई होता है। कुछ हाथी सफेद रंग के भी होते हैं।

सूंड हाथी के शरीर का एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण भाग है। बिना सूंड के हाथियों का जिंदा रहना ही असम्भव है। जिस प्रकार हमारे लिए हाथों का महत्त्व है, उसी प्रकार हाथी के लिए सूंड का। सूंड वास्तव में हाथी के होंठ और नाक का मिला-जुला बढ़ा हुआ रूप है। इससे यह हाथ, नाक और होंठों का काम लेता है। सूंड में लगभग 40,000 मांसपेशियां होती हैं। इतनी अधिक मांसपेशियों के कारण ही हाथी की सूंड लचकदार और मजबूत होती है। इससे यह बड़े-बड़े लकड़ी के लट्ठों को उठा सकता है। सूंड की नोक उंगली की तरह पतली होती है। इससे यह सुई तक को उठा सकता है। सूंड से ही यह अपना भोजन मुंह में ले जाता है। इसी की सहायता से यह पानी पीता है। सूंड में पानी भरकर और इसे मोड़कर यह अपनी पीठ पर उंडेलता है। सूंड की सहायता से ही यह स्नान करता है। हाथी के लिए सूंड बहुत ही उपयोगी है।

हाथी की औसत उम्र लगभग 90 वर्ष होती है। यह हमारे लिए बहुत लाभदायक है। जंगलों में हाथियों से लकड़ी ढोने का काम लिया जाता है। सर्कसों में इसे मनोरंजन के काम में लाया जाता है।



ऊंट की पीठ पर कूबड़ क्यों होता है ?

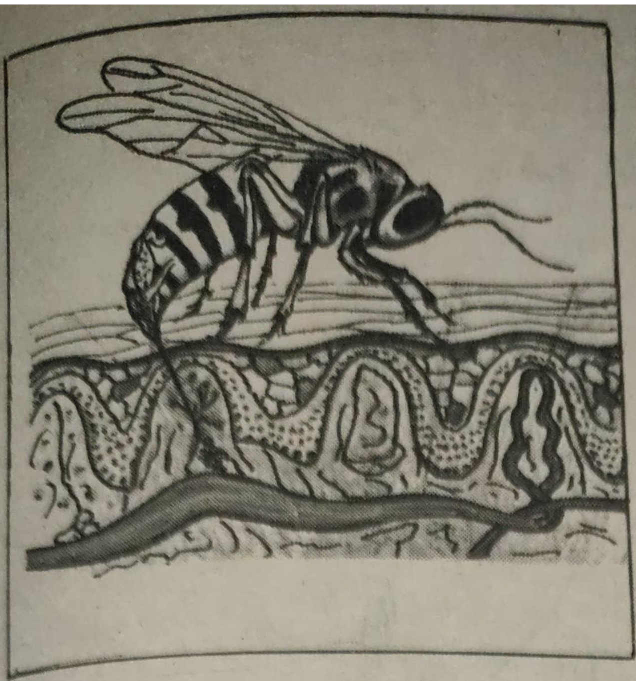
ऊंट को रेगिस्तान का जहाज कहा जाता है। इसका कारण है कि यह रेगिस्तान में बिना कुछ खाये-पीये कई कई दिन तक जिंदा रह सकता है। इसके नाक, कान और आंखों की बनावट ऐसी होती है, जिस पर रेगिस्तानी धूल का विशेष प्रभाव नहीं पड़ता। यह हमारे लिए बहुत ही उपयोगी जानवर है।

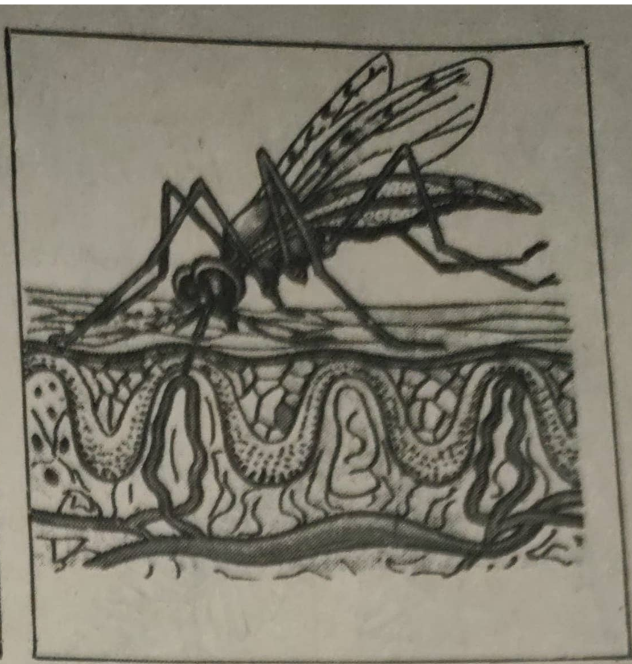
लोगों का विचार है कि ऊंट को पानी और खाने के बिना लम्बे समय तक रहने की आदत होती है, लेकिन वास्तविकता यह नहीं है। दूसरे जानवरों की तरह इसे भी नियमित रूप से भोजन और पानी की आवश्यकता होती है, लेकिन इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह कई दिनों के लिए राशन-पानी एक ही बार में अपने शरीर में जमा कर लेता है।

ऊंट की पीठ पर एक बड़ा सा कूबड़ होता है। वास्तव में यह कूबड़ चर्बी का भंडार होता है। कूबड़ का वजन 45 किलो तक होता है। इसमें जमा चर्बी को ऊंट ऊर्जा के रूप में अपनी यात्रा के दौरान प्रयोग में लाता है। ऊंट के पेट में फ्लास्क के आकार के दो थैले होते हैं, जिनमें यह पानी भर लेता है। पानी न मिलने पर यह इसी जमा पानी को इस्तेमाल करता है। कूबड़ में जमा चर्बी और थैलों में जमा पानी के भरोसे ही ऊंट रेगिस्तानों में बिना भोजन पानी के कई दिनों तक लगातार यात्रा करता रहता है।

किसी लम्बी यात्रा पर जाने से पहले ऊंट कई दिनों तक अधिक मात्रा में भोजन और पानी का इस्तेमाल करता है, जिससे चर्बी और पानी का भंडार इसके शरीर में जमा हो जाता है। यात्रा के बाद ऊंट का कूबड़ ढीला पड़ जाता है, क्योंकि इसमें जमा चर्बी लगभग समाप्त हो चुकी होती है। इसका पानी का भंडार भी समाप्त हो जाता है। यात्रा के बाद ऊंट निढाल सा होकर जमीन पर पड़ जाता है। इसको सामान्य स्थिति में आने के लिए काफी लम्बे आराम की आवश्यकता होती है। जैसे-जैसे भोजन और पानी की आवश्यकता पूरी होती जाती है वैसे-वैसे ऊंट सामान्य अवस्था में आता जाता है।

ऊंट प्राचीन काल से ही मनुष्य का सहयोगी रहा है। कहा जाता है कि इसका उपयोग आज से 3000 वर्ष पहले मिस्र के लोग किया करते थे। आज भी ऊंट रेगिस्तानों और रेतीले क्षेत्रों में सवारी और बोझा ढोने के काम आता है।





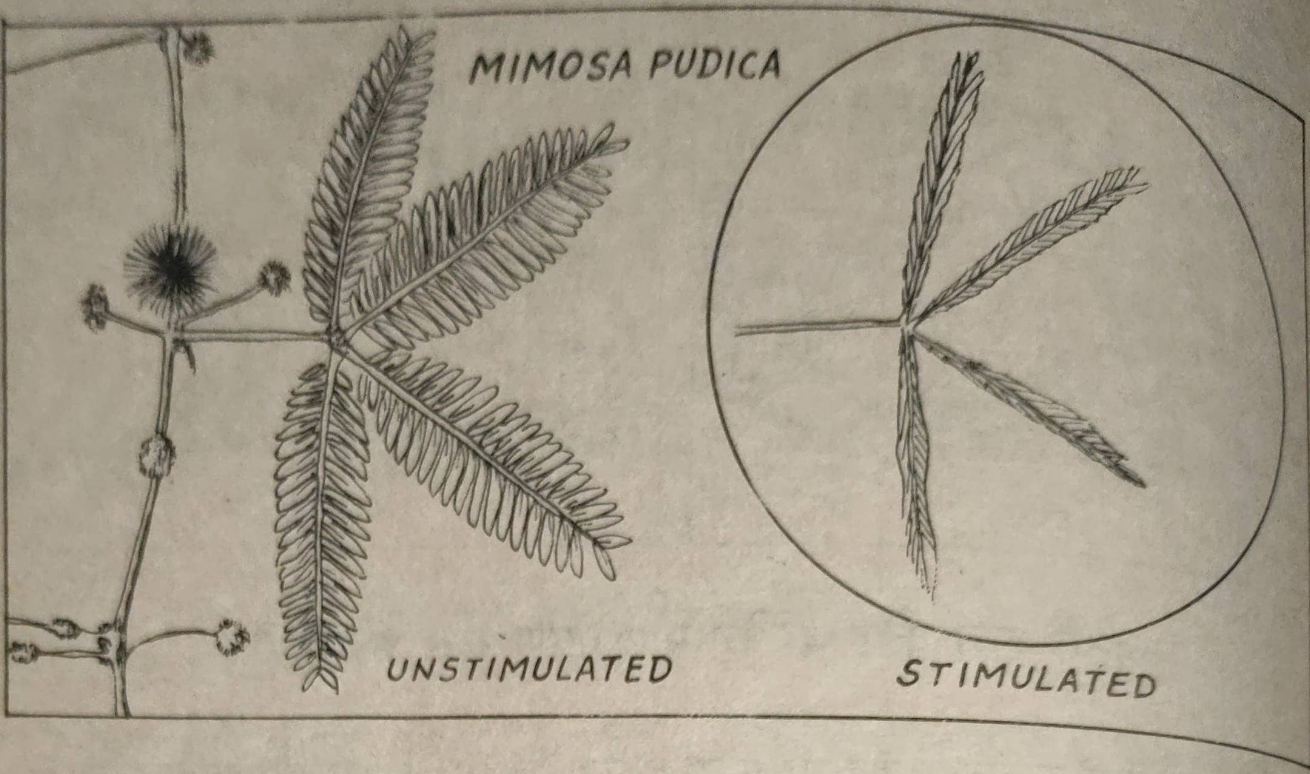
काटने वाले कीड़े शरीर में कीटाणु कैसे भेजते हैं?

पृथ्वी पर रहने वाले हज़ारों प्रकार के कीड़ों में से कुछ काटने वाले कीड़े (Insects) हमारे बहुत बड़े दुश्मन हैं। ये कीड़े जब हमें काटते हैं तो बहुत से भयानक रोगों के कीटाणु हमारे शरीर में छोड़ जाते हैं। क्या तुम जानते हो कि कौन से कीड़े ऐसे हैं जो हमारे दुश्मन हैं?

काटकर रोग फैलाने वाले कीड़ों में मुख्य रूप से मच्छर, ट्सेट्से मक्खी (Tsetse fly), जुआं (Louse), रैट फ्ली (Rat Flea), खटमल (Bed bug) आदि ऐसे हैं जो अनेकों बीमारियां फैलाते हैं। ये कीड़े जब किसी रोगी को काटते हैं और उसका खून चूसते हैं तो रोगी से बीमारी के कीटाणु इसके शरीर में आ जाते हैं। यही कीड़ा जब किसी स्वस्थ व्यक्ति को काटता है तो अपनी सुई जैसी खोखली नली द्वारा लार (Saliva) के साथ उस रोग के कीटाणु शरीर में प्रवेश करा देता है। ये कीटाणु उसके शरीर में पहुंच कर स्वस्थ व्यक्ति को भी रोगी बना देते हैं।

एनोफेलीज (Anopheles) मच्छर के काटने से मलेरिया रोग फैलता है, ट्सेट्से मक्खी के काटने से स्लीपिन्ग सिकनेस (Sleeping Sickness) नामक भयानक बीमारी फैलती है। जुओं के काटने से टायफाइड (Typhoid) का रोग फैलता है। रैट फ्ली के काटने से प्लेग (Plague) के कीटाणु शरीर में प्रवेश कर जाते हैं। खटमलों के काटने से त्वचा संबन्धी रोग पैदा हो जाते हैं। ये कीड़े हमें रोग फैलाने के इरादे से नहीं काटते बल्कि स्वयं जीवित रहने के लिए हमारा खून चूसने के इरादे से काटते हैं। अब आप सोचते होंगे कि जब ये खून चूसते हैं तो रोग के कीटाणु हमारे शरीर में कैसे प्रवेश कर जाते हैं! खून चूसने से पहले ये थोड़ी सी लार हमारे शरीर के अन्दर भेजते हैं ताकि खून सूख कर गाढ़ा (Clot) न हो जाए। इसी लार के साथ रोग के कीटाणु शरीर में प्रवेश कर जाते हैं।

कुछ डंक मारने वाले कीड़े भी हमारे दुश्मन हैं; जैसे शहद की मक्खी और बर्र (Wasp)। यद्यपि इनके डंक मारने से रोग तो नहीं फैलते परंतु दर्द बहुत होता है। इन कीड़ों का डंक पूंछ की नोक पर होता है। इसका संबंध एक विष-ग्रन्थि से होता है। ये कीड़े इस डंक को अपनी रक्षा के लिए हथियार के रूप में प्रयोग करते हैं। जब ये डंक मारते हैं तो डाक्टर के इन्जेक्शन की भांति कुछ ज़हरीला पदार्थ हमारे शरीर में भेज देते हैं। इसी ज़हरीले पदार्थ के कारण त्वचा पर सूजन आ जाती है और दर्द होता है।



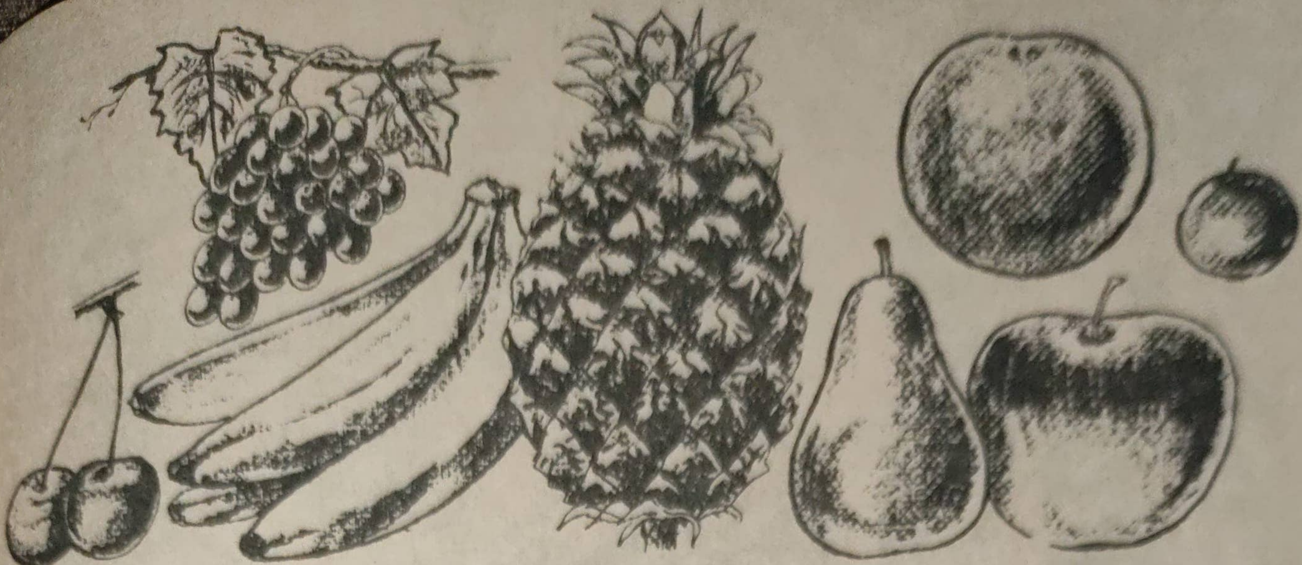
छुई-मुई का पौधा छूने से क्यों मुरझा जाता है?

वनस्पति विज्ञान में छुई-मुई (Touch me not) के पौधे को मिमोसा पुडिका (Mimosa Pudica) कहते हैं। इसकी पत्तियों की संयुक्त संरचना (Compound Structure) होती है। ध्यान से देखने पर पता लगता है कि जिस स्थान पर ये पत्तियां डालियों से जुड़ी होती हैं, वहां कुछ मोटे-मोटे उभार होते हैं। इन उभारों में अनेकों पतली दीवारों वाली कोशिकाएं होती हैं। जब इन कोशिकाओं द्वारा पानी सोख लिया जाता है तो ये फूल जाती हैं और पानी निकलने पर ये सिकुड़ जाती हैं।

छुई-मुई के पौधे की पत्तियां स्पर्श के प्रति संवेदनशील (Sensitive) होती हैं। जब हम इसकी पत्ती को छूते हैं तो पतली दीवारों वाली कोशिकाओं से पानी तने में चला जाता है। परिणाम यह होता है कि ये कोशिकाएं सिकुड़ जाती हैं और पत्तियों का तनाव खत्म हो जाता है जिससे उनमें ऐंठन पैदा हो जाती है। इसी को हम छुई-मुई का मुरझाना कहते हैं।

छुई-मुई का मुरझाना केवल तभी होता है, जब कोई वस्तु इसकी पत्तियों को छूती है। कोई कीड़ा या छड़ और यहां तक कि पानी की बूंदों के स्पर्श द्वारा भी इसकी पत्तियां मुरझा जाती हैं। मुरझाने की क्रिया कुछ क्षणों में ही हो जाती है, लेकिन पत्तियों को अपनी मूल अवस्था में आने में आधे से एक घंटे तक का समय लग जाता है।

इस तरह मुरझाने के गुण के कारण ही छुई-मुई का पौधा सारे संसार में प्रसिद्ध है। इसी पौधे की भांति कुछ दूसरे पौधे भी हैं जो छूने पर मुरझा जाते हैं लेकिन उन्हें मुरझाने में समय लगता है। आमतौर पर यह देखा गया है कि पौधों को पानी न मिलने पर उनकी पत्तियां मुरझा जाती हैं। यही क्रिया छुई-मुई में भी होती है, लेकिन बहुत तेजी के साथ होती है।



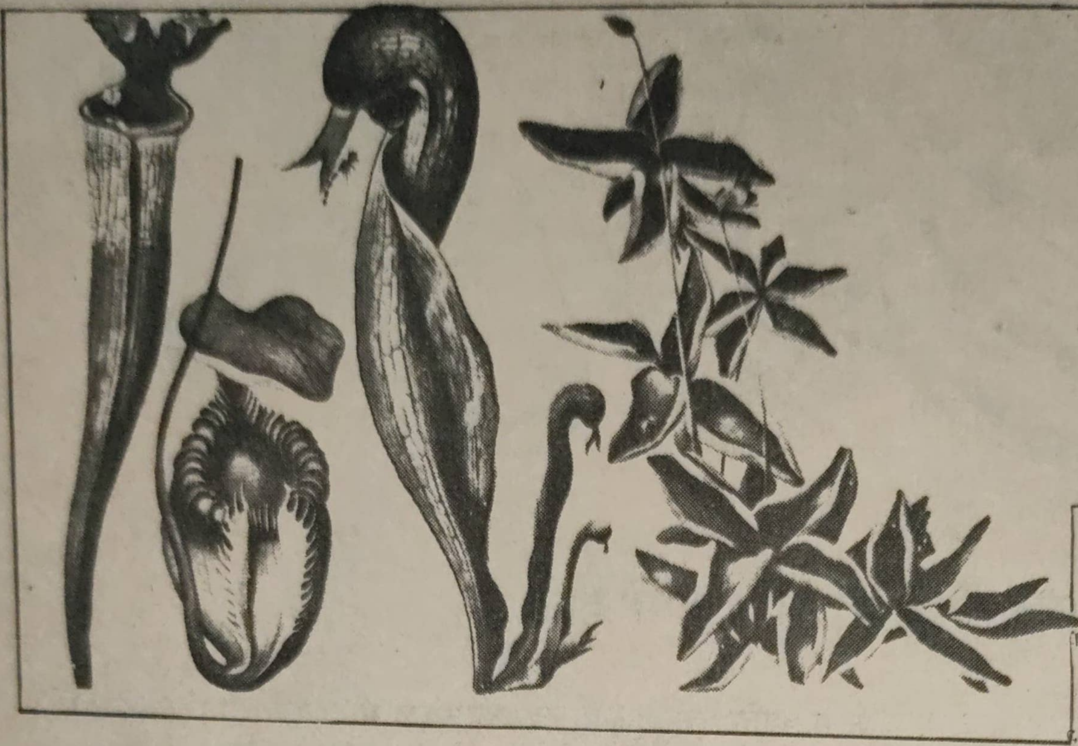
फल खट्टे या मीठे क्यों होते हैं?

तरबूज, खरबूजा, चीकू, अंगूर, सेब, पके आम आदि ऐसे फल हैं, जिनका स्वाद मीठा होता है, लेकिन नीबू, आंवला, संतरा, कच्चे आम आदि फलों का स्वाद खट्टा होता है। किन्हीं दो प्रकार के फलों के स्वाद में कुछ न कुछ अंतर अवश्य होता है। स्वाद की भिन्नता हर फल का अपना विशिष्ट गुण है। अब प्रश्न यह उठता है कि अलग-अलग फलों का स्वाद अलग-अलग क्यों होता है?

किसी फल का स्वाद उसमें उपस्थित यौगिकों (Compounds) पर निर्भर करता है। आमतौर पर किसी भी फल के अंदर चीनी (Fructose), कुछ अम्ल (Acids), विटामिन (Vitamins), : स्टार्च (Starch), प्रोटीन (Protein) और सेल्यूलोज (Cellulose) होते हैं। ये सभी पदार्थ फल के अंदर मिश्रित अवस्था में होते हैं। इन पदार्थों की मात्रा अलग-अलग किस्म के फलों में अलग-अलग होती है। जिन फलों में चीनी की मात्रा अधिक होती है उनका स्वाद मीठा होता है और जिन फलों में अम्लों की मात्रा अधिक होती है उनका स्वाद खट्टा होता है। संतरा एक ऐसा फल है जिसमें चीनी और अम्ल दोनों की ही मात्रा लगभग बराबर होती है इसलिए उसका स्वाद खट्टा-मीठा होता है।

आमतौर पर कच्चे फलों में अम्लों की मात्रा अधिक होती है, लेकिन पक जाने पर अम्लों की मात्रा तो कम हो जाती है पर चीनी की मात्रा बढ़ जाती है। यही कारण है कि कच्चा आम खट्टा होता है, लेकिन पका आम मीठा होता है। कच्चे केले में स्टार्च अधिक होता है, लेकिन पक जाने पर यही स्टार्च चीनी में बदल जाता है जिससे केले का स्वाद मीठा हो जाता है। फल चाहे पेड़ पर पके या कृत्रिम तरीकों से पकाया जाए, उसमें रासायनिक परिवर्तन हमेशा ही होते हैं। दोनों ही पकाने के तरीकों में चीनी की मात्रा बढ़ जाती है जिससे फलों में मिठास आ जाती है। इस पकने की प्रक्रिया में रासायनिक परिवर्तनों के कारण फल का आम्लिक गुण कम होता जाता है और उनमें मीठापन आ जाता है।

एक प्रकार के दो फलों के स्वाद में भी अंतर होता है। दो सेब या दो आमों का स्वाद कभी भी एक सा नहीं होता। उनके स्वाद में कुछ न कुछ अंतर अवश्य होता है। उसका कारण है कि एक ही प्रकार के फल में भी अनेक प्रकार की उपजातियां होती हैं और फिर स्थान, जलवायु, उगाने के तरीके, खाद, पानी आदि की भिन्नता से उनमें उपस्थित यौगिकों की मात्रा एक समान नहीं होती। अतः उनका स्वाद भी एक सा नहीं होता। नीबू आदि खट्टे फल पकने पर भी मीठे नहीं होते क्योंकि इनमें अम्ल ही अधिकतम मात्रा में होता है जो पकने पर चीनी में परिवर्तित नहीं होता।





क्या पेड़-पौधे भी मांसाहारी होते हैं?

आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि कुछ पौधे ऐसे हैं जो कीड़ों को खा जाते हैं। ऐसे पौधों को कीट-भक्षी (Insectivorous) कहते हैं। ये पौधे स्वयं तो प्रोटीन बना नहीं सकते इसलिए कीड़े-मकोड़ों को खाकर ही अपनी प्रोटीन की आवश्यकता पूरी करते हैं। ऐसे पौधों के अनेक उदाहरण हैं और अलग-अलग कीट-भक्षी पौधों का जन्तुओं को पकडने का अपना-अपना तरीका होता है।

पिचर प्लान्ट (Pitcher Plant) नामक पौधे की पत्ती का आगे का हिस्सा एक छोटे से घड़े की तरह होता है। इसका रंग बहुत ही आकर्षक होता है। इसमें एक चिपचिपा तरल पदार्थ होता है। घड़े के द्वार पर छोटे-छोटे रेशे होते हैं जो कीड़ों को प्रवेश तो कर जाने देते हैं लेकिन निकलने नहीं देते। सुन्दर रंग से आकर्षित होकर जब कोई कीड़ा इस घड़े में घुस आता है तो फिर निकल नहीं पाता। घड़े के रस में यह फंस जाता है और पौधा उसे पचा लेता है। (ऊपर का चित्र देखें) अमरीका में पाया जाने वाला कोबरा प्लान्ट (Cobra Plant) जो सांप की तरह दिखता है, कीड़ों को खा जाता है। इसका भी घड़े के आकार का मुंह होता है।

सन ड्यू (Sun Dew) नामक पौधे की पत्तियों पर रोम (Hairs) होते हैं। इन रोमों की नोक पर एक तरल पदार्थ की बूंदें होती हैं जो बहुत ही सुन्दर लगती हैं। जैसे ही कोई कीड़ा आकर्षित होकर पत्ती पर आता है ये रोम झुककर उसे पकड़ लेते हैं और अपने रस द्वारा कीड़े को पचा लेते हैं। पचा हुआ मांस पत्तियों द्वारा अवशोषित (Absorb) कर लिया जाता है। इसके बाद ये रोम फैल जाते हैं।

अमरीका में वीनस फ्लाई ट्रैप (Venus Fly Trap) नामक पौधा मिलता है। इसकी पत्ती के दोनों किनारों पर लाल रंग के सुन्दर उभार होते हैं। जब कोई कीड़ा पत्ती पर बैठता है तो पत्ती किताब की तरह बन्द हो जाती है। पत्ती में बन्द हुए कीड़े को पौधा पचा लेता है। यूटीक्यूलेरिया (Uticularia) पानी का पौधा है। यह संसार के सभी भागों में पाया जाता है। पानी में डूबी इसकी जड़ों में गांठों के समान ब्लैडर (Bladder) होते हैं। छोटे-छोटे जल के कीड़े जब ब्लैडर में प्रवेश कर जाते हैं तो इसके द्वार पर लगे रोम उन्हें फिर बाहर नहीं आने देते। ब्लैडर की दीवारों से पाचक रस निकलता है जो इन छोटे-छोटे जन्तुओं के शरीर के प्रोटीन को चूस लेता है।

इसी प्रकार शिमला की पहाड़ियों में इन्डियन पाइप (Indian Pipe) नामक पौधा पाया जाता है जो कीड़ों को खा जाता है। इसके अतिरिक्त और भी बहुत से कीट-भक्षी पौधे संसार में मिलते हैं।



क्या कुछ पौधे जहरीले भी होते हैं?

लगभग 2500 वर्ष पहले यूनान के एथेन्स शहर में सुकरात (Socrates) नाम के एक महान दार्शनिक पैदा हुए थे जो वहां के युवकों को जीवन के सही रास्तों के विषय में शिक्षा देते थे। यूनान के अधिकारी वर्ग को यह पसन्द न था। वहां के अधिकारी वर्ग ने नाराज होकर उन्हें मृत्युदंड दिया था। मृत्युदंड भी ऐसा था कि सुकरात मर तो जाएं लेकिन मरते समय उन्हें कष्ट नहीं होना चाहिए। बिना कष्ट की मृत्यु के लिए उन्हें हेमलौक नामक विष का प्याला पीने के लिए दिया गया था। इस विष को पीने के बाद धीरे-धीरे उनका शरीर ठंडा होता गया और वे मर गए। क्या तुम जानते हो कि यह हेमलौक विष क्या था।

हेमलौक (Hemlock) एक पौधा होता है। इसके सफेद फूल होते हैं। इनसे दुर्गन्ध आती है। यह पौधा नम स्थानों पर पैदा होता है। इसकी जड़ों और बीजों से ही केनीन (Caniine) नाम का विष तैयार किया जाता है। इस विष से शरीर के सभी अंगों में पक्षाघात (Paralysis) होने लगता है। पैरों से शुरू होकर हृदय तक सभी अंगों का पक्षाघात हो जाता है और आदमी मर जाता है।

हेमलौक पौधे के अतिरिक्त बहुत से ऐसे दूसरे पौधे भी हैं जो इससे भी अधिक जहरीले हैं। नक्सवोमिका (Nux vomica) नाम का पौधा जो एशिया के देशों में पाया जाता है बहुत जहरीला होता है। इस पर सन्तरे के आकार का फल आता है जिसमें पांच बीज होते हैं। इन्हीं बीजों से स्ट्राइचनाइन (Strychnine) नाम का जहर बनाया जाता है। इस जहर से श्वास क्रिया रुक जाती है और आदमी की मृत्यु हो जाती है।

मीडो सैफरन (Meadow Saffron) के पौधे के बीजों से कोलचीसाइन (Colchicine) नाम का विष बनाया जाता है। इसके विष का प्रभाव धीरे-धीरे होता है। डाक्टर लोग इस विष को गठिया (Gout) के इलाज के लिए प्रयोग करते हैं।

चेरी लौरल (Cherry Laurel) से बहुत ही प्रभावशाली विष प्रुजिक एसिड (Prussic Acid) प्राप्त होता है। इसी प्रकार थोर्न एपल (Thorn Apple), केपर स्पर्ज (Caper Spurge), फॉक्स ग्लोव (Fox Glove), नाइट शेड (Night Shade), मोन्क सूद (Monk Sood) आदि पौधे भी विषैले हैं। इनके अतिरिक्त और भी बहुत से ऐसे पौधे हैं जो जहरीले होते हैं।

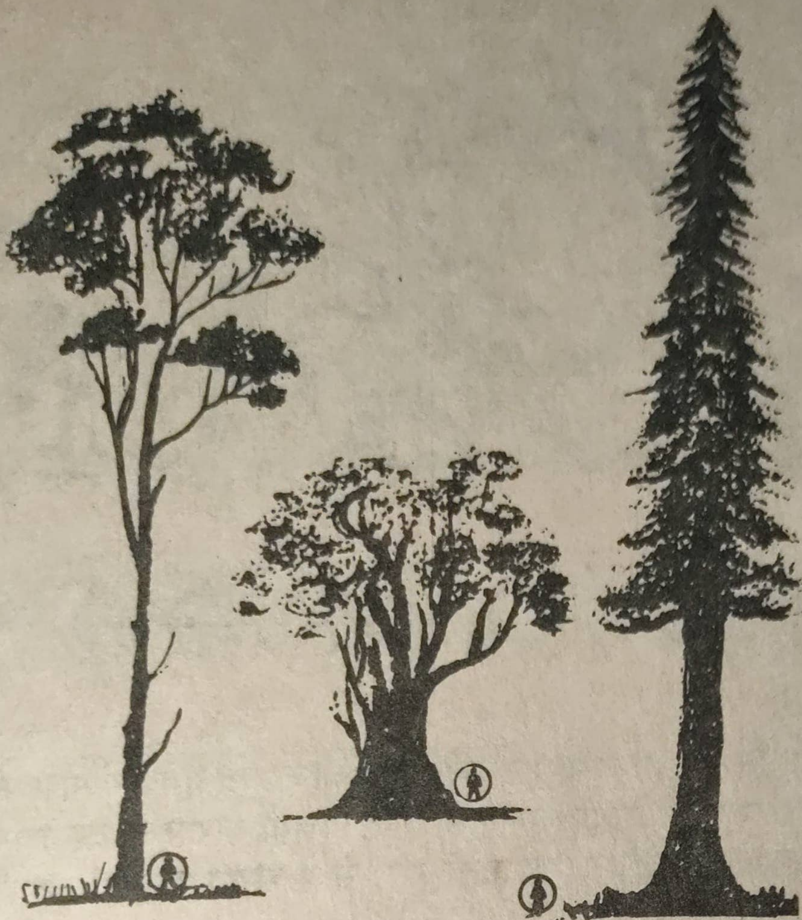


पेड़-पौधों की उम्र कैसे ज्ञात की जाती है ?

उम्र के आधार पर पेड़-पौधों को तीन वर्गों में बांटा जाता है—एकवर्षीय (Annuals), द्विवर्षीय (Biannuals) और बहुवर्षीय (Perennial)। एकवर्षीय पौधे वे हैं जो एक वर्ष में ही पैदा होते हैं, बड़े होते हैं, फल देते हैं और मर जाते हैं। गेहूं, जौ, चना, मटर, टमाटर आदि के पौधों का जीवन काल एक वर्ष का होता है। द्विवर्षीय पौधों का जीवन काल दो वर्ष का होता है। पहले वर्ष में इन पर पत्तियां और दूसरे वर्ष में फूल और फल आते हैं और उसके बाद ये मर जाते हैं। फौक्स ग्लोव (Fox glove) और होली हौक (Hollyhock) के पौधे इसी श्रेणी में आते हैं। बहुवर्षीय पौधे दो साल से अधिक जिन्दा रहते हैं। इन्हें आमतौर पर वृक्ष या झाड़ी कहा जाता है। ये बहुत बार फूलते और फलते हैं। नीम, आम, जामुन, अमरूद आदि के वृक्ष इसी श्रेणी में आते हैं। कुछ बहुवर्षीय वृक्षों की उम्र तो 4000 वर्ष से भी अधिक मानी जाती है। कैलीफोर्निया में मिलने वाले ग्रेट सिकुआ वृक्षों की उम्र 4000 वर्ष से अधिक बताई जाती है। यू (Yew) का वृक्ष 3000 वर्ष तक जिन्दा रहता है। चेस्टनट (Chestnut) दो हजार वर्ष और ओक (Oak) 1500 वर्ष तक जिन्दा रहता है।

अब प्रश्न उठता है कि किसी वृक्ष की उम्र किस प्रकार ज्ञात की जाती है। वैज्ञानिकों ने इसके लिए एक बहुत ही आसान तरीका निकाला है। यह तरीका वृक्ष के तने की वृद्धि के नमूने पर आधारित है। यदि आप पेड़ के तने में से एक गोल चकत्ती काटें तो उस पर गोल घेरे दिखाई देंगे। ये गोल घेरे ही वृक्ष की उम्र का रिकार्ड हैं। वास्तव में होता यह है कि वृक्ष का तना उम्र के साथ-साथ छाल के अन्दर मोटा होता जाता है। जाड़ों और पतझड़ में बनने वाली लकड़ी अधिक घनत्व वाली और सख्त होती है। बसन्त और गर्मी में बनने वाली लकड़ी मुलायम और कम घनत्व वाली होती है।

इस प्रकार लकड़ी बनने से हर साल एक-एक घेरा बनता जाता है। इनमें एक घेरा भूरे रंग का और दूसरा क्रीम जैसे रंग का होता है। इस प्रकार तने से काटी गई चकत्ती के केन्द्र से छाल तक जितने घेरे होंगे वृक्ष की उतनी ही उम्र होगी। (ऊपर का चित्र देखें) केन्द्र वाले हिस्से को पिथ (Pith) कहते हैं।



पेड़ कितने लम्बे हो सकते हैं?

आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि कैलीफोर्निया (California) के जंगलों में एक ऐसा विशालकाय पेड़ मिलता है जिसका वजन 2000 टन से भी अधिक होता है। इसमें लगभग 30,000 घन फुट लकड़ी होती है। इस पेड़ का एक नमूना कैलीफोर्निया के सिकुआ नेशनल पार्क (Sequoia National Park) में है। जमीन के पास इसके तने का व्यास 10 मीटर है और इसकी ऊंचाई 90 मीटर है। इन वृक्षों को सिकुआ कहते हैं। ये दो प्रकार के होते हैं। सिकुआ गिगन्टीआ (Sequoia gigantea) और रेडवुड (Red-wood)। ये आकार में तो बड़े होते ही हैं परंतु इनकी उम्र बहुत अधिक होती है। ऐसा कहा जाता है कि इनकी उम्र 4000 वर्ष तक होती है। ईसा के जन्म के समय जिन पेड़ों की उम्र 1000 वर्ष के लगभग थी वे आज भी जिन्दा हैं।

लम्बाई के हिसाब से सबसे लम्बा पेड़ यूकेलिप्टस (Eucalyptus) का है। इसकी सैकड़ों किस्में होती हैं। इसका सबसे लम्बा पेड़ दक्षिणी आस्ट्रेलिया में है। इसकी ऊंचाई 95 मीटर है। इन पेड़ों की पत्तियों से यूकेलिप्टस का तेल निकाला जाता है। यद्यपि इनकी लम्बाई सिकुआ से अधिक होती है परन्तु आकार कम होता है।

बाओबाब (Baobab) नाम का वृक्ष जो अफ्रीका में मिलता है यद्यपि लम्बाई में कम होता है लेकिन आकार में बहुत विशाल होता है। इसके तने का व्यास भी 10 मीटर तक होता है जो लगभग सिकुआ के बराबर ही है। यह काफी लाभदायक वृक्ष है। इसकी छाल से रस्सी और कपड़े बनाए जाते हैं। इसकी लकड़ी मुलायम होती है इसलिए पेड़ को खोखला करके लोग अपने रहने के लिए इसे घर की तरह इस्तेमाल करते हैं। कुछ वृक्षों के तनों को काटकर तो बीच में से सड़कें तक निकाली गई हैं।



फल व सब्जी में क्या अन्तर है?

आमतौर पर लोग किसी पौधे के फूल से बनने वाले बीजयुक्त गूदेदार भाग को फल कहते हैं और दूसरे छोटे-छोटे मुलायम पौधों से प्राप्त होने वाले तनों, पत्तियों और फूलों को, जिन्हें भोजन के रूप में प्रयोग किया जाता है, सब्जी कहते हैं। लेकिन विज्ञान की दृष्टि से ये परिभाषाएं अधिक ठीक नहीं हैं।

वनस्पति शास्त्र (Botany) के अनुसार पौधे के बीज पैदा करने वाले भाग को फल कहा जाता है और पौधों के दूसरे भागों को, जो खाने के काम आते हैं, सब्जी कहा जाता है। वैज्ञानिकों ने फलों को तीन वर्गों में बांटा है। (i) बीज वाले गूदेदार फल; जैसे सेब, सन्तरा, तरबूज, खरबूजा आदि (ii) गुठली वाले फल; जैसे बेर, चैरी, आड़ू (Peach) आदि और (iii) सूखे फल; जैसे बादाम, अखरोट आदि। आप को आश्चर्य होगा कि वनस्पति शास्त्रियों के अनुसार सेम और मटर की फली भी फलों की श्रेणी में आती है। खीरा और ककड़ी (Cucumbers and Marrows) भी फल हैं। बन्दगोभी (Cabbage), शलजम (Turnip), मूली (Radish), फूलगोभी (Cauliflower) आदि सभी सब्जियों की श्रेणी में आते हैं। प्याज, अरबी, आलू आदि भी सब्जियों में ही आते हैं।

टमाटर फल है या सब्जी— इस प्रश्न पर अमरीका में एक बहुत लम्बी-चौड़ी बहस हुई। इस बात का फैसला वहां के सर्वोच्च न्यायालय (Supreme Court) को करना पड़ा। वनस्पति शास्त्र के अनुसार टमाटर एक फल है और उपयोग के आधार पर यह एक सब्जी है। इसके दोनों पहलुओं को ध्यान में रखते हुए सन 1893 में सुप्रीम कोर्ट ने यह फैसला दिया कि व्यापार की दृष्टि से टमाटर एक सब्जी है। विज्ञान के लिए इसे फल माना जा सकता है। असल बात यह है कि बहुत से फलों और सब्जियों की वैज्ञानिक परिभाषा हमारी आम बोलचाल से मेल नहीं खाती। हमारी बोलचाल में कुछ फल ऐसे हैं जिन्हें हम सब्जी कहते हैं,जैसे बैंगन, मटर की फली आदि और कुछ सब्जियां भी ऐसी हैं,जिन्हें हम फल कहते हैं जैसे कच्चा केला।

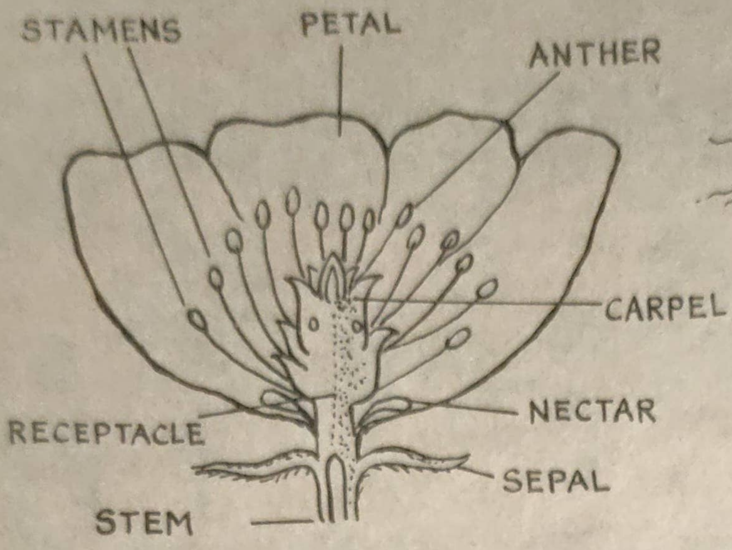


वृक्षों का पतझड़ क्यों होता है ?

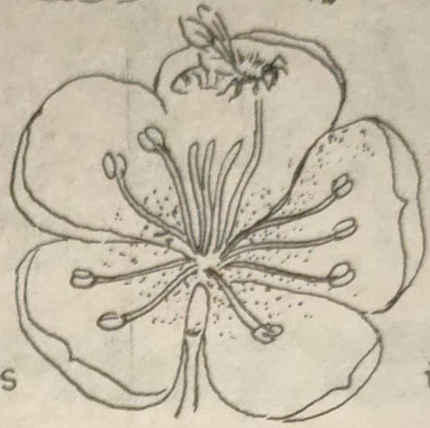
अधिकतर पेड़-पौधे ऐसे हैं जिनकी पत्तियां शिशिर ऋतु (Autumn) में गिर जाती हैं और वसन्त ऋतु (Spring) में इन पर नई पत्तियां आ जाती हैं। पतझड़ के बाद ये वृक्ष कंकाल जैसे लगते हैं। ऐसे वृक्षों को, जिनका हर वर्ष पतझड़ होता है, डेसीडुअस (Deciduous) वृक्ष कहते हैं। कुछ पेड़ ऐसे भी हैं जिनकी पत्तियां सदा ही हरी दिखाई देती हैं। उनके पतझड़ होने का पता ही नहीं लगता। इन वृक्षों को सदाबहार (Evergreen)वृक्ष कहते हैं। क्या तुम जानते हो कि कुछ वृक्ष सदा हरे-भरे क्यों रहते हैं?

पतझड़ सभी वृक्षों का होता है लेकिन जिन वृक्षों का पतझड़ हर वर्ष होता है उनकी पत्तियों की उम्र एक वर्ष होती है। सदाबहार पौधों की पत्तियों की उम्र दो से तीन वर्ष तक होती है। जिन पत्तियों की उम्र दो या तीन वर्ष होती जाती है वे गिरती जाती हैं और उनके स्थान पर नई पत्तियां आती जाती हैं। सदाबहार वृक्षों से कुछ पुरानी पत्तियां शिशिर ऋतु में गिर जाती हैं, लेकिन उन पर काफी नई पत्तियां लगी ही रहती हैं। गिरी पत्तियों के स्थान पर नई पत्तिया आ जाती हैं और इनकी हरियाली का चक्र चलता रहता है।

सदाबहार पौधों में चीड़ (Pines) और देवदार (Firs) के विषय में अधिकतर लोग जानते हैं। इनके अतिरिक्त और भी बहुत से पेड़ हैं जो सदा ही हरे-भरे रहते हैं। योरुप में मिलने वाला इटैलियन साइप्रेस (Italian Cypress) नामक वृक्ष सदा हरा-भरा दिखता है। जैतून (Olive) का पौधा भी सदाबहारों की श्रेणी में आता है। इसका तेल हमारे लिए बहुत ही उपयोगी है। मैगनोलिया (Magnolia) के पौधों को सजावट के लिए इस्तेमाल किया जाता है, क्योंकि इनके सफेद फूल बहुत सुन्दर लगते हैं और इनका पतझड़ भी नहीं होता। रोजमेरी (Rosemary) के सदाबहार पौधे से इत्र बनाया जाता है। उत्तरी ब्रिटेन में मिलने वाला छोटी और तीखी पत्तियों वाला जूनीपर (Juniper) पौधा अपनी हरियाली के लिए प्रसिद्ध है। इन पौधों के अतिरिक्त ब्रिटेन के मिरटिल (Myrtle), उत्तरी अफ्रीका के ओलीन्डर (Oleander), ओक का वृक्ष (Oak), आइवी (Ivy) की बेल, सन्तरे का पेड़, ताड़ (Palm) का लम्बा पेड आदि सभी सदाबहार वृक्ष हैं। चाय का पौधा भी सदाबहारों की श्रेणी में आता है।







POLLINATIONS

फूलों से बीज कैसे पैदा होते हैं?

फूलों से बीजों का बनना और बीजों से पौधों का उगना प्रकृति का कभी भी न खत्म होने वाला क्रम है। हम सभी फूलों को देखकर खुश होते हैं लेकिन यह नहीं जानते कि उनका पौधों के लिए कितना महत्त्व है। फूलों से ही फल पैदा होते हैं और फलों से बीज। क्या तुम जानते हो कि फूलों से बीज कैसे पैदा होते हैं।

फूलों से बीज बनने की क्रिया को पुष्पनिषेचन या पुष्प गर्भाधान (Pollination) कहते हैं। पुष्प गर्भाधान की क्रिया को समझने के लिए फूल के भागों को जानना जरूरी है।

फूल को ध्यानपूर्वक देखने से पता चलता है कि इसके डंठल के पास हरे रंग का एक घेरा होता है जिसे सेपाल (Sepal) कहते हैं। इसमें से फूल की पंखुड़ियां (Petals) निकलती हुई दिखाई देती हैं। इन पंखड़ियों के बीच में धागे जैसी संरचनाएं हैं जिनका ऊपर का भाग फूला हुआ होता है। इस भाग को स्टेमन (Stamen) कहते हैं। स्टेमन के धागे जैसे भाग को फिलामेन्ट (Filament) और ऊपर के फूले भाग को परागकोष (Anther) कहते हैं। इसी भाग में पराग कण (Pollen grains) होते हैं। परागकणों में स्पर्म कोशिका होती है जो गर्भाधान की क्रिया करती है। फूल के अन्दर के भाग को पिस्टिल (Pistil) कहते हैं। इसके तीन भाग होते हैं। ऊपर का भाग स्टिगमा (Stigma) कहलाता है, बीच का नलिका जैसा भाग स्टाइले (Style) कहलाता है और सबसे निचला भाग ओवरी (Ovary) या अंडाशय कहलाता है। इस भाग में अंड कोशिकाएं होती हैं। जब किसी प्रकार परागकण इस अंडाशय में पहुंच जाते हैं तो फूल में गर्भाधान की क्रिया सम्पन्न हो जाती है, जिसके फलस्वरूप कुछ दिन बाद बीज बन जाता है।

फूलों में गर्भाधान या परागनिषेचन की क्रिया मुख्य रूप से दो प्रकार से होती है। पहली क्रिया को आत्म परागनिषेचन (Self Pollination) की क्रिया कहते हैं। इस क्रिया में परागकण अपने आप गिरकर ओवरी तक पहुंच जाते हैं। सूरजमुखी में यही क्रिया होती है। दूसरी क्रिया को पर-परागनिषेचन की क्रिया कहते हैं। इस क्रिया में एक फूल के परागकण दूसरे फूल तक हवा या कीट-पतंगों द्वारा पहुंचाए जाते हैं। हवा के झोंके से परागकण उड़कर दूसरे फूल की ओवरी तक पहुंच जाते हैं। उड़ने वाले कीट-पतंगे फूलों की गंध और सुन्दर रंगों से आकर्षित होकर इनका रस चूसने आते हैं और अपने साथ परागकणों को दूसरे फूलों तक ले जाते हैं। ये परागकण ओवरी तक पहुंचकर गर्भाधान की क्रिया पूरी कर देते हैं। पानी के द्वारा भी परागकण एक फूल से दूसरे फूल पर पहुंच जाते हैं। पर-परागनिषेचन से स्वस्थ बीज पैदा होते हैं। गेहूं, सरसों, कपास आदि में पर-परागनिषेचन की क्रिया द्वारा ही बीज बनते हैं।



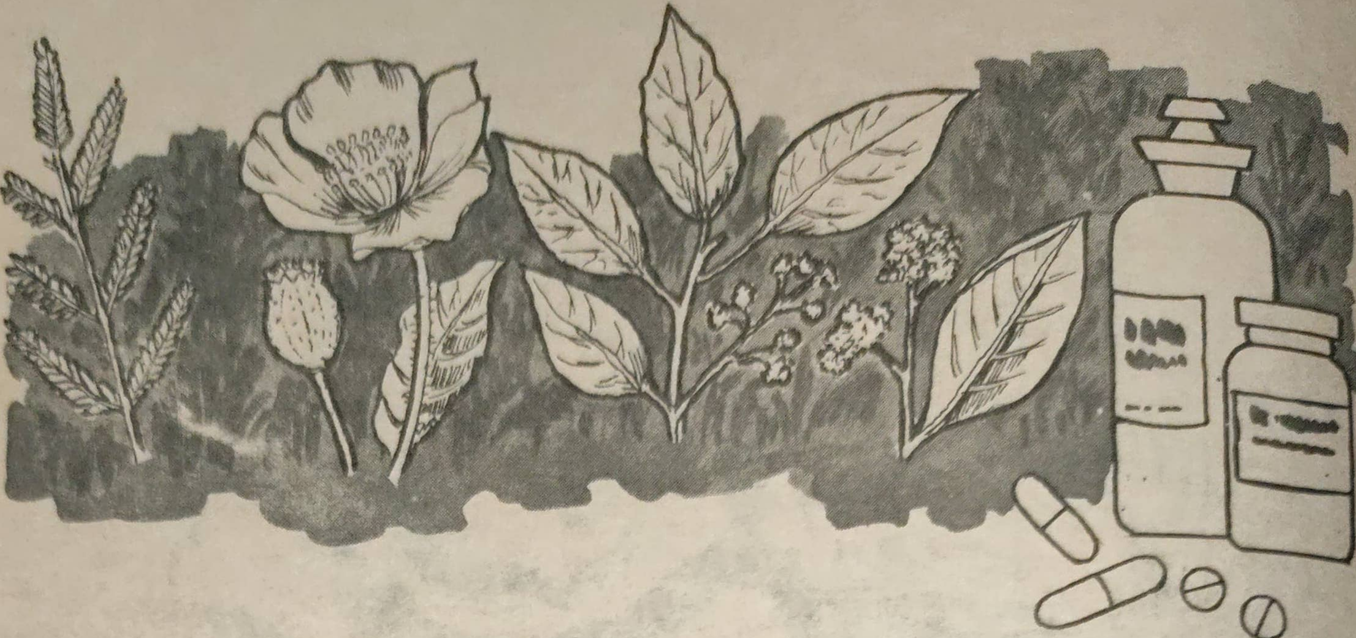
फूलों में सुगन्ध क्यों होती है ?

बसन्त ऋतु में जब हम किसी फूलों के बगीचे से गुजरते हैं तो फूलों की सुगन्ध से हमारा मन प्रसन्न हो जाता है। कुछ लोग सोचते हैं कि फूलों की सुन्दरता, मनमोहक रंग, पुष्परस (Nectar) और सुगन्ध प्रकृति ने मनुष्य को आनन्द देने के लिए बनाए हैं। लेकिन वास्तविकता कुछ और है। फूलों में ये सब चीजें उड़ने वाले कीट पतंगों को आकर्षित करने के लिए बनी है। फूलों की सुगन्ध, रंग और रस के कारण कीट-पतंगे इनकी ओर आकर्षित होकर इन पर आकर बैठते हैं तो अपने साथ ही वे फूलों के परागकणों को दूसरे फूलों तक ले जाते हैं। इन्हीं परागकणों से फूलों में गर्भाधान की क्रिया होती है जिसके फलस्वरूप बीजों का जन्म होता है। इन्हीं बीजों से पेड़-पौधों का वंश चलता रहता है।

भांति-भांति के फूलों में अलग-अलग प्रकार के तेल होते हैं और इन्हीं तेलों के कारण फूलों में गंध होती है। यह तेल धीरे-धीरे वाष्पित होते रहते हैं जिससे गंध का अनुभव होता है। फूलों के इन्हीं तेलों को निकाल कर इत्र बनाए जाते हैं। इत्र बनाने के कई तरीके हैं। एक तरीके में फूलों को एक बर्तन में रखकर भाप द्वारा गर्म किया जाता है। इस भाप के साथ तेल बाहर आ जाता है। इस भाप को पानी में से गुजारा जाता है। इस क्रिया में भाप के साथ आया फूलों का तेल पानी की सतह पर तैरने लगता है। इसे पानी से अलग कर लिया जाता है। यही फूलों का इत्र होता है। इत्र बनाने के और भी कई तरीके हैं। फ्रान्स में सबसे अधिक इत्र बनाया जाता है। यह देखा गया है कि 250 पौण्ड गुलाब के फूलों से करीब एक औन्स इत्र निकलता है।

इत्र बनाने में गुलाब, रात की रानी, केवड़ा, लैवेन्डर, चमेली आदि के फूलों का इस्तेमाल बहुत अधिक होता है।

एन्थोसाइनिन (Anthocyanin) नामक पिगमेन्ट के कारण फूलों में लाल, नीला और बैंगनी रंग पैदा हो जाता है। प्लास्टिड (Plastid) नामक पिगमेन्ट के कारण फूलों में दूसरे रंग दिखते हैं। ये पिगमेन्ट फूलों के रस में मिले रहते हैं। क्लोरोफिल और केरोटिन (Carotene) की उपस्थिति से फूलों में हरा रंग होता है।



पेड़-पौधों से हमें कौन-कौन सी दवायें प्राप्त होती हैं ?

पेड़-पौधों का महत्व किसी से छिपा नहीं हैं। अब तक लगभग तीन लाख से अधिक किस्म के पौधों का अध्ययन किया जा चुका है। इन पौधों से प्राप्त होने वाले अनेकों प्रकार के खाद्य पदार्थ, लकड़ी, ईंधन, कोयला, पेट्रोल, कागज आदि के विषय में हम सभी जानते हैं। इनके अतिरिक्त बहुत सी औषधियां भी हमें पेड़ पौधों से प्राप्त होती हैं। क्या तुम जानते हो कि कौन-कौन सी औषधियां हमें पेड़-पौधों से मिलती हैं।

हजारों प्रकार की औषधियां हमें पेड़-पौधों से प्राप्त होती हैं। मलेरिया के इलाज के लिए काम आने वाली कुनैन (Quinine) औषधि हमें सिनकोना नामक पौधे से प्राप्त होती है। हृदय रोग के लिए काम आने वाली डिजिटालिस (Digitalis) नामक दवा डिजिटालिस परपूरिया (Digitalis Purpurea) पौधे से प्राप्त होती है। रैमनस पर्शियाना (Rhamnus Purshiana) नामक वृक्ष की छाल को सुखाकर पेट साफ करने की दवा बनाई जाती है। अफीम (Opium, Poppy) के पौधे से मॉरफीन (Morphine) बनाई जाती है। यह एक दर्द कम करने वाली नशीली दवा है और सभी प्रकार के दर्दों के इलाज के काम आती है। पेन्सिलीन, स्ट्रेप्टोमाइसिन (Streptomycin) आदि दवाएं मोल्ड (Molds) नाम के पौधों से तैयार की जाती हैं जो अनेकों रोगों की चिकित्सा में प्रयोग होती हैं। बेलाडोना (Belladonna) प्लास्टर भी एक प्रकार के पौधे से ही प्राप्त होता है। अनेकों रोगों में काम आने वाले सभी विटामिन हमें पेड़-पौधों से ही प्राप्त होते हैं। भोजन की पाचन क्रिया में काम आने वाले एन्जाइम भी पेड़-पौधों से ही प्राप्त होते हैं। लगभग सभी एन्टीबायोटिक औषधियां पौधों से ही निकाली जाती हैं। एस्पिरिन (Aspirin), कैफीन (Caffeine) दवाएं जो उत्तेजना पैदा करती हैं, बनस्पति जगत की ही देन हैं। इस प्रकार हजारों प्रकार की दवाएं हम पेड़-पौधों से प्राप्त करते हैं।

पेड़-पौधों में उपस्थित सैल्यूलोज से कागज और कृत्रिम धागे बनाए जाते हैं। रबर भी एक प्रकार के पौधे के दूध से बनाया जाता है। चीड़ के वृक्ष से तारपीन का तेल प्राप्त होता है।

खैर नामक वृक्ष की छाल से कत्था बनाया जाता है। बहुत से रंग और पेन्ट भी पेड़-पौधों से प्राप्त किए जाते हैं। चन्दन के वृक्ष से अगरबत्ती और चन्दन का तेल बनाया जाता है। नाना प्रकार के फूलों से इत्र बनाया जाता है। एल्कोहल भी पेड़-पौधों से ही प्राप्त होता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि लाखों पदार्थ हमें पेड़-पौधों से ही मिलते हैं।



बिल्ली से बिल्ली और चूहे से चूहा ही क्यों पैदा होता है ?

बिल्ली से बिल्ली और चूहे से चूहा ही पैदा होता है। नीम के पेड़ पर आम नहीं लग सकते और आम के पेड़ पर अमरूद नहीं लग सकते। इन्सानों के बच्चे उनसे ही मिलते-जुलते पैदा होते हैं। यह एक सर्वविदित सत्य है कि सभी जीवित प्राणियों की सन्तान अपने मां-बाप से मिलती-जुलती पैदा होती है। क्या तुम जानते हो कि ऐसा क्यों है?

इन सब प्रश्नों का उत्तर आनुवंशिकता या पैतृकता (Heredity) के अध्ययन से मिलता है। आनुवंशिकता विज्ञान की वह शाखा है जिसमें हम उन कारणों का अध्ययन करते हैं जिनके द्वारा मां-बाप और उनके बच्चों में समानताएं पैदा होती हैं। हम यह भी अध्ययन करते हैं कि पैदा होने वाली संतति में मां-बाप से क्या-क्या भिन्नताएं हो सकती हैं।

अपने पूर्वजों से मिलने वाली विशेषताओं का ही दूसरा नाम आनुवंशिकता है। जीवों में जो गुण होते हैं वे उन्हें अपने माता पिता से अत्यन्त सूक्ष्म कणों के रूप में प्राप्त होते हैं। इन सूक्ष्म कणों को जीन्स (Genes) कहते हैं। जीन कोशिका का ही एक भाग है। हमारी प्रत्येक कोशिका के नाभिक (Nucleus) में लगभग 20,000 जीन होते हैं। लगभग 10,000 जीन मां से और 10,000 जीन पिता से प्राप्त होते हैं। ये सभी 20,000 जीन 46 क्रोमोसोमों में होते हैं और ये सभी क्रोमोसोम एक नाभिक के रूप में होते हैं जिसका आकार लगभग .01 मिलीमीटर होता है। गर्भाधान के समय 23 क्रोमोसोम पिता से और 23 माता से प्राप्त होते हैं। इस प्रकार क्रोमोसोमों के 23 जोड़े बन जाते हैं। जीन ही आनुवंशिकता की मूल इकाई है। सभी पौधों और जीवों में कुछ जीन नर से और कुछ मादा से आते हैं। पौधों और जीवों के सभी गुण इन्हीं जीन्स के कारण होते हैं।

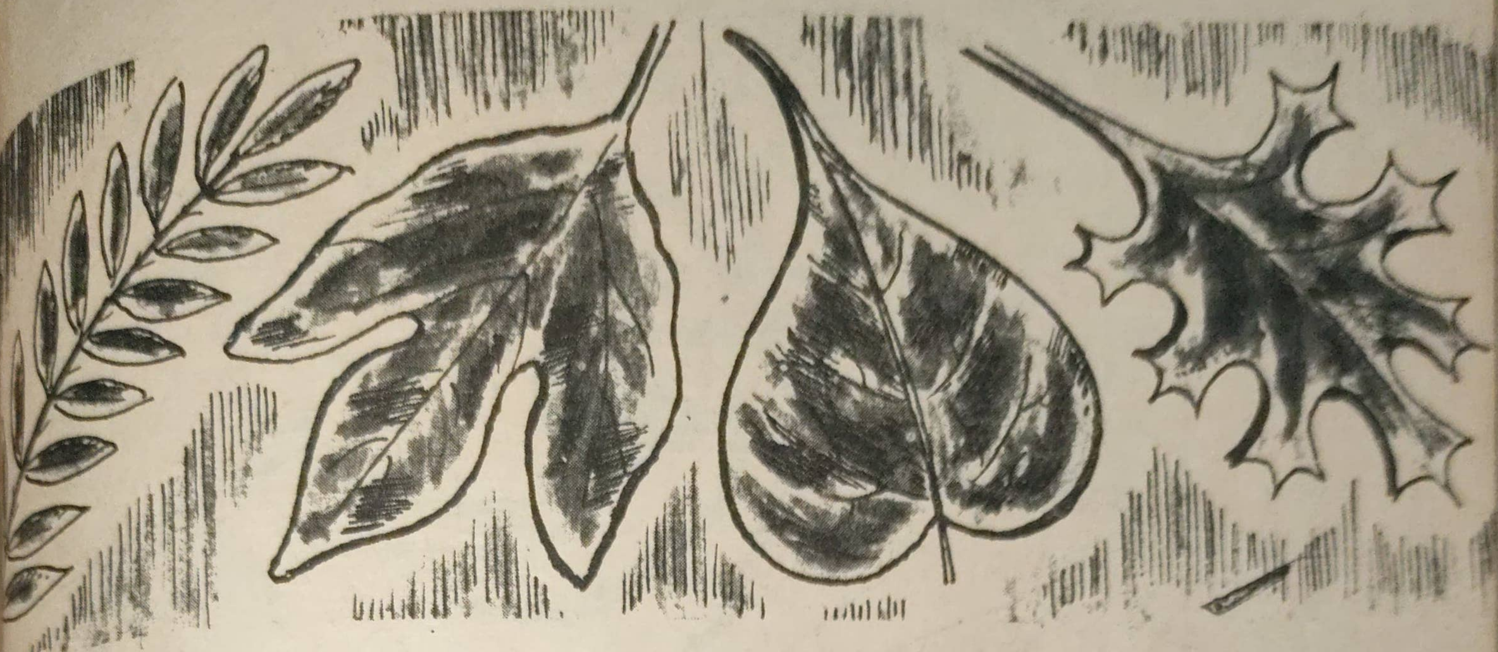
आनुवंशिकता का अध्ययन करने वालों में आस्ट्रिया के एक ईसाई पादरी ग्रेगर मेंडेल (Gregor Mendel) का नाम सबसे पहले आता है। उन्होंने मटर के पौधों पर बहुत से प्रयोग करके आनुवंशिकता के कुछ नियम स्थापित किए। इन्हें मेंडेल के नियम कहा जाता है। उन्होंने यह सिद्ध कर दिखाया कि मां-बाप से प्राप्त जीन्स में जो भी प्रधान (Dominant) होते हैं वही गुण बच्चों में भी प्रधान होते हैं। उदाहरण के लिए यदि मां-बाप में से एक की आंखें भूरी हैं और दूसरे की नीली हैं तो बच्चे की आंखें भूरी होंगी क्योंकि नीले रंग पर भूरे रंग की

प्रधानता है। यदि मां-बाप दोनों की आंखें नीली हैं तो बच्चे की आंखें भी नीली होंगी। इसी प्रकार लम्बे मां-बाप के बच्चे लम्बे और ठिगने मां-बाप के बच्चे ठिगने ही होंगे।

यदि कोई पौधा या जानवर दो तरह के जीन आनुवंशिकता द्वारा प्राप्त करता है और दोनों का प्रभाव बराबर रहता है तो दोनों के मिलने से तीसरी विशेषता पैदा होती है। लाल गाय और सफेद रंग के सांड से पैदा होने वाले बछड़े का रंग न तो लाल होगा और न सफेद बल्कि दोनों के बीच का होगा।

आनुवंशिकता के ज्ञान के आधार पर आज के वैज्ञानिक ऐसे पौधे और जानवर पैदा करने में समर्थ हुए हैं जो हमारी आवश्यकताओं को अधिक अच्छी तरह पूरी करते हैं। संकर (Hybrid) मक्का का उत्पादन इसी आधार पर किया गया है। कभी-कभी पौधों और जानवरों में परिवर्तन भी हो जाते हैं। ये परिवर्तन आमतौर पर वातावरण और जीन्स के कारण ही होते हैं।

आनुवंशिकता के विषय में अभी बहुत से ऐसे रहस्य हैं जिन्हें अभी तक कोई जान नहीं पाया है। आज के बहुत से वैज्ञानिक आनुवंशिकता के इन रहस्यों की गुत्थी सुलझाने में लगे हैं।



पेड़-पौधों की पत्तियों का रंग हरा क्यों होता है?

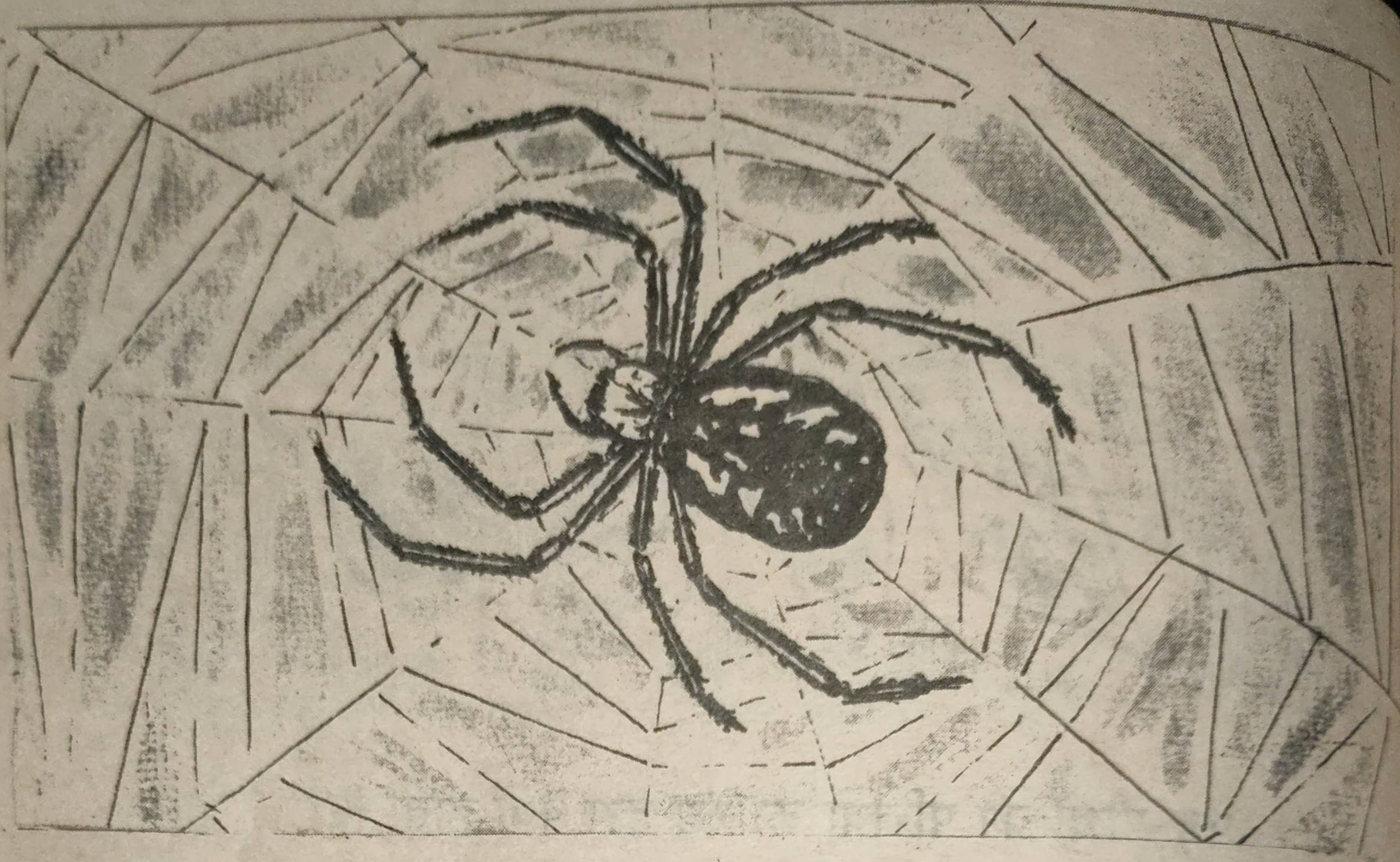
आम, जामुन, नीम आदि पेड़ों पर निकलने वाली नई पत्तियों (कोपलों) का रंग प्रारम्भ में गुलाबी होता है लेकिन यह थोड़े ही दिनों में हरे रंग में बदल जाता है। क्या तुम जानते हो ऐसा क्यों होता है?

पेड़-पौधों की पत्तियों में कुछ रंगीन पदार्थ होते हैं, इन्हीं पदार्थों के कारण पत्तियां रंगीन दिखाई देती हैं। उदाहरण के लिये पत्तियों में क्लोरोफिल (Chlorophyll) नाम का पदार्थ होता है जिसके कारण इनका रंग हरा हो जाता है। कुछ पौधों की पत्तियां ऐसी भी होती हैं, जिनमें कैरोटिन (Carotene) नाम का पदार्थ होता है जिसके कारण पत्तियों का रंग पीला दिखाई देता है। जिन पेड़ों की पत्तियों में क्लोरोफिल और कैरोटिन दोनों ही उपस्थित होते हैं उनका रंग पीलापन लिए हरा होता है।

कुछ पौधों की नई पत्तियों यानी कोंपलों में लाल रंग का एन्थोसाइनिन (Anthocyanin) नाम का पदार्थ होता है। इस पदार्थ की उपस्थिति के कारण ही कोंपलों का रंग गुलाबी या हल्का लाल दिखाई देता है। जैसे-जैसे समय बीतता है, इन कोंपलों में क्लोरोफिल और कैरोटिन की मात्रा बढ़ती जाती है जिससे इनका रंग हरा हो जाता है।

क्लोरोफिल के अणुओं की संरचना ऐसी होती है कि जब इस पर सूर्य का सफेद प्रकाश पड़ता है तो उसमें उपस्थित सात रंगों में से हरा रंग तो परावर्तित हो जाता है, पर शेष रंग इसके द्वारा अवशोषित कर लिए जाते हैं। हरा रंग परावर्तित हो कर हमारी आंखों तक पहुंचता है, जिससे ये पत्तियां हमें हरे रंग की दिखाई देती हैं।

क्लोरोफिल की सहायता से ही पौधे प्रकाश की उपस्थिति में अपना भोजन बनाते हैं। इस क्रिया को प्रकाश संश्लेषण (Photo Synthesis) कहते हैं। फफूंद, मशरूम आदि जिन पौधों में क्लोरोफिल नहीं होता वे अपना भोजन स्वयं नहीं बनाते, बल्कि उन्हें भोजन के लिए दूसरे प्राणियों या पौधों पर आश्रित रहना पड़ता है। ऐसे पौधों को परजीवी पौधे (Parasites) कहते हैं। अतः हम देखते हैं कि क्लोरोफिल पेड़-पौधों के जीवन के लिए बहुत ही आवश्यक है।



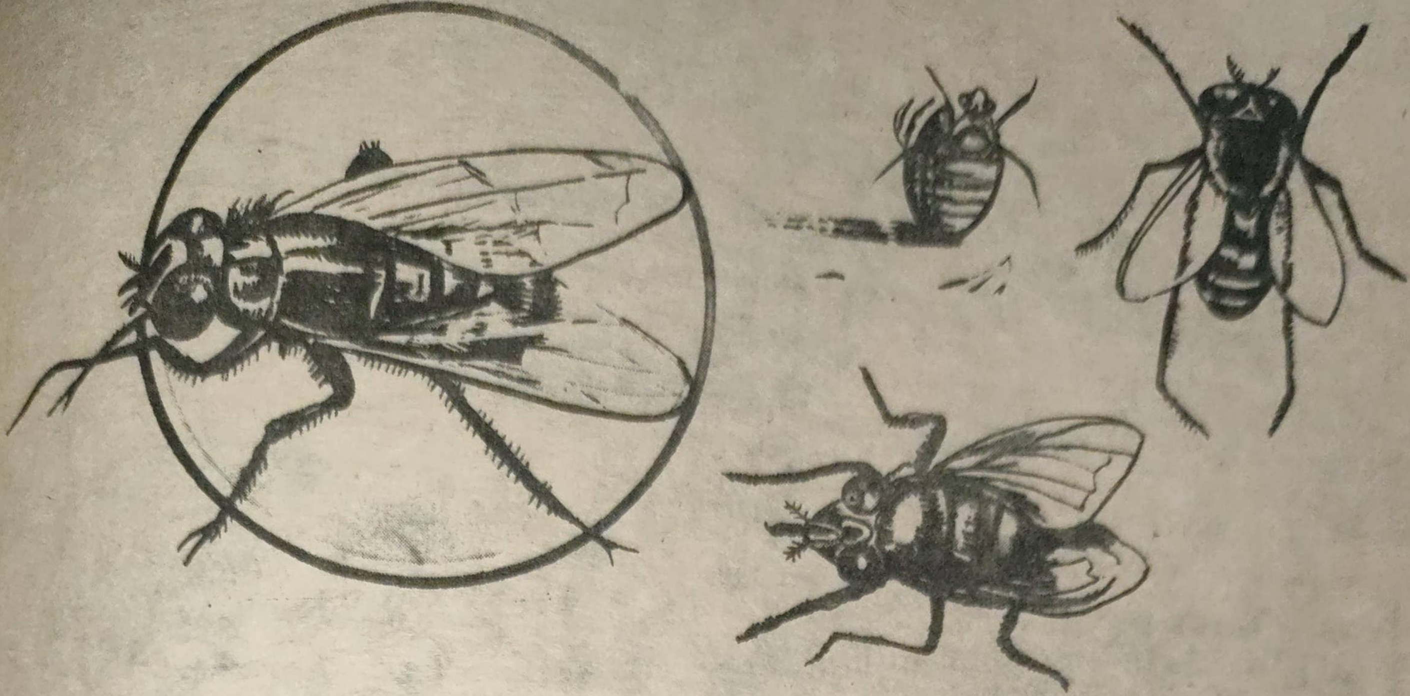
मकड़ी अपने बनाये जाल में खुद क्यों नहीं फंस जाती?

मकड़ी का जाल एक आश्चर्य की वस्तु है और इससे भी अधिक आश्चर्य की वस्तु स्वयं मकड़ी है। मकड़ी एक ऐसा जीव है जो हर मौसम में हवा, पानी, जमीन और जमीन के नीचे पाया जाता है। इनका आकार एक छोटे से बिंदु से लेकर 7 सेमी० तक होता है। कुछ मकड़ियां तो ऐसी हैं जो साल भर तक बिना पानी के जीवित रह सकती हैं। टार्नटुला (Tarntula) नाम की मकड़ी तो चिड़िया खाती है और 15 साल तक जिंदा रहती है। वैसे अधिकतर मकड़ियां 1 साल तक जिंदा रहती हैं। इनकी 8 टांगें और 8 आंखें होती हैं। इनके शरीर के केवल दो ही हिस्से होते हैं—सिर और धड़।

मकड़ी जिन पदार्थों से अपना जाल बनाती है उनका निर्माण इसके पेट की ग्रन्थियों में ही होता है। इसके पेट की नोक पर एक छोटे से छेद से यह द्रव पदार्थ महीन धागों के रूप में बाहर आता है, जो हवा के संपर्क में आने पर सूखकर ठोस द्रव में परिवर्तित हो जाता है। जाले के धागे कई प्रकार के होते हैं। कुछ धागे चिपचिपे तथा दूसरे मुलायम होते हैं। चिपचिपा धागा शिकार फंसाने का काम करता है। जैसे ही कोई मक्खी या छोटा कीड़ा इस चिपचिपे धागे के संपर्क में आता है, इससे चिपक जाता है और जाल में फंस जाता है। अब प्रश्न उठता है कि मकड़ी स्वयं इस जाल में क्यों नहीं फंस जाती है?

यह बड़े ही आश्चर्य की बात है कि मकड़ी अपने बनाये जाल में स्वयम् नहीं फंसती है। इसका कारण है कि इसके पैरों में एक प्रकार का तेल पैदा होता है जो इसे चिपचिपे धागों में नहीं फंसने देता और यह आनन्द से इधर उधर विचरण करती रहती है।

मकड़ियां कई प्रकार के जाल बनाती हैं। इनमें कुछ पहिए के आकार के होते हैं तो कुछ फनल (Funnel) के आकार के होते हैं। इनमें चिपकने वाले धागे अलग होते हैं। शिकार इन्हीं धागों के संपर्क में आकर फंसता है।



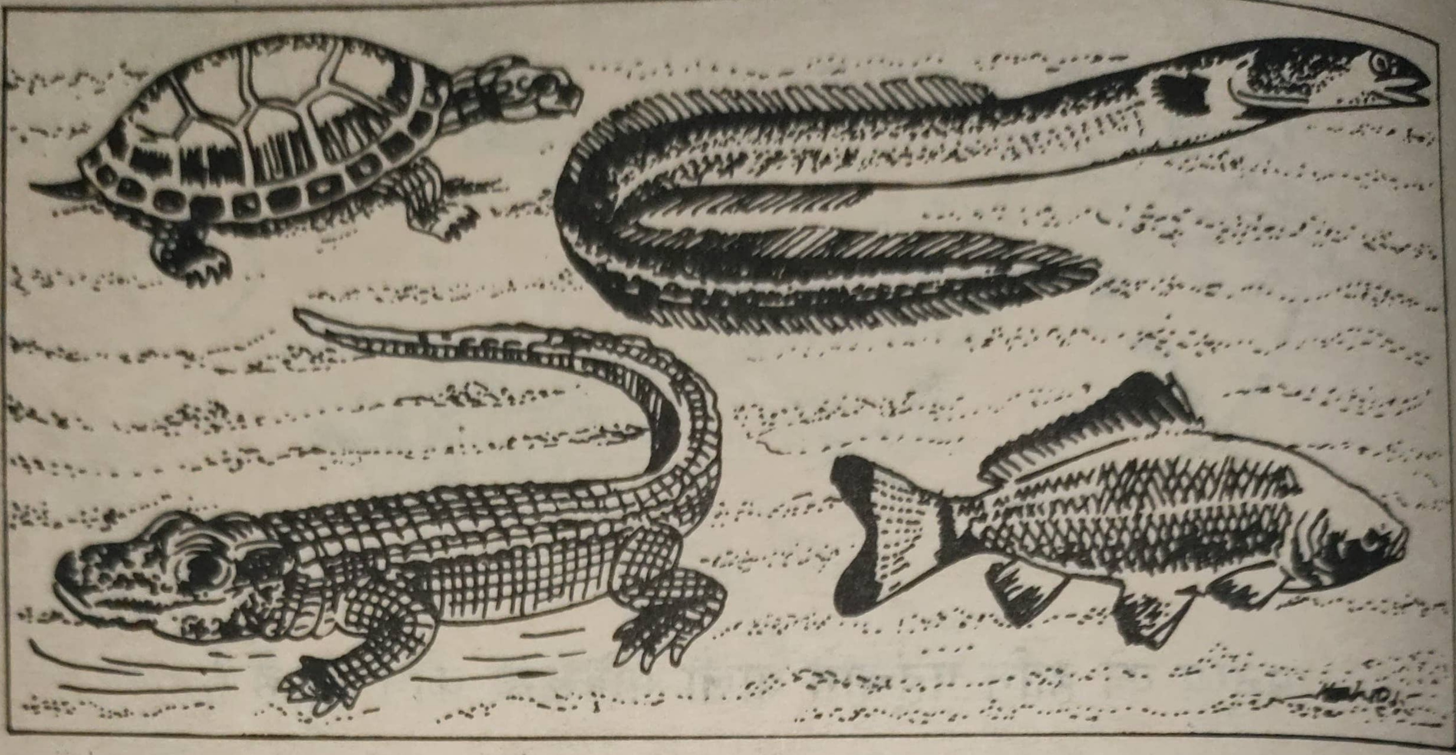
मनुष्य को हानि पहुंचाने वाली मक्खियां कौन सी हैं ?

जीव विज्ञान के अनुसार दो पंखों वाले सभी कीड़ों (Insects) को मक्खी कहते हैं। इस वर्ग को द्विपक्ष या डिप्टेरा (Diptera) कहते हैं। इस परिभाषा के अनुसार मच्छर और मक्खियां एक ही श्रेणी में आ जाते हैं। डिप्टेरा वर्ग में अब तक वैज्ञानिक मक्खियों की 40,000 से अधिक किस्मों का अध्ययन कर चुके हैं। संसार की कोई ही जगह ऐसी होगी जहां मक्खियां न मिलती हों। ये किसी न किसी तरीके से मनुष्य को तंग करती ही रहती हैं। यद्यपि कीटाणु विनाशक औषधियों (Insecticides) के प्रयोग से इनकी संख्या में अब काफी कमी हो गई है, लेकिन फिर भी इनकी संख्या बहुत है। इन सभी प्रकार की मक्खियों के विषय में जानकारी देना तो बहुत ही कठिन कार्य है। हम यहां कुछ विशेष प्रकार की मक्खियों के विषय में जानकारी दे रहे हैं।

घरेलू मक्खी से हम सभी भलीभांति परिचित हैं। इसकी भिनभिनाहट कानों में बहुत ही बुरी लगती है। जब ये शरीर पर चलती हैं तो हमें बहुत गुस्सा आता है। यह मक्खी हमारी बहुत बड़ी दुश्मन है। यह अपनी जालदार टांगों और पंखों में अनेकों प्रकार के रोगों के रोगाणुओं (Germs) को चिपका कर एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाती है। इन रोगाणुओं से बहुत से रोग फैलते हैं; जैसे टाइफाइड, डायरिया, पेचिश कालरा, टी०बी० आदि और लाखों लोगों की हर वर्ष मृत्यु हो जाती है।

आस्ट्रेलिया में रौबर (Robber) नाम की एक मक्खी मिलती है जो दूसरी मक्खियों का रस चूस कर जिन्दा रहती है। अफ्रीका में पाई जाने वाली एक मक्खी स्लीपिंग सिकनेस (Sleeping sickness) नामक बीमारी के कीटाणुओं को फैलाती है। मौथ फ्लाई (Moth fly) एक इतनी छोटी मक्खी होती है जो मच्छरदानी के छेदों में से भी अन्दर घुस सकती है। यह आदमी का खून चूसकर जिन्दा रहती है। हरे रंग के सिर वाली हार्स फ्लाई (Horse fly) के काटने पर बहुत दर्द होता है। शहद की मक्खियां फूलों का रस चूसकर हमारे लिए शहद का निर्माण करती हैं, लेकिन इनके काटने से बहुत दर्द होता है और काटे गए स्थान पर सूजन आ जाती है। इसी प्रकार दूसरी मक्खियां भी हमें किसी न किसी तरह कष्ट देती ही रहती हैं।

मनुष्य मक्खियों से छुटकारा पाने के बहुत से प्रयास कर रहा है। इनको समाप्त करने के लिए अनेकों औषधियों का निर्माण किया जा रहा है। इनके नियंत्रण से रोगों की रोकथाम में काफी सहायता मिलेगी।

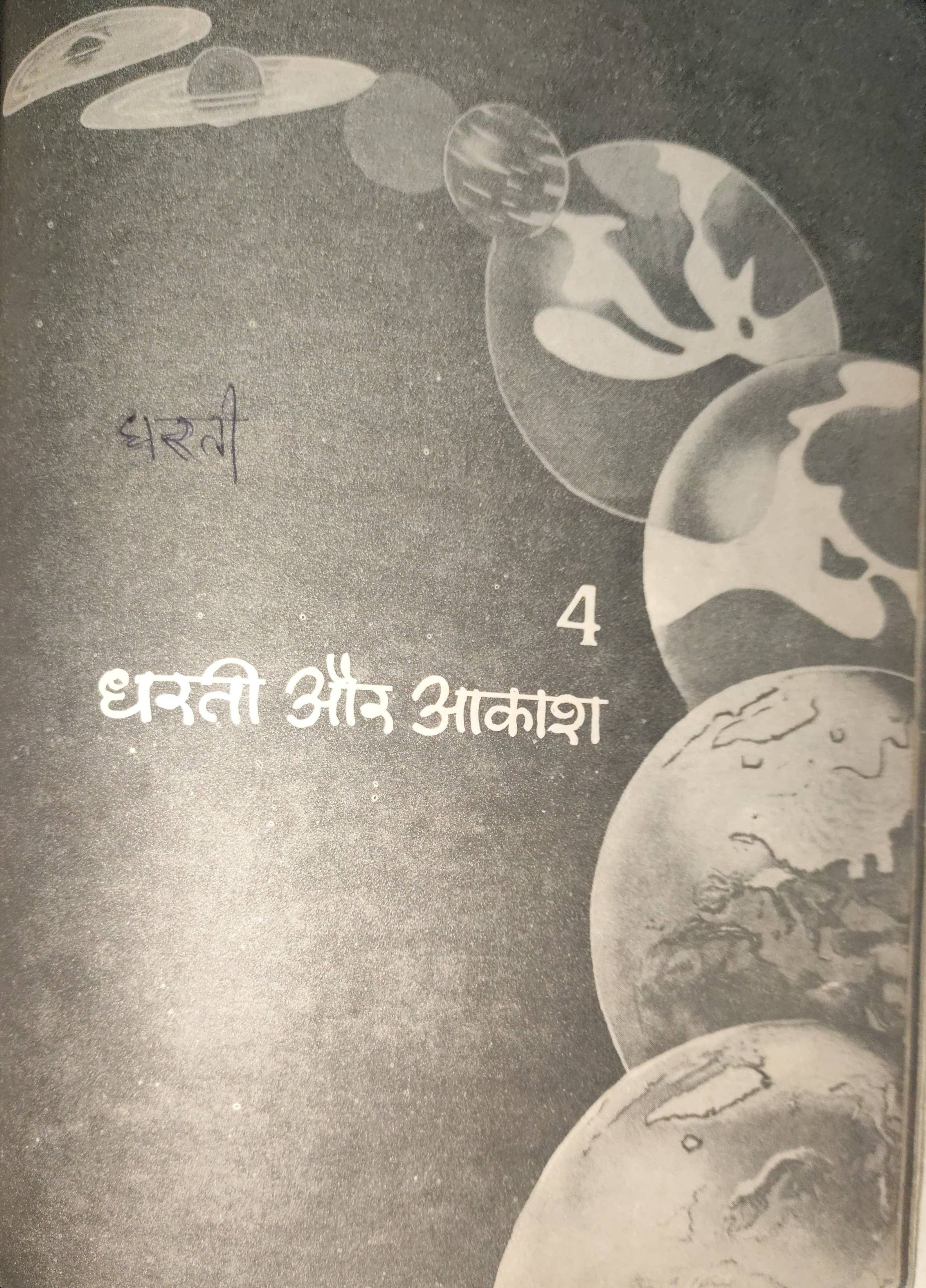


समुद्री जीव कितना तेज तैर सकते हैं ?

समुद्रों के पानी में हजारों प्रकार के जन्तु रहते हैं। इनमें अनेकों प्रकार की मछलियां, कछुए, मगरमच्छ, ईल (Eel), व्हेल आदि मुख्य हैं। ये सभी जीव पानी में तैरते रहते हैं। क्या तुम जानते हो कि तैरने वाले इन भिन्न-भिन्न जानवरों में कौन सा जीव सबसे तेज़ तैरता है?

स्वोर्ड फिश (Sword Fish) नाम की मछली पानी में तैरने वाले जन्तुओं में, सबसे तेज़ रफ्तार वाली है। इसका वेग 95 कि०मी० (60 मील) प्रति घंटा तक पहुंच जाता है। तैरने की गति में दूसरा स्थान सेल फिश (Sail Fish) का है। यह 85 कि०मी० (53 मील) प्रति घंटा के वेग से तैर सकती है। टुन्नी (Tunny) और इन्द्रधनुष के रंग वाली चित्तीदार मछली (Rainbow Trout) 75 कि०मी० (47 मील) प्रति घंटा के वेग से तैर सकती है। डोलफिन (Dolphin) की गति 65 कि०मी० (40 मील) प्रति घंटा तक होती है।

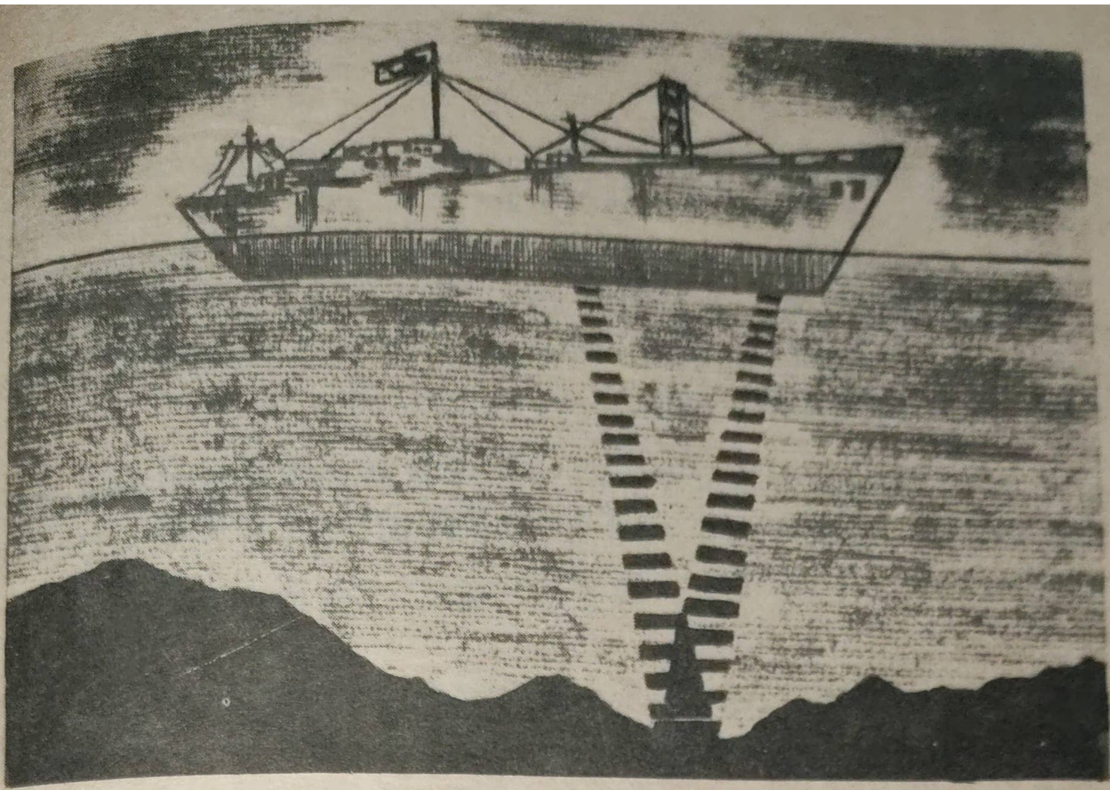
इसके अतिरिक्त टारपोन (Tarpon) 55 कि०मी०, शार्क 45 कि०मी०, ट्राउट (Trout) 35 कि०मी०, साल्मन (Salmon) 25 कि०मी०, ईल, व्हेल और पाइक (Pike) 15 कि०मी० प्रति घंटा के वेग से तैर सकती हैं। कुछ समुद्री जीव ऐसे हैं जिनका तैरने का वेग 10 कि०मी० प्रति घंटासे भी कम होता है। इनमें मुख्यतः के फिश (Cray Fish), कार्प (Carp), टेन्च (Tench), पर्च (Perch), ओक्टोपस (Octopus) आदि हैं। इन जन्तुओं के तैरने के वेग के ये आंकड़े प्रयोगात्मक तथ्यों पर आधारित हैं। ये आंकड़े सामान्य वेग के नहीं बल्कि अधिकतम वेग के हैं।



धरती

4

धरती और आकाश



समुद्र की गहराई कैसे मापते हैं?

समुद्रों के विषय में यद्यपि आज मनुष्य ने बहुत सी जानकारी प्राप्त कर ली है, लेकिन अब भी बहुत से रहस्य ऐसे हैं, जिनका पता नहीं चल पाया है। उदाहरण के लिए अभी तक यह निश्चयपूर्वक पता नहीं है कि समुद्र कितने पुराने हैं। हां, इतना निश्चित है कि सृष्टि के आदिकाल में समुद्रों का अस्तित्व नहीं था।

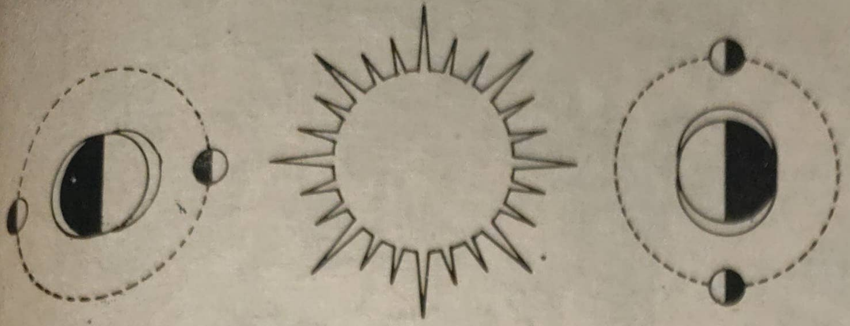
आज मनुष्य ने बहुत से ऐसे यंत्रों का विकास कर लिया है, जिनकी सहायता से वह समुद्र की गहराइयों में उतरकर उनकी तलहटी के बारे में अधिक से अधिक जानकारी प्राप्त कर रहा है। समुद्र की तलहटी में उतरकर उसकी गहराई मापना एक बहुत ही कठिन कार्य है। क्या तुम जानते हो कि समुद्र की गहराई कैसे मापी जाती है।

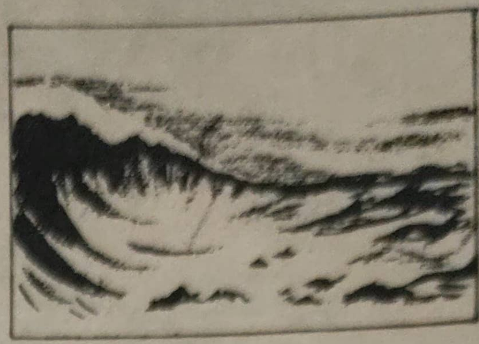
समुद्र की गहराई पता करने के लिए ध्वनि तरंगों को प्रयोग में लाया जाता है। पानी के जहाज के ऊपर एक यंत्र लगा दिया जाता है जो पराश्रव्य ध्वनि तरंगें (Ultrasonic waves) पैदा करता है। इस यंत्र को फैथोमीटर (Fathometer) कहते हैं। 20,000 हर्ट्ज़ से अधिक आवृत्ति या कम्पन (Frequency) की तरंगों को पराश्रव्य तरंगें कहते हैं। ये तरंगें भी ध्वनि तरंगें ही हैं, केवल इनकी आवृत्ति अधिक होती है। इनको कान से नहीं सुना जा सकता। इन तरंगों को समुद्र के अंदर भेजा जाता है। ये तरंगें समुद्र की तलहटी से टकराकर परावर्तित (Reflect) हो जाती हैं। परावर्तित तरंगों को प्राप्त करके उनके जाने और लौट कर आने में लिए गए समय को आधा कर लेते हैं। इस समय को समुद्र के पानी में ध्वनि के वेग के मान से गुणा करके समुद्र की गहराई का पता लगा लिया जाता है। इस प्रकार समुद्र के अलग-अलग स्थानों पर उसकी गहराई ज्ञात की जा सकती है।

इस विधि द्वारा कई समुद्रों की गहराई मापी गई है और प्रत्येक समुद्र में सबसे अधिक गहरे स्थान का पता लगा लिया गया है। प्रशांत महासागर संसार में सबसे गहरा महासागर है। इसकी औसत गहराई 4282

मीटर (14048 फीट) है। इसका सबसे गहरा स्थान गुआम (Guam) के पास है, जिसकी गहराई 10668 मीटर (35000 फीट) है। गुआम प्रशांत महासागर में स्थित एक द्वीप है। यह हवाई (Hawaii) द्वीप से लगभग 5000 कि०मी० (3000 मील) पश्चिम की ओर है। गहराई की दृष्टि से दूसरा स्थान हिन्द महासागर (Indian Ocean) का है। इसकी औसत गहराई 3963 मीटर (13002 फीट) है। अंध महासागर (Atlantic Ocean) का तीसरा स्थान है। इसकी औसत गहराई 3926 मीटर (12880 फीट) है। उथले सागरों में बाल्टिक सागर का पहला स्थान है। इसकी औसत गहराई केवल 55 मीटर (180 फीट) है।

समुद्रों की तलहटी का अध्ययन करने से पता चला है कियहभी धरती की तरह ऊबड़-खाबड़ होती है। यहां पर समुद्री जीवों की हड्डियों के ढांचे पड़े हैं और अनेकों छोटे-बड़े पौधे हैं। समुद्र की तलहटी में ज्वालामुखियों की राख भी भरी पड़ी है।





समुद्र में ज्वार क्यों आते हैं?

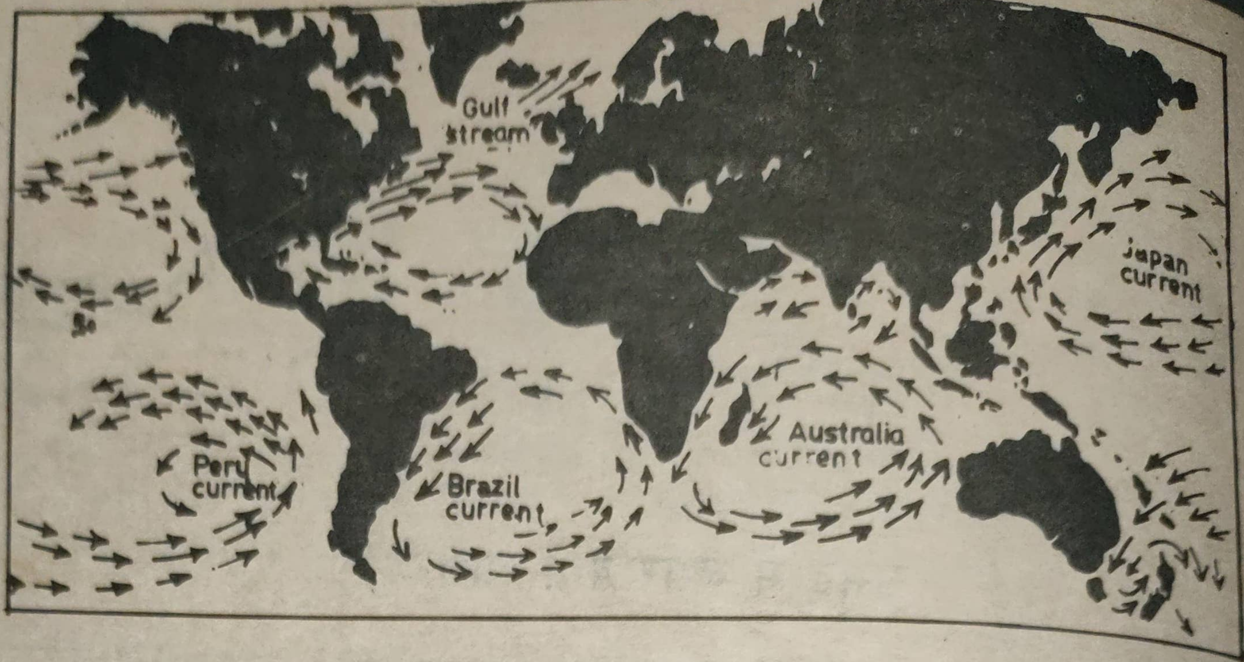
समुद्रों के पानी की उठती और गिरती हुई विशाल लहरों को ज्वारभाटा कहते हैं। कभी-कभी तो इन लहरों की ऊंचाई इतनी अधिक होती है कि देखने में ऐसा लगता है जैसे कोई बहुत ऊंची दीवार पानी की सतह पर चल रही हो। क्या तुम जानते हो कि समुद्र में ज्वार क्यों आते हैं?

समुद्रों में ज्वार आने का मुख्य कारण चन्द्रमा का गुरुत्वाकर्षण बल है। हम जानते हैं कि चन्द्रमा हमारी धरती का एक मात्र उपग्रह है। हम यह भी जानते हैं कि ब्रह्माण्ड की हर वस्तु दूसरी वस्तु को एक आकर्षण बल से खींचती है जिसे गुरुत्वाकर्षण बल कहते हैं। यही बल पृथ्वी और चन्द्रमा के बीच भी काम करता है। पृथ्वी चन्द्रमा को और चन्द्रमा पृथ्वी को अपनी ओर खींचे हुए है। चन्द्रमा और पृथ्वी के बीच का गुरुत्वाकर्षण बल इतना अधिक है कि यह 400 किमी० व्यास की स्टील की छड़ को तोड़ सकता है। इस बल से पृथ्वी के ठोस भाग में तो कोई परिवर्तन नहीं हो पाता परन्तु उसकी सतह पर स्थित समुद्रों के पानी में चढ़ाव और उतार पैदा होते रहते हैं।

समुद्र में किसी स्थान पर प्रतिदिन लगभग छः घंटे तक पानी ऊपर उठता है और अगले छः घंटे तक नीचे गिरता है। यही पानी का चढ़ाव और उतार ज्वारभाटा कहलाता है। पानी हर 12 घंटे 25 मिनट के बाद ऊपर उठता है। इस प्रकार एक दिन व रात में अर्थात 24 घंटे 50 मिनट में एक स्थान पर दो बार ज्वार आता है। चन्द्रमा पृथ्वी की सतह के जिस ओर होता है ज्वार उस तरफ भी आता है और उसकी विपरीत दिशा में भी। 12 घंटे 25 मिनट बाद चन्द्रमा की स्थिति पृथ्वी की विपरीत दिशा में पहुंच जाती है, इसलिए ज्वार फिर 12 घंटे 25 मिनट बाद उन्हीं दोनों स्थानों पर आ जाता है। इस प्रकार एक दिन और रात में किसी एक स्थान पर दो बार ज्वार आते हैं।

समुद्रों में आने वाले ज्वार पर सूर्य के गुरुत्वाकर्षण बल का भी प्रभाव पड़ता है, लेकिन चन्द्रमा की अपेक्षा कम। जब सूर्य, पृथ्वी और चन्द्रमा एक ही रेखा में होते हैं, तब पृथ्वी पर खिंचाव बल बहुत अधिक होता है। इस स्थिति में आने वाले ज्वार बहुत विशाल होते हैं। इनको 'स्प्रिंग टाइड' (Spring Tide) कहते हैं। ऐसे ज्वार पूर्णिमा और अमावस्या के दिन आते हैं। सूर्य और चन्द्रमा जब एक दूसरे के लम्बवत दिशा में होते हैं तब आकर्षण बल बहुत कम हो जाता है। उस समय आने वाले ज्वार छोटे होते हैं। इनको 'नीप टाइड' (Neap Tide) कहते हैं। ऐसा पूर्णिमा और अमावस्या के बीच होता है। ज्वारों की ऊंचाई 15 मीटर तक हो सकती है।

ज्वार आने के कई फायदे भी हैं। पानी की लहरों के साथ समुद्रों में मिलने वाली बहुत सी कीमती वस्तुएं किनारों तक आ जाती हैं।



क्या समुद्रों में भी नदियां बहती हैं?

अधिकतर लोग सोचते हैं कि समुद्र का पानी झीलों और तालाबों की तरह शान्त रहता है लेकिन वास्तविकता कुछ और है। जिस प्रकार धरती की सतह पर नदियां बहती हैं ठीक उसी प्रकार समुद्रों में भी पानी की धाराएं बहती रहती हैं। इन धाराओं का अलग-अलग स्थानों पर अलग-अलग वेग होता है। क्या तुम जानते हो कि समुद्रों में धाराएं कैसे पैदा होती हैं?

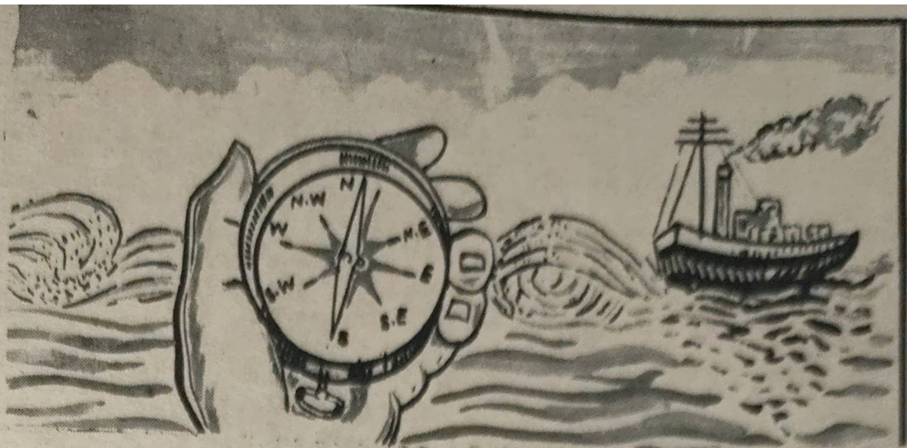
समुद्री धाराएं पैदा होने के तीन मुख्य कारण हैं। समुद्र के पानी का घनत्व अलग-अलग स्थानों पर एक जैसा नहीं है क्योंकि अलग-अलग भागों के पानी में नमक की मात्रा अलग-अलग है। पानी के घनत्व को एक जैसा करने के लिए समुद्री धाराएं पैदा हो जाती हैं। समुद्र के भिन्न-भिन्न हिस्सों पर सूर्य की किरणें समान रूप से नहीं पड़ती हैं। इसलिए कहीं पानी अधिक गर्म तो कहीं ठंडा रहता है। इससे समुद्र के पानी में संवहन धाराएं (Convection currents) पैदा हो जाती हैं। समुद्र की सतह पर चलने वाली हवाओं का भी समुद्री धाराओं पर प्रभाव पड़ता है।

इसके अतिरिक्त पृथ्वी के अपने अक्ष पर घूमने के कारण भी समुद्री धाराओं पर प्रभाव पड़ता है। पृथ्वी के घूर्णन के कारण आमतौर पर उत्तरी गोलार्द्ध में समुद्री धाराएं घड़ी के चलने की दिशा (Close-wise) में बहती हैं और दक्षिणी गोलार्द्ध में घड़ी की सुइयों के चलने की विपरीत दिशा (Anti-clockwise) में बहती हैं।

संसार की मुख्य-मुख्य समुद्री धाराएं ऊपर के चित्र में दिखाई गई हैं। इनमें गल्फ की धारा सबसे अधिक प्रसिद्ध है। संसार की सभी नदियों को एक साथ मिला दिया जाए तब भी गल्फ की धारा का आकार बड़ा ही बैठेगा। इस धारा के पानी का रंग नीला है। समुद्र के पानी में यह रंग स्पष्ट दिखाई देता है। यह धारा पूर्वी अमरीका के किनारे से होती हुई उत्तरी योरुप की ओर उत्तर दिशा में बहती है। इसका पानी गर्म है। इस धारा के कारण लन्दन और पेरिस में ठंड कम पड़ती है। इसके अतिरिक्त ब्राजील की धारा, जापान की धारा, उत्तरी भूमध्यीय धारा, उत्तरी प्रशान्त सागरीय धारा आदि संसार की मुख्य समुद्री धाराएं हैं।

सन् 1947 में पेरू (Peru) और दक्षिण भूमध्यीय धारा (South Equatorial Current) थौर हेयरडल (Thor Heyerdahl) और उसके साथियों को दक्षिण अमरीका से दक्षिणी प्रशान्त महासागर तक 4000 मील बहा ले गई थी।

समुद्र में दिशाओं का पता कैसे लगाया जाता है ?



मनुष्य ने जब नावें बनाईं तो उनका उपयोग समुद्री यात्राओं में करने लगा। लेकिन शुरू-शुरू में वह समुद्र में दूर-दूर तक जाने का साहस नहीं कर पाता था क्योंकि उसके पास कोई ऐसा यंत्र न था जिससे वह समुद्र में दिशाओं का ज्ञान प्राप्त कर सके। उस समय वह सूर्य और तारों की सहायता से ही दिशाओं का पता लगाता था। लेकिन जब कभी आकाश में बादल छा जाते थे तथा सूर्य और तारे छिप जाते थे, उस समय दिशाओं का पता लगाने में बड़ी कठिनाई होती थी।

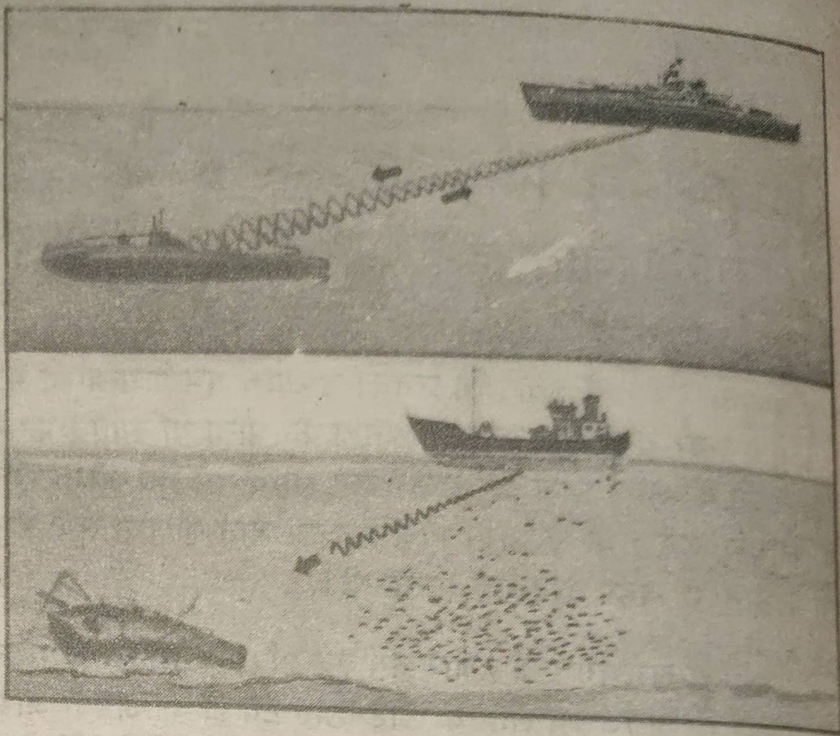
ईसा से लगभग एक हजार वर्ष पूर्व एशिया माइनर के मैगनीशिया नामक स्थान पर काले रंग का एक ऐसा पत्थर मिला जिसमें लोहे के छोटे-छोटे टुकड़ों को अपनी ओर आकर्षित करने का गुण था। इस पत्थर को चुम्बक का नाम दिया गया। बाद में पता चला कि किसी धागे से स्वतन्त्रतापूर्वक लटकाए जाने पर इस पत्थर के दो सिरे सदा ही उत्तर-दक्षिण दिशा में ठहरते हैं। (ऐसा इसलिए होता था कि हमारी पृथ्वी भी एक विशाल चुम्बक की तरह काम करती है और चुम्बक के ध्रुवों को अपने बल से खींच लेती है) प्राकृतिक चुम्बक के इस गुण को 1300 ई० के लगभग चीन के नाविकों ने समुद्र में दिशा जानने के लिए प्रयोग किया। इस प्रकार संसार के प्रथम दिक्सूचक (Compass) का अविष्कार हुआ।

प्रारंभिक दिक्सूचकों में पानी के कटोरों में लकड़ी या कार्क के टुकड़े तैराए जाते थे और उन पर चुम्बकीय पत्थर के टुकड़े रख दिए जाते थे। इन चुम्बकों के सिरे सदा उत्तर-दक्षिण दिशा में रहते थे। इसके सिरों की स्थिति से दिशा-ज्ञान हो जाता था।

जैसे-जैसे विज्ञान का विकास हुआ लोगों ने कृत्रिम तरीकों से लोहे और इस्पात के चुम्बक बना लिए। लोहे के इन चुम्बकों को प्रयोग में लाकर तरह-तरह के चुम्बकीय दिक्सूचक (Magnetic Compass) बनाए गए।

आधुनिक दिक्सूचक में अधातु की छोटी सी डिबिया होती है जिसके ऊपर मोटे कागज का एक वृत्ताकार टुकड़ा लगा होता है। कागज के इस टुकड़े पर लम्बवत् दिशाओं में चार हिस्से अंकित कर दिए जाते हैं। इन पर उत्तर (North), दक्षिण (South), पश्चिम (West) और पूरब (East) दिशाओं के लिए क्रमशः N, S, W और E अंकित कर दिया जाता है। वृत्त के प्रत्येक चौथाई हिस्से को बराबर के आठ-आठ भागों में बांट दिया जाता है। इस प्रकार पूरा वृत्त 32 भागों में विभाजित कर दिया जाता है। वृत्त के केन्द्र पर धुरी के साथ क्षैतिज (Horizontal) दिशा में एक चुम्बक लटका दिया जाता है। कांच की प्लेट से इन सब को डिबिया में बन्द कर दिया जाता है। चुम्बक के दो सिरे उत्तर-दक्षिण दिशा की ओर रहते हैं। इससे नाविकों को समुद्री जहाजों में यह पता लग जाता है कि उनका जहाज किस दिशा में जा रहा है।

बहुत से बड़े जहाजों में तो अब एक अन्य यंत्र भी प्रयोग में लाया जा रहा है। इसे जाइरो कम्पास (Gyro Compass) कहते हैं। हवाई जहाजों में भी जाइरो कम्पास का इस्तेमाल किया जाता है।

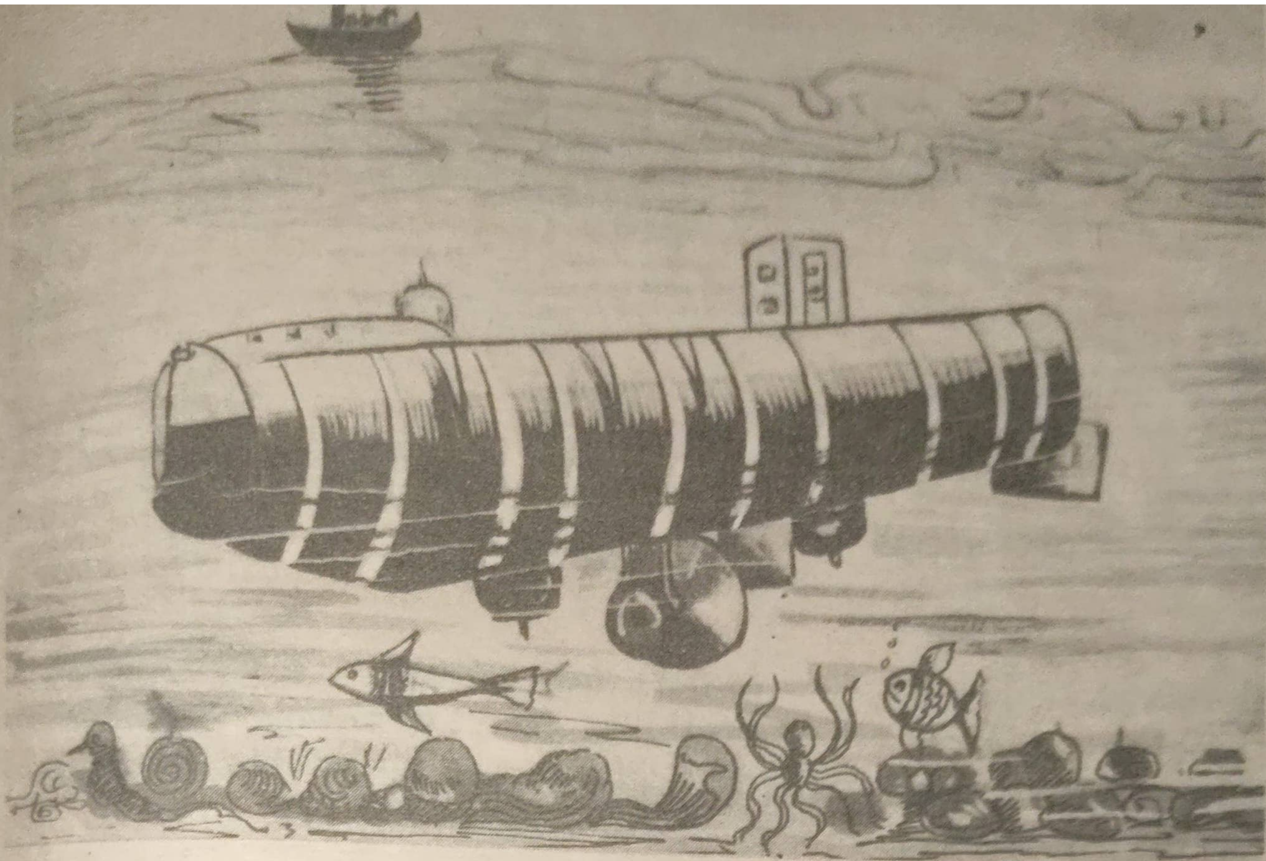


समुद्र में पनडुब्बियों व तारपीडों का पता कैसे लगाते हैं?

सोनार (Sonar) एक ऐसा यंत्र है जिसे ध्वनि तरंगों की सहायता से समुद्र के अन्दर उपस्थित पनडुब्बी और तारपीडो जैसी वस्तुओं का पता लगानें के लिए काम में लाया जाता है। सोनार शब्द की उत्पत्ति साउन्ड नैवीगेशन एन्ड रेन्जिन्ग (Sound navigation and ranging) से हुई है। इस यंत्र का उपयोग विशेष रूप से समुद्री लड़ाइयों में किया जाता है। लड़ाइयों के अतिरिक्त भी यह यंत्र जलयानों और पनडुब्बियों में प्रयोग में आता है। इससे समुद्र के अन्दर मौजूद बड़ी-बड़ी मछलियों तथा दूसरे जानवरों आदि का पता लगा लिया जाता है। इसकी सहायता से समुद्र के अन्दर 100 मीटर से 10 कि०मी० की दूरी तक की वस्तुओं का पता लगाया जा सकता है।

सोनार के मुख्य रूप से दो भाग होते हैं: ट्रान्समीटर और रिसीवर। ये दोनों ही पानी में डूबे रहते हैं। ट्रान्समीटर में एक ट्रान्सड्यूसर की सहायता से उच्च आवृत्ति (5000 से 3,00,000 हट्र्ज़) की ध्वनि तरंगें पैदा की जाती हैं जो समुद्र के पानी के अन्दर सभी दिशाओं में फैल जाती है। ये तरंगें स्पन्दनों (Pulse) के रूप में यानी रुक-रुक कर पानी के अन्दर भेजी जाती हैं। जब इन तरंगों के रास्ते में कोई वस्तु आ जाती है, तो ये उससे टकराकर परावर्तित (Reflect) हो जाती हैं परावर्तित तरंगों को रिसीवर द्वारा प्राप्त कर लिया जाता है। तरंगों के जाने और लौटकर आने में लगा समय ज्ञात कर लिया जाता है। समुद्र के जल में ध्वनि के वेग और इस समय की सहायता से उस वस्तु की दूरी का पता लगा लिया जाता है। इस यंत्र में एक चित्र प्रदर्शित करने वाला यंत्र भी होता है जो वस्तु की सही-सही दूरी और स्थिति का ज्ञान कराता है।

सोनार के अन्दर कुछ दोष भी हैं। समुद्री जीवों की आवाज के कारण कभी-कभी वस्तुओं की स्थिति का पता लगाने में गलती हो जाती है। इस यंत्र से दुश्मनों की पनडुब्बियों का पता लगाकर उनको नष्ट किया जा सकता है। आजकल तो कई प्रकार के सोनार बना लिए गए हैं जो समुद्र के पानी के अन्दर स्थित वस्तुओं के अध्ययन कार्यों के लिए प्रयोग में लाए जा रहे हैं। बड़े पैमाने पर मछली पकड़ने के लिए सोनार की सहायता से समुद्रों के अन्दर उन स्थानों का पता लगाया जाता है जहां मछलियों के बड़े-बड़े समूह रहते हैं।



समुद्र की गहराइयों में आदमी कैसे उतरता है?

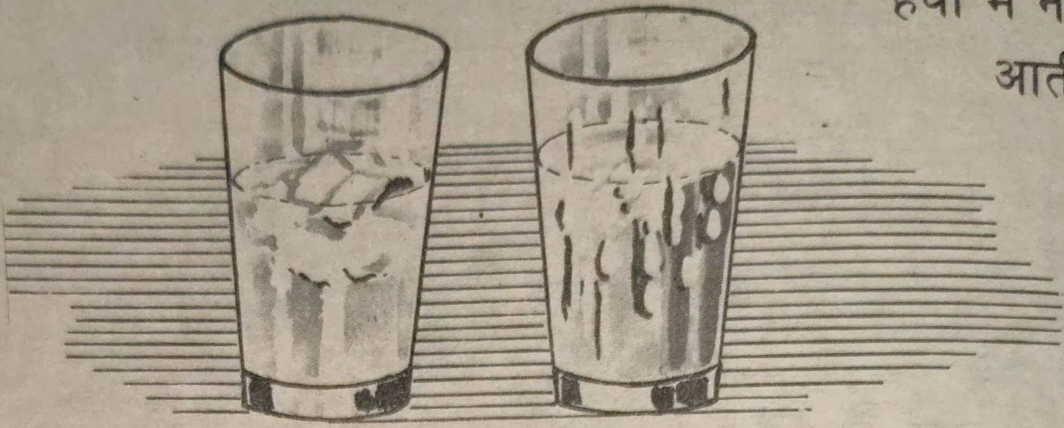
आदिकाल से ही मनुष्य की इच्छा रही है कि वह समुद्र की गहराइयों में उतर कर उस की तलहटी का अध्ययन कर सके। वह यह जानने का प्रयास करता रहा है कि समुद्र की तलहटी कैसी है और वहां पर क्या-क्या मिलता है। क्या तुम जानते हो कि समुद्र के अन्दर आदमी कैसे जाता है?

समुद्र की गहराइयों में जाने के लिए एक यान का प्रयोग किया जाता है जिसे बैथीस्कैफे (Bathyscaphe) कहते हैं। इस यान का आविष्कार वैज्ञानिक औगस्टे पिकार्ड (Auguste Piccard) ने किया था। सबसे पहला यान बेल्जियम में 1946 और 1948 के बीच बनाया गया। समुद्र की गहराइयों में जाने के कुछ प्रयासों के बाद यह 1948 में टूट गया। इसके बाद दूसरा बैथीस्कैफे बनाया गया जो अन्ध महासागर (Atlantic Ocean) में 15 फरवरी 1954 को 4000 मीटर (13000 फुट) की गहराई तक उतर सका।

इसके पश्चात् एक सफल यान औगस्टे पिकार्ड के पुत्र जैक्वेस पिकार्ड (Jacques Piccard) ने बनाया जो 23 जनवरी सन् 1960 को प्रशान्त महासागर में 10916 मीटर (35810 फुट) की गहराई तक पहुंचा। समुद्र की अधिकतम गहराई तक जाने का यह विश्व रिकार्ड था।

बैथीस्कैफे के मुख्य रूप से दो भाग होते हैं। एक भाग स्टील का बना होता है जिसे केबिन (Cabin) कहते हैं। इसमें दो आदमी बैठ सकते हैं। दूसरा भाग हल्की धातु का बना होता है जो तैरने का काम करता है। इसी भाग में गैसोलीन ईंधन होता है। इसमें दो वायु के पात्र होते हैं। समुद्र के पानी के ऊपर चलाने के लिए इनमें वायु भर दी जाती है लेकिन जब यान को समुद्र के पानी के अन्दर ले जाना होता है तब इन बर्तनों में पानी भर दिया जाता है जिसके भार के कारण यान पानी में डूबने लगता है। इन बर्तनों में पानी और वायु की मात्राओं के नियंत्रण से यान की गहराई नियंत्रित की जाती है। इसकी सहायता से समुद्र की तलहटी का अध्ययन सुविधापूर्वक किया जा सकता है।

हवा में नमी कहां से आती है?



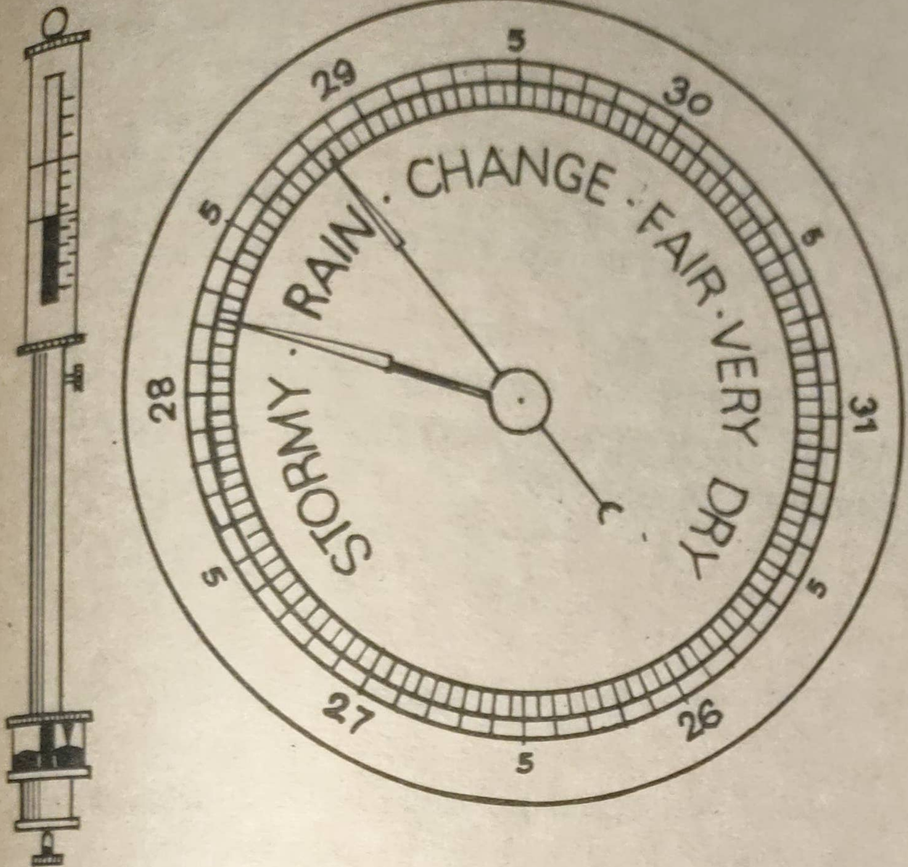
यदि तुम अपनी मेज पर बर्फ (Ice) या ठंडे पानी से भरा हुआ एक गिलास रख दो तो देखोगे कि थोड़ी ही देर में गिलास की बाहरी सतह पर पानी की छोटी-छोटी बूंदें जमा हो जाती हैं। क्या तुम जानते हो कि ये पानी की बूंदें गिलास पर कहां से आ जाती हैं? ये पानी की बूंदें वायु में उपस्थित नमी के संघनित (Condense) होने से बनती हैं। अब प्रश्न उठता है कि वायु में यह नमी कहां से आती है?

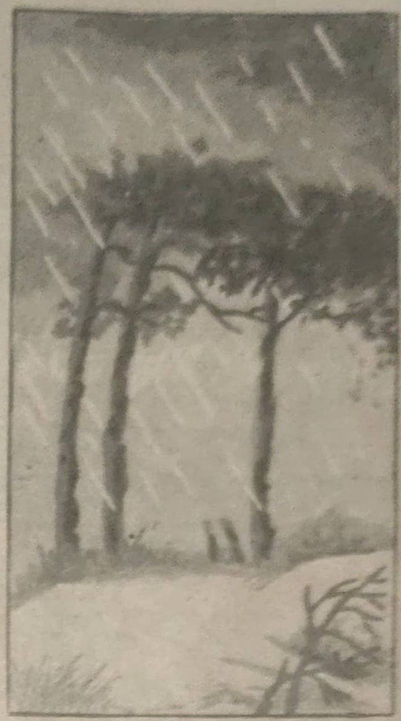
वायु में पानी की नमी जलवाष्प के रूप में हमेशा ही उपस्थित रहती है। यह जलवाष्प हमें दिखाई नहीं देती। अलग-अलग स्थानों पर वायु में जलवाष्प की मात्रा अलग-अलग होती है। यहां तक कि बड़े-बड़े रेगिस्तानों की हवा में भी जलवाष्प की कुछ मात्रा होती है। हम जानते हैं कि धरती की लगभग 70% सतह पानी से ढकी हुई है। सूरज की गर्मी के कारण समुद्रों, नदियों, झीलों और तालाबों का पानी वाष्पित होता रहता है और यही वाष्प वायु में मिलती रहती है। इसी को हम हवा की नमी के नाम से पुकारते हैं।

विज्ञान की भाषा में वायु में उपस्थित पानी की नमी को आर्द्रता (Humidity) कहते हैं। अलग-अलग मौसमों में वायु में नमी भी अलग-अलग होती है। गर्मी में जाड़े की अपेक्षा वायु में जलवाष्प की मात्रा अधिक होती है, क्योंकि गर्मी के दिनों में अधिक तापमान के कारण समुद्र, नदी, तालाब आदि से जल अधिक वाष्पित होता है तथा गर्मी के कारण फैली हुई हवा में अधिक भाप समा सकती है। बरसात के दिनों में वायु की नमी बहुत अधिक बढ़ जाती है क्योंकि बरसात में धरती की सतह का बहुत बड़ा हिस्सा पानी से ढक जाता है जो वाष्पित होकर वायुमण्डल में जाता रहता है।

वायु की नमी के कारण ही ओस पड़ती है। बादलों का बनना और वर्षा का होना भी वायु की नमी पर ही निर्भर करता है। कोहरा (Fog), पाला (Frost), हिमपात (Snowfall) आदि भी वायु की नमी के कारण ही होते हैं।

वायु की नमी के अध्ययन से हमें मौसम सम्बन्धी बहुत सी बातों का पता चलता है। जिन यन्त्रों से वायु की नमी मापी जाती है उन्हें आर्द्रतामापी (Hygrometer) कहते हैं। यदि वायुमंडल में नमी अधिक है तो वर्षा होने की सम्भावना रहती है। वायु की नमी के ज्ञान से स्वास्थ्य विभाग को भी बहुत मदद मिलती है। कुछ रोगों के कीटाणु नम वायु में तेजी से पनपते हैं। इससे स्वास्थ्य विभाग के लोगों को यह पता लग जाता है कि अधिक नमी वाले स्थानों में किस रोग के कीटाणु अधिक होंगे। सूत के कारखानों में भी नम वायु की अधिक आवश्यकता होती है क्योंकि वायु में नमी अधिक होने से सूत का धागा आसानी से नहीं टूटता। इस प्रकार हम देखते हैं कि वायु में उपस्थित नमी का अध्ययन हमारे लिए बहुत ही उपयोगी है।





आने वाले मौसम का पता कैसे लगाते हैं?

आज आकाश में बादल छाए रहेंगे, शाम को गरज के साथ छींटे पड़ेंगे, आज आंधी आने की संभावना है आदि मौसम सम्बन्धी सूचनाएं हम रेडियो, टेलीविजन और समाचार पत्रों से रोज़ ही प्राप्त करते रहते हैं। क्या तुम जानते हो कि आने वाले मौसम के विषय में ऐसी जानकारी कैसे प्राप्त की जाती है?

मौसम संबंधी पूर्वानुमान लगाने के लिए वायु के दबाव, इसकी दिशा, आर्द्रता (Humidity) तापमान, बादलों का बनना, वर्षा एवं बर्फ जैसे बहुत से ऐसे तथ्यों का अध्ययन करना पड़ता है जिनके ऊपर मौसम निर्भर करता है। इन सभी तथ्यों का अध्ययन करने के लिए एवं तत्संबंधी आंकड़ों को एकत्र करने के लिए हर देश का मौसम विभाग (Meteorological Department) बहुत से यंत्रों एवं उपकरणों का प्रयोग करता है। देश के मुख्य-मुख्य स्थानों पर मौसम संबंधी जानकारी प्राप्त करने वाले केन्द्र होते हैं। ये केन्द्र मौसम संबंधी हर प्रकार के आंकड़े जमा करते हैं। वायु के वेग और दिशा ज्ञात करने के लिए वायुवेगमापी (Anemometer) तथा नमी ज्ञात करने के लिए आर्द्रतामापी (Hygrometer) यंत्र प्रयोग में लाए जाते हैं। वर्षामापी (Rain Gauge) की सहायता से वर्षा होने के आंकड़े तथा सनशाइन रिकार्डर (Sunshine Recorder) की सहायता से धूप निकलने की अवधि का पता लगाया जाता है। उच्चतम-न्यूनतम तापमापी (Maximum-Minimum Thermometer) से दिन और रात का अधिकतम और निम्नतम तापमान ज्ञात किया जाता है। बादलों के विषय में गुब्बारों की सहायता से सूचना प्राप्त की जाती है। वायु दाब मापी (Barometer) से वायुमंडल का दबाव ज्ञात किया जाता है। इन सब आंकड़ों की सहायता से मौसम संबंधी नक्शे तैयार किए जाते हैं, जिन की सहायता से मौसम विशेषज्ञ आने

वाले मौसम के विषय में निष्कर्ष निकालते हैं और उन्हीं निष्कर्षों के आधार पर मौसम की भविष्यवाणी की जाती है। कभी-कभी कुछ निष्कर्षों में त्रुटियां रह जाती हैं इसलिए मौसम की भविष्यवाणी गलत हो जाती है।

वायु के दबाव का अचानक कम हो जाना आंधी या तूफान की सूचना देना है। वायु के दबाव में धीरे-धीरे कमी होना वायुमंडल में नमी की वृद्धि का द्योतक है और वर्षा होने की सम्भावना बताता है। पुरवा हवाओं का चलना भी वर्षा होने का लक्षण है। वायु के दबाव का बढ़ना अच्छे मौसम की सूचना देता है।

स्वचालित यंत्रों से लैस मौसम संबंधी ऐसे गुब्बारे भी आकाश में उड़ाए जाते हैं जो मौसम के विषय में बहुत सी बातों का ज्ञान कराते रहते हैं। अब तो वैज्ञानिकों ने मौसम की जानकारी प्राप्त करने के लिए कृत्रिम उपग्रहों का भी उपयोग करना शुरू कर दिया है जो स्वयं ही मौसम संबंधी आंकड़े जमा करते रहते हैं तथा इनमें लगे कम्प्यूटर इन आंकड़ों का विश्लेषण करके मौसम संबंधी सूचना हमें देते रहते हैं।



बादलों में बिजली चमकती है तो गड़गड़ाहट की आवाज क्यों होती है?

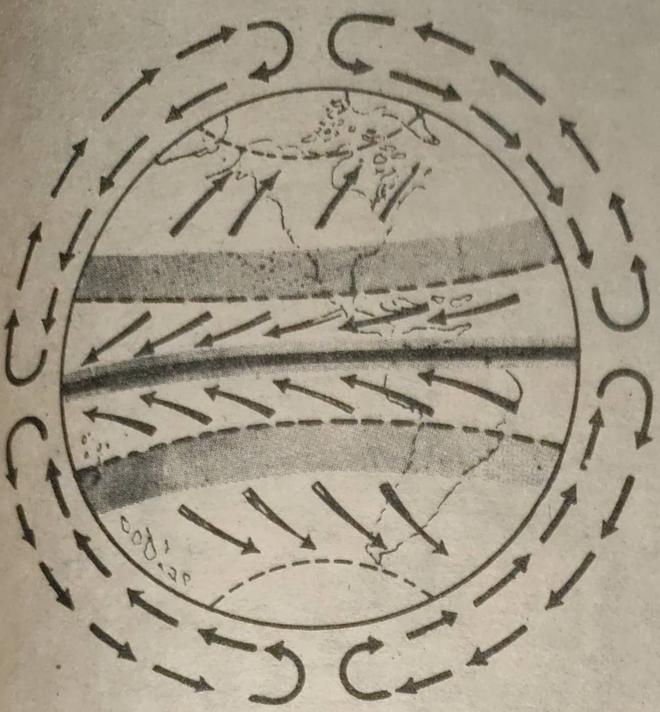
बरसात के मौसम में जब आकाश में बादल छाए होते हैं तो हमें अक्सर बिजली की चमक दिखाई देती है और गड़गड़ाहट की आवाज सुनाई देती है। क्या तुम जानते हो कि बादलों में बिजली कैसे चमकती है और बिजली चमकने पर गड़गड़ाहट की आवाज क्यों होती है?

प्राचीनकाल में जब आसमान में बिजली चमकती थी और गड़गड़ाहट की आवाज होती थी तो मनुष्य सोचता था कि ईश्वर उससे नाराज हो गया है और उसे किसी दुष्कर्म की सजा दे रहा है। बेन्जामिन फ्रैन्कलिन (Benjamin Franklin) पहले व्यक्ति थे जिन्होंने सन् 1872 में बिजली के चमकने का सही कारण बताया। जब आकाश में बादल छाए होते हैं तो उनमें उपस्थित पानी के छोटे-छोटे कण वायु की रगड़ के कारण आवेशित (Charged) हो जाते हैं। कुछ बादलों पर धनात्मक आवेश आ जाता है और कुछ पर ऋणात्मक आवेश। जब एक धनात्मक आवेशित बादल ऋणात्मक आवेशित बादल के पास पहुंचता है तो उनके बीच में लाखों वोल्ट का विद्युत विभवान्तर (Potential difference) पैदा हो जाता है। इतने अधिक विभवान्तर के कारण इनकी बीच की वायु में से विद्युतधारा बहने लगती है। जैसे ही विद्युत धारा बहती है वैसे ही प्रकाश की एक रेखा सी पैदा होती है। सी पैदा होती है। इसी को हम बिजली का चमकना कहते हैं। विद्युतधारा के कारण बहुत अधिक गर्मी पैदा होती है जिससे वायु एकदम से फैलती है। अचानक फैलाव के कारण वायु के असंख्यों अणु एक दूसरे से टकराते हैं। इनके टकराने से पैदा हुई आवाज ही गड़गड़ाहट (Thunder) कहलाती है। बिजली का चमकना और गड़गड़ाहट का पैदा होना एक ही साथ होते हैं, लेकिन हमें बिजली की चमक पहले दिखाई देती है। इसका कारण यह है कि प्रकाश का वेग 300000 किलोमीटर प्रति सेकिण्ड है, जबकि ध्वनि का वेग 332 मीटर प्रति सेकिण्ड है। इस वेग के अन्तर के कारण रोशनी तो फौरन ही हमारी आंखों तक पहुंच जाती है लेकिन ध्वनि को कानों तक पहुंचने में कुछ समय लगता है।

कभी-कभी जब कोई आवेशित बादल पृथ्वी के किसी ऊंचे पेड़ या ऊंची इमारत के पास से गुजरता है तो उसके आवेश का विपरीत आवेश उस पेड़ या इमारत के ऊपर प्रेरण (Induction) द्वारा पैदा हो जाता है। जब

इस आवेश की मात्रा बहुत अधिक हो जाती है तो वायु में होकर विद्युतधारा एकदम से बहती है। जिससे बिजली चमक उठती है। ऐसा होने पर हम कहते हैं कि अमुक पेड़ या इमारत पर बिजली गिर गई है।

ऊंची इमारतों को इस तरह की बिजली से बचाने के लिए उनके साथ-साथ तांबे या और किसी धातु की नुकीली छड़ लगा दी जाती है। इन छड़ों को जमीन में गहरा गाड़ दिया जाता है। इनको तड़ितचालक (Lightning Conductor) कहते हैं। जब कोई आवेशित बादल इस इमारत के पास से गुजरता है और इमारत पर विपरीत आवेश पैदा करता है तो यह आवेश छड़ में होता हुआ पृथ्वी के अन्दर चला जाता है, इमारत के ऊपर जमा नहीं हो पाता। इस प्रकार इमारत बिजली गिरने से बच जाती है।





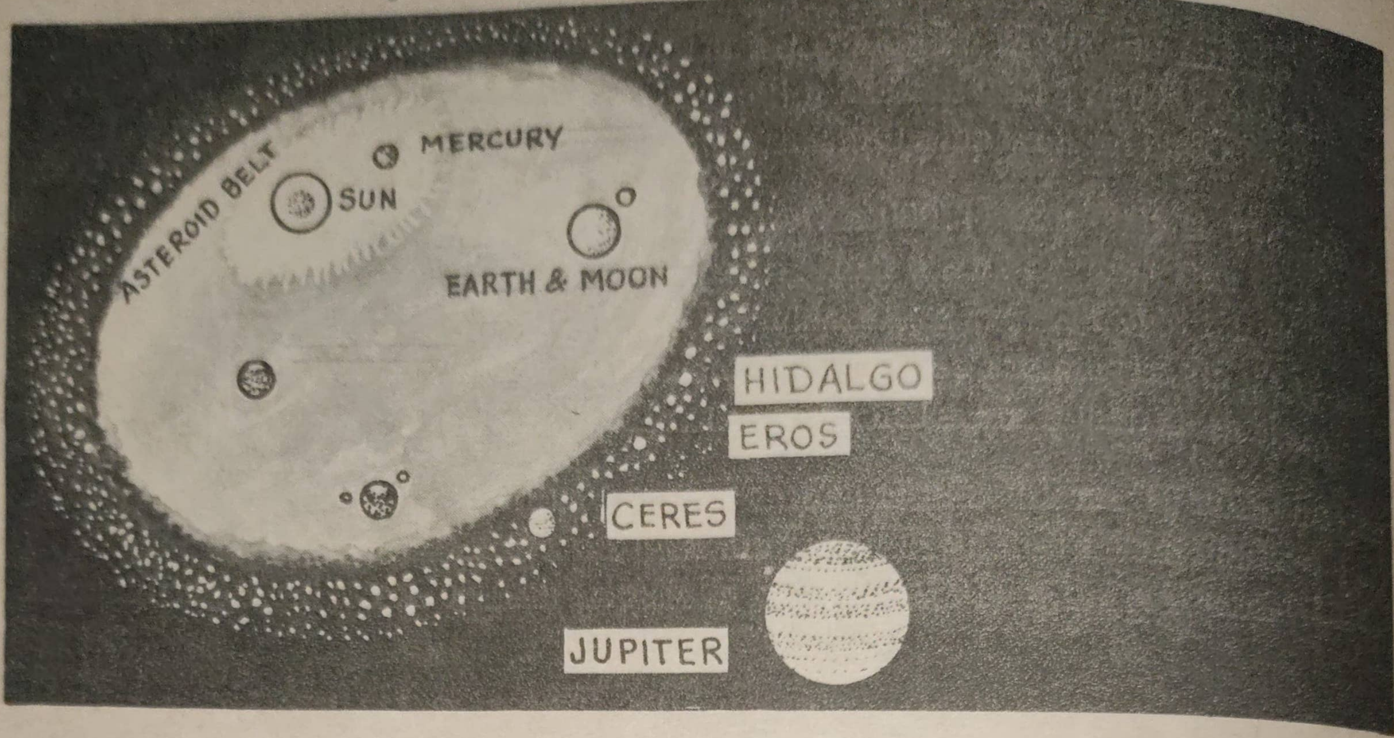
हवा कैसे चलती है ?

हम जानते हैं कि आक्सीजन, नाइट्रोजन, कार्बन डाइआक्साइड, जलवाष्प और धूल के कणों का मिश्रण ही हवा है। हम देखते हैं कि हवा कभी स्थिर रहती है तो कभी बहने लगती है। हम यह भी अनुभव करते हैं कि हवा कभी तेजी से चलती है तो कभी धीरे-धीरे। क्या तुम जानते हो कि यह हवा कैसे चलती है?

जब पृथ्वी पर कोई स्थान सूर्य के ताप से गर्म होने लगता है तो उस स्थान की वायु भी गर्म होने लगती है। तापमान बढ़ने के कारण उस स्थान की वायु फैलती है,जिससे उसका घनत्व कम हो जाता है,अर्थात् गर्म हवा हल्की हो जाती है। हल्की होने के कारण हवा वायुमण्डल में ऊपर उठने लगती है। परिणाम यह होता है कि उस क्षेत्र में वायु का दबाव कम हो जाता है। वायु के इस दबाव को संतुलित करने के लिए अधिक दबाव वाले ठंडे स्थानों से भारी हवा इस स्थान की ओर बहने लगती है। इसी को हम हवा का चलना या बहना कहते हैं।

समुद्र के आसपास के स्थानों में दिन के समय सूर्य की गर्मी से जमीन गर्म हो जाती है और वायु हल्की होकर वायुमण्डल में ऊपर उठने लगती है। इस वायु का स्थान ग्रहण करने के लिए समुद्र के पानी की सतह से ठण्डी हवा जमीन की ओर बहने लगती है। रात के समय ठीक इसका उल्टा होता है, अर्थात् समुद्र के पानी की अपेक्षा जमीन ठण्डी हो जाती है और हवाएं जमीन से समुद्र की ओर चलने लगती हैं। भूमध्य रेखा के पास अधिक गर्मी होने के कारण गर्म हवा ऊपर उठती रहती है। ये गर्म हवाएं उत्तर और दक्षिण की ओर बहती रहती हैं।

हवाओं की गति पर पृथ्वी के अपने अक्ष पर घूमने (Rotation) का बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। पृथ्वी पश्चिम से पूर्व की ओर घूमती है,इस कारण पछुआ हवा पैदा हो जाती है। पृथ्वी के अपने अक्ष पर घूमने के कारण ही उत्तरी गोलार्द्ध में हवाएं दायीं ओर और दक्षिणी गोलार्द्ध में बायीं ओर विचलित हो जाती हैं। धरती के अलग-अलग स्थानों में हवाओं का चलना ऊपर के चित्र में दिखाया गया है। वायु के बहने की दिशा पहाड़ों की उपस्थिति से भी प्रभावित होती है। पहाड़ हवा की गति में अवरोध पैदा करते हैं जिससे उसकी दिशा में परिवर्तन आ जाते हैं।



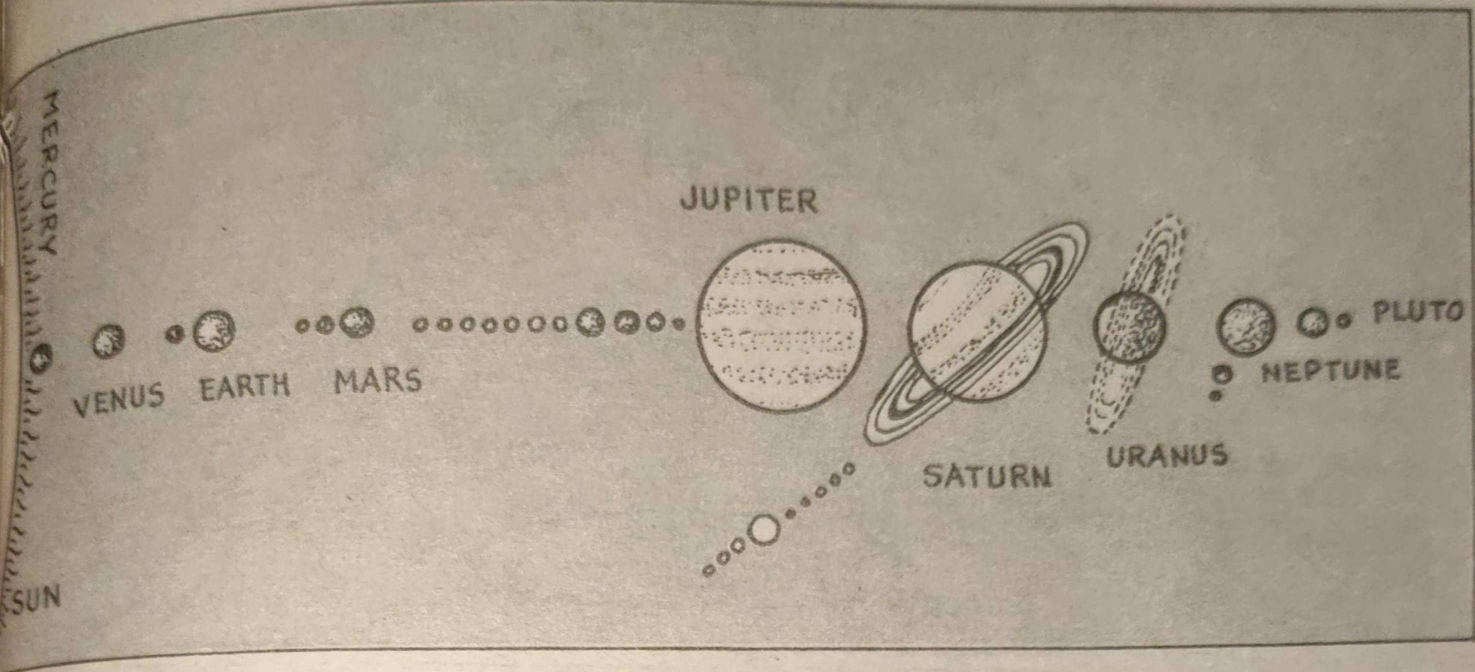
नौ ग्रहों के अतिरिक्त अन्य छोटे ग्रह क्या हैं?

यह हम सब भली-भांति जानते हैं कि हमारे सौर परिवार में नौ ग्रह हैं जो सदा ही सूर्य के चारों ओर अंडाकार कक्षाओं में घूमते रहते हैं। इन ग्रहों के अतिरिक्त बहुत से छोटे-छोटे पिण्ड भी सूर्य की परिक्रमा करते रहते हैं। सूर्य के चारों ओर परिक्रमा करने वाले इन छोटे-छोटे खगोलीय पिण्डों को ऐस्ट्राइड (Asteroids) या प्लानेटाइड्स (Planetoids) कहते हैं।

अब तक लगभग 1600 ऐस्ट्राइडों का पता लगाया जा चुका है। हर एक ऐस्ट्राइड की सूर्य के चारों ओर घूमने की अपनी-अपनी अंडाकार कक्षाएं हैं। इनमें सबसे बड़ा ऐस्ट्राइड सेरस (Ceres) है। इसका आकार पृथ्वी के आकार का 1/800वां भाग है। 1 जनवरी सन् 1801 को इटली के खगोलशास्त्री पिआजी (Piazzi) ने इसका पता लगाया था। इन ऐस्ट्राइडों का व्यास एक किलोमीटर से लेकर 800 किलोमीटर तक है। इन सबका कुल द्रव्यमान (Mass) पृथ्वी के द्रव्यमान का 1/3000वां हिस्सा है। इनमें से लगभग दो तिहाई एस्ट्राइड मंगल और बृहस्पति की कक्षाओं के बीच में ही परिक्रमण करते हैं। कुछ एस्ट्राइड बुध और मंगल के बीच में भी हैं। इकारस (Icarus) ऐस्ट्राइड इनमें से एक है। हिडालगो (Hidalgo) नाम के ऐस्ट्राइड की कक्षा मंगल और शनि के बीच में फैली हुई है। हरमेस (Hermes) और ईरोज (Eros) नाम के ऐस्ट्रोइड पृथ्वी से कुछ लाख किमी० के दायरे में ही आते हैं।

शक्तिशाली दूरदर्शी यंत्रों से देखने पर ये पिण्ड तश्तरी के आकार के दिखाई देते हैं। इनमें से कुछ काफी चमकीले दिखते हैं और कुछ की चमक मन्द है। इनका आकार इनकी चमक के आधार पर ही समझा गया है।

अधिकतर ऐस्ट्राइड उन्हीं पदार्थों से बने हैं जिनसे हमारी चट्टानें बनी हैं। इनकी सतह का तापमान भी अलग-अलग है। इनकी उत्पत्ति के विषय में वैज्ञानिकों का विचार है कि किसी बड़े ग्रह का विस्फोट हो गया होगा। उस बड़े ग्रह के ही ये छोटे-छोटे टुकड़े सूर्य की परिक्रमा करने लगे होंगे। इनकी उत्पत्ति के विषय में अभी तक कोई भी सफल सिद्धान्त हमारे सामने नहीं आया है। ऐसा अनुमान है कि सन् 1990 तक इन पिण्डों के विषय में कुछ अधिक जानकारी प्राप्त हो जाएगी, क्योंकि वैज्ञानिक लोग इन पिण्डों पर अन्तरिक्ष यान भेजने की योजनाएं बना रहे हैं।



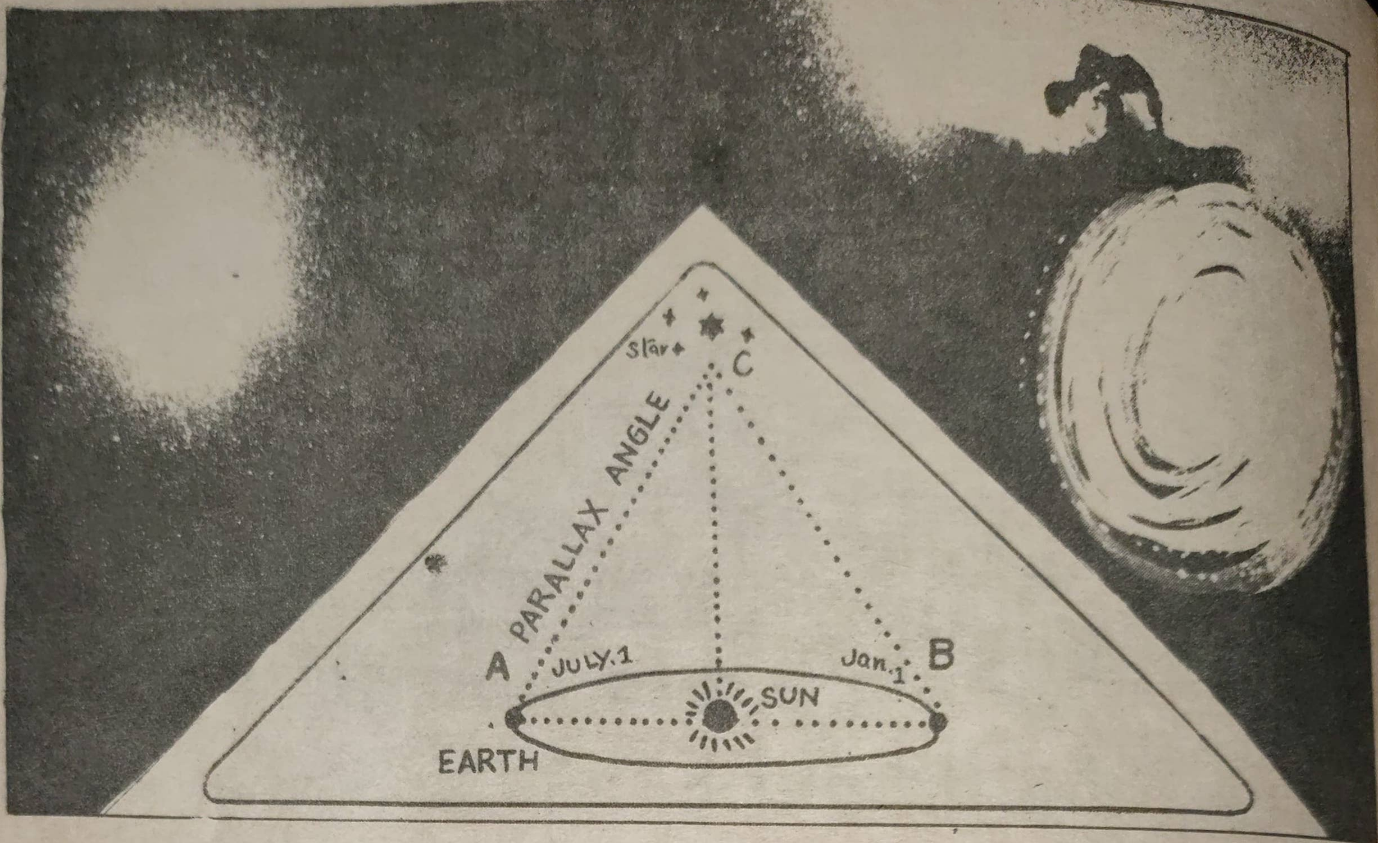
क्या सभी ग्रहों के उपग्रह हैं?

वे खगोलीय पिण्ड जो सूर्य की परिक्रमा करते हैं ग्रह (Planet) कहलाते हैं। हमारे सौर परिवार में नौ ग्रह हैं। सूर्य से बढ़ती हुई दूरी के क्रमानुसार ये ग्रह इस प्रकार हैं—बुध (Mercury), शुक्र (Venus), पृथ्वी (Earth), मंगल (Mars), वृहस्पति (Jupiter), शनि (Saturn), यूरेनस (Uranus), नेपच्यून (Neptune) और प्लूटो (Pluto)। इन ग्रहों का परिक्रमण करने वाले पिण्डों को उपग्रह (Satellites) कहा जाता है।

अब तक के अनुसंधानों से पता चला है कि सभी ग्रहों के उपग्रह नहीं हैं। बुध, शुक्र और प्लूटो का कोई उपग्रह नहीं है। पृथ्वी का एक उपग्रह है जिसे चन्द्रमा (Moon) कहते हैं। मंगल के दो उपग्रह हैं। वृहस्पति के उपग्रहों की संख्या 14 है। शनि के उपग्रहों की संख्या सत्रह है। यूरेनस और नेपच्यून के क्रमशः पांच और दो उपग्रह हैं।

कुछ उपग्रहों का व्यास अधिक नहीं है, लेकिन कुछ ऐसे भी हैं जो हमारे चन्द्रमा से भी बड़े हैं। मंगल के दो उपग्रह डिमोज़ (Deimos) और फोबोज़ (Phobos) और वृहस्पति के बाहरी उपग्रहों का व्यास कुछ किमी० ही है। वृहस्पति के दो उपग्रहों गैनीमेड (Ganymede) और कैलिस्टो (Callisto) का आकार तो बुध और मंगल ग्रहों के बराबर है। शनि के टिटान (Titan) और नेपच्यून के ट्राइटन (Triton) उपग्रहों के व्यास तो लगभग 5500 किमी० हैं जो हमारे चन्द्रमा से भी अधिक हैं।

टिटान को छोड़कर सभी उपग्रहों के ग्रुरुत्वबल का मान कम है। इसलिए किसी भी उपग्रह पर वायुमंडल नहीं है। टिटान पर तापमान कम होने के कारण मीथेन और हाइड्रोजन गैसों का वायुमण्डल है। लेकिन इस उपग्रह पर भी जीवन नहीं है। उपग्रहों की उत्पत्ति के विषय में अभी तक कोई संतोषजनक सिद्धांत हमारे सामने नहीं आया है। वैज्ञानिकों का कहना है कि इनकी उत्पत्ति भी उसी प्रकार हुई है जिस प्रकार कि सौर परिवार की हुई है।

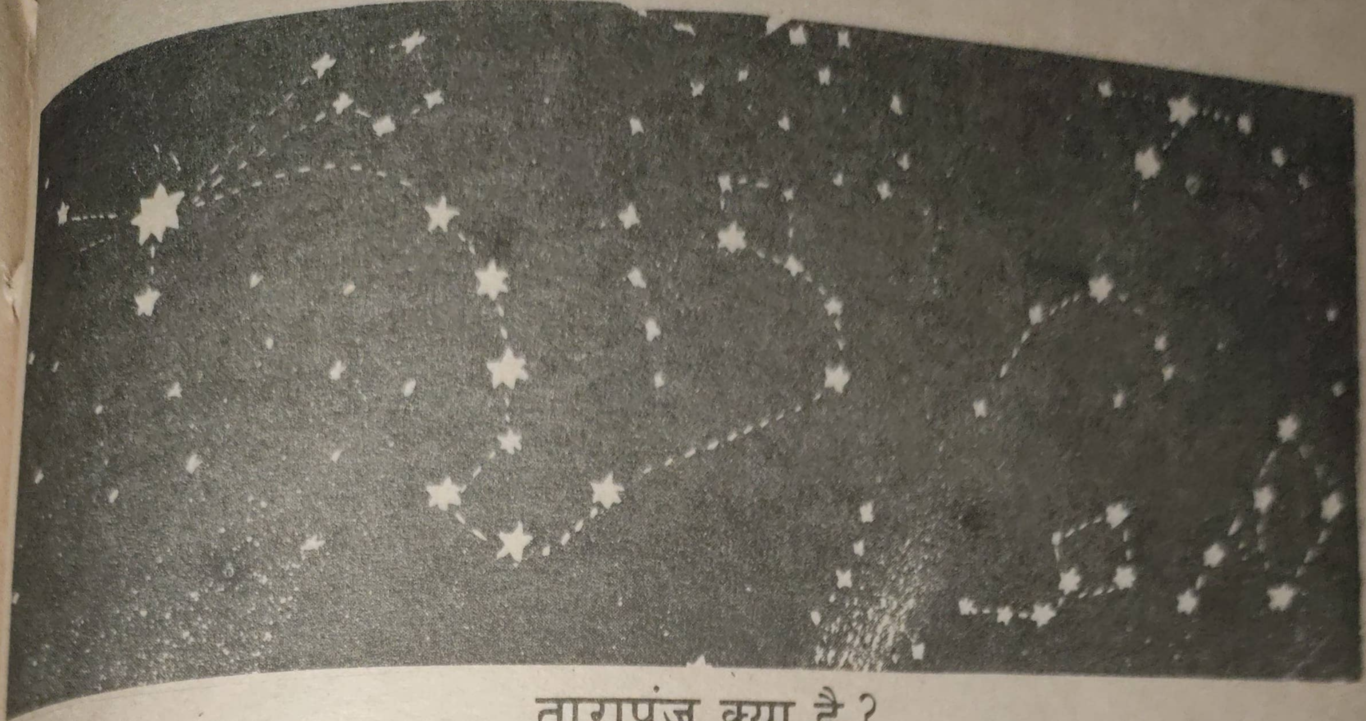


धरती से तारों की दूरी का पता कैसे लगाते हैं?

रात्रि के अन्धकार में आकाश में चमकते हुए तारों की छटा बड़ी ही सुन्दर लगती है। ये सभी तारे अपने ही प्रकाश से चमकते हैं। इनमें कोई अधिक चमकीला दिखता है तो कोई कम। इसका कारण यह है कि सभी तारों के आकार और पृथ्वी से इनकी दूरियां एक सी नहीं हैं। ये तारे हमारी धरती से अरबों-खरबों मील की दूरी पर हैं। क्या तुम जानते हो कि इन आकाशीय पिण्डों की दूरी किस प्रकार ज्ञात की जाती है?

नजदीक के तारों की दूरी ज्ञात करने का वैज्ञानिकों ने एक सरल तरीका निकाला है। मान लो हमें किसी तारे की दूरी पता करनी है तो (चित्र देखें) हम धरती के स्थान A से तारे का चित्र ले लेते हैं। छः महीने बाद पृथ्वी की स्थिति B पर आ जाती है, क्योंकि यह सूर्य के चारों ओर परिक्रमा करती है। अब हम B स्थान से तारे का दूसरा चित्र ले लेते हैं। दोनों चित्रों की तुलना से पता चलता है कि पृथ्वी के परिक्रमण के कारण तारे की स्थिति पहली स्थिति से कुछ खिसक गई है। हम जानते हैं कि AB रेखा की लम्बाई पृथ्वी की कक्षा के व्यास के बराबर है। यह दूरी 18.6 करोड़ मील है। अब कोण ACB को नाप लिया जाता है। इन दोनों आंकड़ों से तारे C की दूरी निकल आती है।

इस तरीके को इस्तेमाल करके बहुत से तारों की दूरियां मापी गई हैं। एल्फा सेन्टोरी (Alpha Centauri) की दूरी लगभग 4.35 प्रकाश वर्ष निकाली गई है। साइरस (Sirius) की दूरी 8.48 प्रकाश वर्ष निकाली गई है। इस तरीके से बहुत अधिक दूर के तारों की दूरी ज्ञात नहीं की जा सकती है। दूर के तारों की दूरी उनकी चमक के आधार पर निकाली जाती है। वैज्ञानिकों ने ऐसे 2 तारों का पता लगा लिया है जिनकी दूरी 80 लाख प्रकाश वर्ष है।



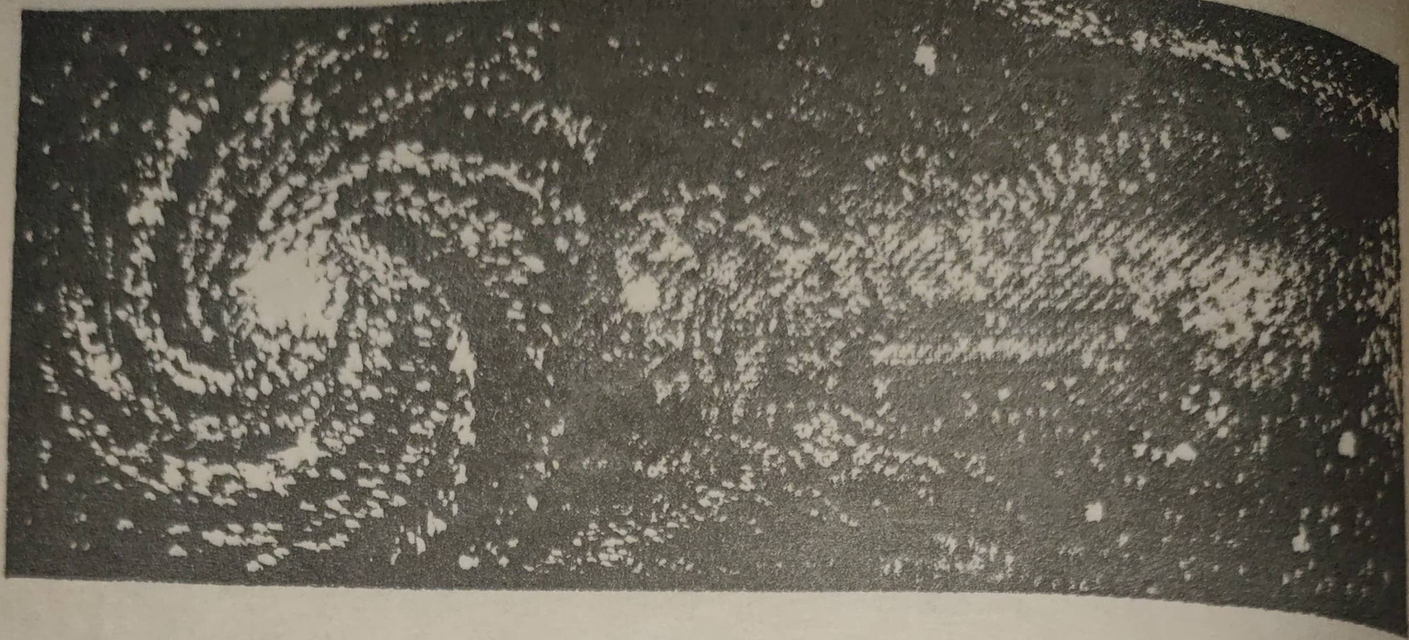
तारापुंज क्या है?

आकाश में किसी विशेष आकृति में दिखने वाले तारों के समूह को तारापुंज कहते हैं। प्राचीन काल में जब मनुष्य ने तारों का अध्ययन करना शुरू किया तो उसने देखा कि तारों के बहुत से ऐसे समूह हैं जिनको अलग-अलग काल्पनिक रेखाओं द्वारा जोड़ने पर किसी जानवर या वस्तु का चित्र उभरता हुआ प्रतीत होता है। किसी प्रकार के तारों के समूहों को तारापुंज कहा जाने लगा। उसने इन समूहों को उभरने वाले चित्र के आधार पर नाम देना शुरू कर दिया। अब तक 88 तारापुंजों का नामकरण किया जा चुका है और उनके विषय में अध्ययन भी किया जा चुका है।

इनमें से बहुत से तारापुंजों को उत्तरी गोलार्द्ध से देखा जा सकता है। कुछ ऐसे हैं जिन्हें सिर्फ दक्षिणी गोलार्द्ध से देखा जा सकता है। ऊपर के चित्र में उत्तरी गोलार्द्ध से गर्मी और जाड़े के मौसम में दिखने वाले कुछ विशेष तारापुंजों को दिखाया गया है। लिओ (Leo) लायन (Lion) टौरस (Taurus) बुल (Bull) उर्सा मेजर (Ursa Major), द ग्रेट बीअर (The Great Bear), ओरियन (Orion) द हन्टर (The Hunter) साइग्नस (Cygnus) स्वान (Swan) आदि मुख्य तारापुंज हैं। इन सभी तारापुंजों के चार्ट बने हुए हैं। इन चार्टों की सहायता से आकाश में इन तारापुंजों को देखा जा सकता है। कुछ तारापुंज ऐसे हैं जो गर्मी के मौसम में दिखाई देते हैं और दूसरे कुछ ऐसे हैं जो जाड़े में दिखाई देते हैं।

प्राचीन काल में मनुष्य इन्हीं तारापुंजों की सहायता से समुद्री यात्राओं के दौरान दिशाएं ज्ञात किया करता था। इन तारापुंजों और हमारी पृथ्वी की सापेक्ष स्थिति बदलती रहती है। केवल ध्रुवतारा (North star or Polaris) ही ऐसा है जिसकी स्थिति स्थिर रहती है। ध्रुवतारे की स्थिति जान लेने के बाद कई तारापुंजों को ऊपर के चित्र द्वारा आसानी से पहचाना जा सकता है।

खगोलविद्या के अध्ययन में इन तारापुंजों का अपना विशेष महत्त्व है। इनकी सहायता से वैज्ञानिक दूसरे तारों की स्थिति आसानी से पता कर लेते हैं। जिस प्रकार धरती के शहरों, पहाड़ों, नदियों, समुद्रों आदि को प्रदर्शित करने के लिए अक्षांश और देशांतर रेखाओं का महत्त्व है, उसी प्रकार आकाश के तारों के अध्ययन में तारापुंजों का महत्त्व है। अन्तरिक्ष अभियानों में मार्गदर्शन के लिए तारापुंज बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुए हैं।



नीहारिकाएं क्या हैं ?

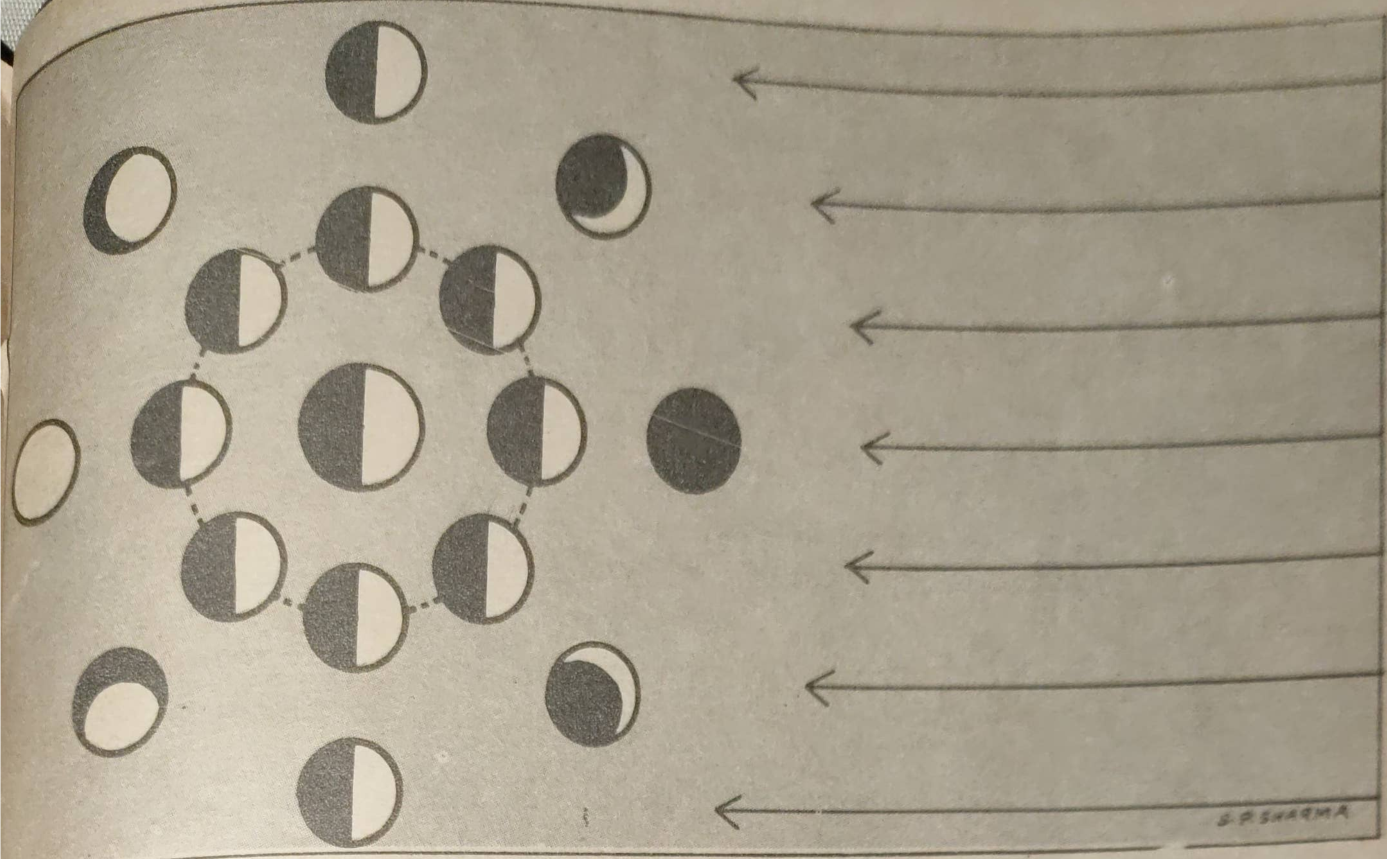
रात्रि में आकाश को किसी दूरदर्शी यंत्र से देखने पर हमें कुछ बड़े-बड़े काले या सफेद धब्बे दिखाई देते हैं। इन्हीं धब्बों को हम नीहारिका या नेबुला कहते हैं। नेबुला शब्द लैटिन भाषा से लिया गया है जिसका अर्थ है धुन्ध (Mist)। नीहारिकाएं हमें वास्तव में धुन्ध के रूप में ही दिखती हैं।

काले रंग के धब्बों को काली नीहारिकाएं (Black nebulae) और सफेद रंग के धब्बों को चमकदार नीहारिकाएं (Bright nebulae) कहते हैं। ये नीहारिकाएं वास्तव में धूल, गैस और घने तारों के समूह हैं। इनमें से बहुत सी नीहारिकाएं हमारी आकाश गंगा (Milky Way) में हैं और कुछ दूसरी हमारी आकाश गंगा के बाहर हैं। शक्तिशाली दूरदर्शी यंत्रों की सहायता से इनके विषय में बहुत सी जानकारी प्राप्त की गई है।

हमारी आकाश गंगा में लगभग 2000 नीहारिकाएं हैं। आकाश गंगा से बाहर करोड़ों नीहारिकाओं का अनुमान किया जाता है। इनमें कुछ अंडाकार शक्ल की हैं, तो कुछ कुण्डलाकार हैं। कुछ की बनावट में कोई क्रम नहीं है।

नीहारिकाओं का तापमान 6000° सेन्टीग्रेड से 12000° सेन्टीग्रेड के बीच पाया गया है। काली नीहारिकाओं का तापमान चमकीली नीहारिकाओं से काफी कम है इसलिए वे काली दिखती हैं। इनमें मुख्य रूप से हाइड्रोजन और हीलियम गैसें हैं। सबसे नजदीक की नीहारिका की दूरी 300 प्रकाश वर्ष है। हमारी आकाश गंगा के बाहर की नीहारिकाएं कम से कम 150,000 प्रकाश वर्ष दूर हैं।

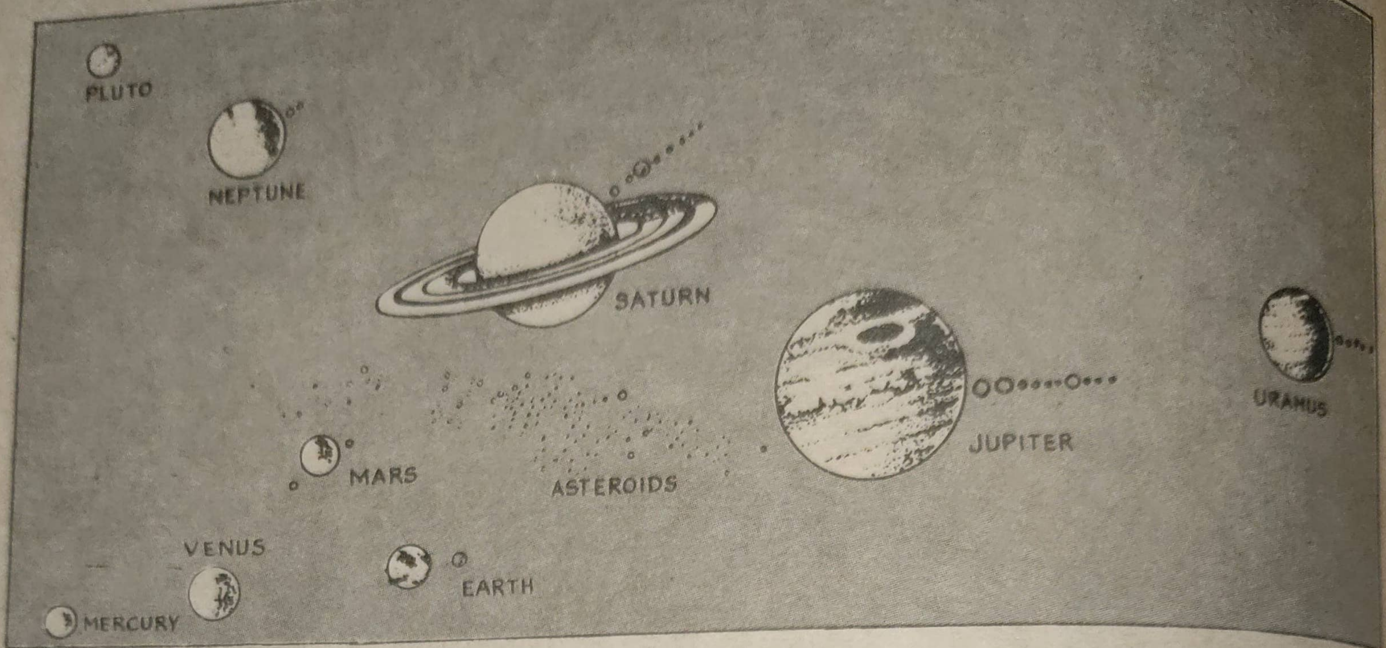
वैज्ञानिकों ने कुछ नीहारिकाओं के चित्र भी लिए हैं। क्रैब नीहारिका (Crab Nebula) का एक चित्र खींचा गया और उससे पता लगाया गया कि यह लगभग 6000 प्रकाश वर्ष दूर है। एक दूसरी नीहारिका का चित्र घोड़े के सिर जैसा है इसलिए इसे हौर्स नेबुला का नाम दिया गया। एक और नीहारिका का चित्र अंगूठी जैसा पाया गया इसलिए इसका नाम रिन्ग नेबुला (Ring Nebula) रख दिया गया है। इस प्रकार अनेकों नीहारिकाओं का अध्ययन वैज्ञानिक लोग कर चुके हैं।



चन्द्रमा छोटा-बड़ा क्यों दिखाई देता है?

यह एक आम अनुभव की बात है कि पूर्णिमा के दिन चन्द्रमा चमकती हुई तश्तरी जैसा दिखाई देता है, लेकिन घटते-घटते वह अमावस्या की रात को बिल्कुल गायब हो जाता है। चन्द्रमा के इस घटने-बढ़ने को चन्द्रमा की कलाएं (Phases of the moon) कहा जाता है। क्या तुम जानते हो कि चन्द्रमा हमें घटता-बढ़ता क्यों दिखाई देता है?

वास्तविकता यह है कि चन्द्रमा न तो घटता है और न ही बढ़ता है। यह सूर्य के पड़ने वाले प्रकाश की विविधता के कारण ही घटता-बढ़ता दिखाई देता है। हम सभी जानते हैं कि चन्द्रमा पृथ्वी का उपग्रह है और जिस प्रकार पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा करती है ठीक उसी प्रकार चन्द्रमा, पृथ्वी और सूर्य की परिक्रमा करता है। इसे पृथ्वी की एक परिक्रमा करने में लगभग 29½ दिन लगते हैं। यह सूर्य के प्रकाश से चमकता है। इस पर पड़ने वाला सूर्य का प्रकाश परावर्तित होकर हमारी धरती तक पहुंचता है। चन्द्रमा का एक ही भाग पृथ्वी की ओर रहता है। इसका दूसरा भाग हमें दिखाई नहीं देता। जब चन्द्रमा सूर्य और पृथ्वी के बीच में आ जाता है तो इसका चमकने वाला भाग पृथ्वीवासियों को दिखाई नहीं देता है, केवल अन्धकारमय भाग ही पृथ्वी के सामने होता है। इसलिए हमें चन्द्रमा का कोई भाग चमकता हुआ दिखाई नहीं देता हैं। यही अमावस्या का चन्द्रमा है। जैसे-जैसे चन्द्रमा की गति के कारण इसकी स्थिति बदलती है वैसे-वैसे इसकी सतह का कुछ प्रकाशित भाग हमें दिखाई देने लगता है। अमावस्या के बाद एक सप्ताह तक चन्द्रमा की आधी सतह हमें दिखने लगती है। धीरे-धीरे पूर्णिमा तक इसकी प्रकाशित सतह का दिखने वाला भाग बढ़ता जाता है और पूर्णिमा के दिन पृथ्वी से दिखने वाली सतह पूर्ण प्रकाशित हो जाती है। यही पूर्णिमा का चन्द्रमा होता है। इस दिन पृथ्वी सूर्य और चन्द्रमा के बीच में होती है। अगले पन्द्रह दिनों में फिर इसकी प्रकाशित सतह का हिस्सा दिखाई देना कम होता जाता है और पन्द्रह दिन बाद अर्थात् अमावस्या को फिर हमें इसकी चमकने वाली सतह का दिखाई देना बन्द हो जाता है। (ऊपर का चित्र देखें) यही क्रम लगातार चलता रहता है और हमें चन्द्रमा छोटा-बड़ा दिखाई देता रहता है। पूर्णिमा का चन्द्रमा सूर्य के छिपते ही दिखने लगता है और सूर्य के निकलते ही छिप जाता है।



ब्रह्माण्ड के सभी पिण्ड गोल क्यों हैं?

धरती गोल है, सूर्य और चन्द्रमा भी गोल है, यहांतक कि सभी ग्रह, उपग्रह और तारों का आकार गोल है। क्या तुम जानते हो कि ब्रह्माण्ड के ये सभी पिण्ड गोल क्यों हैं?

विज्ञान के एक सिद्धांत के अनुसार ब्रह्माण्ड की हर वस्तु निम्नतम ऊर्जा स्थिति (Minimum Energy State) में रहना चाहती है। न्यूनतम ऊर्जा स्थिति में ही वस्तुओं में अधिकतम स्थिरता (Maximum Stability) आती है। अतः अधिकतम स्थिरता के लिए वस्तु की ऊर्जा निम्नतम होनी चाहिए। अब प्रश्न उठता है कि वस्तुओं के किस रूप में उनकी ऊर्जा न्यूनतम होगी। सभी रचनाओं में गोले की बनावट ही ऐसी है जिसकी सतह का क्षेत्रफल सबसे कम होता है। इसलिए गोलाकार वस्तुओं की सतह की ऊर्जा निम्नतम होती है। इसी निम्नतम ऊर्जा या अधिकतम स्थिरता को प्राप्त करने के लिए वस्तुएं गेंद जैसा आकार धारण करने की कोशिश करती हैं। यही कारण है कि सूरज, चांद, तारे, धरती और दूसरे सभी खगोलीय पिण्डों की बनावट गोल होती है।

वर्षा में गिरने वाली पानी की बूंदें भी गोल होती हैं। इसका कारण भी यही है कि गोलाकार बूंद की सतह की ऊर्जा निम्नतम होती है और उसकी स्थिरता अधिकतम होती है। पानी की बूंदें किसी भी तरीके से पैदा की जाएं वे तुरन्त ही गोलाकार रूप में बदलने का प्रयास करती हैं।

अणु और परमाणु की बनावट भी गोलाकार है। परमाणुओं में उपस्थित इलेक्ट्रोन, प्रोटोन और न्यूट्रान जैसे कण भी गोल हैं।

तुमने देखा होगा कि मनुष्य भी कम से कम काम करके अधिक से अधिक प्राप्ति करना चाहता है। पढ़ने वाला विद्यार्थी भी कम से कम श्रम-शक्ति द्वारा परीक्षा में अधिक से अधिक अंक प्राप्त करना चाहता है। अतः निम्नतम ऊर्जा स्थिति को प्राप्त करने की प्रवृत्ति सभी वस्तुओं में है। जैसे ही कोई वस्तु निम्नतम ऊर्जा स्तर को प्राप्त कर लेती है उसकी बनावट गेंद जैसी गोल हो जाती है।



हमें दिन में तारे क्यों नहीं दिखाई देते?

शाम के बाद जैसे ही अंधेरा होता है आकाश में तारे दिखाई देने लगते हैं। जैसे-जैसे अंधेरा बढ़ता जाता है दिखने वाले तारों की संख्या और चमक भी बढ़ती जाती है। रात जितनी अधिक अंधेरी होती है तारे उतने ही अधिक चमकीले और स्पष्ट दिखाई देते हैं। लेकिन चांदनी रात में तारे कुछ कम चमकीले दिखते हैं। जैसे ही सुबह होने को होती है दिखने वाले तारों की संख्या कम होने लगती है। उस समय कुछ बहुत अधिक चमकीले तारे ही दिखाई देते हैं। सूर्य निकलते ही हमें तारे दिखने बन्द हो जाते हैं। क्या तुम जानते हो कि दिन के समय तारे क्यों नहीं दिखाई देते?

कुछ लोग सोचते हैं कि जैसे रात को सूर्य छिप जाता है वैसे ही दिन में तारे छिप जाते हैं। लोगों की यह धारणा एकदम गलत है। तारे कभी भी छिपते नहीं हैं। दिन में वे सूर्य के तेज प्रकाश के कारण दिखाई नहीं देते हैं। वास्तव में होता यह है कि सूर्य का प्रकाश हमारे वायुमंडल में उपस्थित धूल, गैस और जलकणों से टकराकर चारों दिशाओं में फैल जाता है। प्रकाश के इस प्रकार फैलने को प्रकाश प्रकीर्णन (Light scattering) कहते हैं। प्रकाश के फैलने से सारा वायुमंडल चमकने लगता है। दूर स्थित तारों से आने वाला क्षीण प्रकाश इस चमक की तुलना में बहुत कम हो जाता है। इनकी कम चमक इस अधिक चमक में हमारी आंखों तक पहुंच नहीं पाती। इसलिए हमें दिन में तारे दिखाई नहीं देते। इस बात को इस प्रकार भी समझा जा सकता है। रात के अंधेरे में जलता हुआ दीपक बहुत दूर से दिखाई देता है लेकिन दिन के प्रकाश में वह दीपक हमें थोड़ी दूर से भी दिखाई नहीं देता है। रात में सूर्य का प्रकाश वायुमण्डल पर नहीं पड़ता इसलिए तारों का मंद प्रकाश भी हमारी आंखों तक पहुंच जाता है और रात में तारे दिखाई देने लगते हैं। यदि वायुमण्डल न हो तो हम दिन में भी तारे देख सकते हैं।



तारे क्यों टिमटिमाते हैं ?

रात्रि में लाखों तारे हमें आकाश में दिखाई देते हैं। ये सभी तारे चमकते रहते हैं और सभी दिशाओं में अपना प्रकाश भेजते रहते हैं। यद्यपि ये देखने में बहुत छोटे-छोटे नजर आते हैं, लेकिन वास्तव में इनका आकार बहुत बड़ा है। इनमें से अधिकतर तारे ऐसे हैं जो हमारी पृथ्वी से कई गुना बड़े हैं। इनका आकार छोटा इसलिए दिखाई देता है कि ये हमारी धरती से बहुत दूर हैं। रात्रि में जब हम आकाश की ओर देखते हैं तो ये तारे हमें टिमटिमाते नजर आते हैं। क्या तुम जानते हो कि तारे टिमटिमाते हुए क्यों दिखाई देते हैं?

हमारी धरती के चारों ओर वायु का एक आवरण है, जिसे हम वायुमण्डल कहते हैं। वायुमण्डल से परे रिक्त स्थान है। वायुमण्डल में उपस्थित गैसें सदा ही गतिशील रहती हैं। इस गतिशीलता के कारण वायुमण्डल में वायु का घनत्व कहीं कम होता है तो कहीं अधिक। घनत्व के अलग-अलग होने के कारण वायु का अपवर्तनांक (Refractive index) भी अलग-अलग होता है। तारों से आने वाली किरणें जब धरती के वायुमण्डल में प्रवेश करती हैं तो अलग-अलग स्थानों पर वायु के घनत्व की भिन्नता और तदनुसार अपवर्तनांक की भिन्नता के कारण ये किरणें हमारी आंखों तक पहुंचने से पहले बहुत बार अपने रास्ते से विचलित (Deviate) हो जाती हैं।

एक माध्यम से दूसरे माध्यम में जाने पर प्रकाश के इस प्रकार विचलित होने को अपवर्तन (Refraction) कहते हैं। प्रकाश के इस अपवर्तन के कारण कभी प्रकाश हमारी आंखों तक अधिक मात्रा में पहुंचता है तो कभी कम मात्रा में। प्रकाश की कम या अधिक मात्रा के कारण ही हमें तारे टिमटिमाते दिखाई देते हैं।

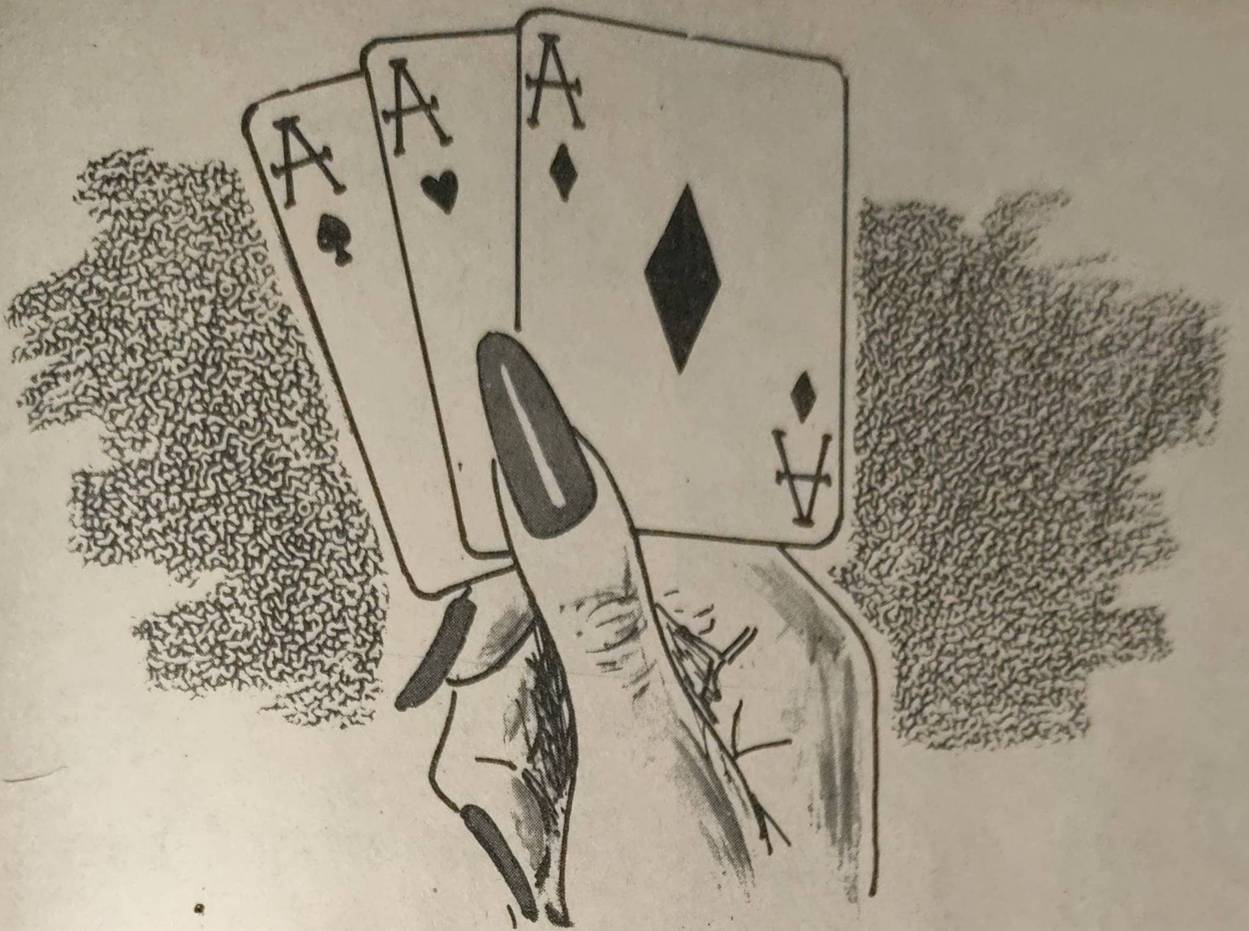
अब प्रश्न उठता है कि तारों की तरह चंद्रमा, सूर्य और दूसरे ग्रह टिमटिमाते हुए क्यों नहीं प्रतीत होते? इसका कारण यह है कि तारों की अपेक्षा सूर्य, चन्द्रमा और अन्य ग्रह पृथ्वी के बहुत निकट हैं और इनका आकार तारों की अपेक्षा बड़ा दिखाई देता है। (वास्तव में इनका आकार तारों से छोटा है) अतः चन्द्रमा, सूर्य और ग्रहों द्वारा आंख पर बनाए गए कोण तारों के द्वारा बनाए गए कोणों से बड़े होते हैं। इस कारण वायुमण्डल द्वारा प्रकाश की किरणों का विचलन हमारी आंखें देख नहीं पातीं। इसीलिए सूर्य, चंद्रमा आदि टिमटिमाते नहीं दिखते।



5
खेल-खिलाड़ी







ताश का खेल कब शुरू हुआ?

आज संसार के सभी देशों में ताश के तरह-तरह के खेल समय बिताने के लिए खेले जाते हैं। ब्रिज (Bridge) ताश का एक अन्तर्राष्ट्रीय खेल है। इसके अतिरिक्त अलग-अलग देशों के अपने अलग-अलग ताश के खेल हैं। इन सभी खेलों में मैदान की जरूरत नहीं होती। ताश के खेल घर में ही खेले जाते हैं। क्या तुम जानते हो कि ताश के खेलों की शुरुआत कैसे हुई?

कुछ लोगों का ख्याल है कि ताश के खेलों की शुरुआत मिस्र से हुई, लेकिन कुछ दूसरे लोगों का कहना है कि इनका आरम्भ भारत या चीन से हुआ। लिखित प्रमाणों के अनुसार 13वीं सदी में ताश के खेल यूरोप के देशों में खेले जाते थे। इनको टेरोट्स (Tarots) कहते थे। इन पर कोई न कोई चित्र बना होता था। इनकी संख्या 22 थी। बाद में इन कार्डों में इक्का, दुक्की आदि जैसे 56 कार्ड और लगा दिए गए और इस प्रकार ताश की एक जोड़ी में 78 कार्ड हो गए। बाद में इन्हीं कार्डों में से आज के 52 ताशों की जोड़ी की शुरुआत फ्रान्स के लोगों ने की। इन 52 कार्डों को चार हिस्सों में बांटा गया। एक तरह के 13 कार्डों को अलग-अलग नाम दिए गए। चार हिस्सों को पान (Heart), चिड़ी (Club), हुकुम (Spade) और ईंट (Diamond) के नाम से पुकारा गया। इन्हीं 52 ताशों का प्रयोग इंग्लैंड के लोगों ने भी शुरू किया। धीरे-धीरे ताश का खेल दुनिया के दूसरे देशों में भी फैल गया।

शुरू-शुरू में ताशों के चित्र हाथ से पेन्ट किए जाते थे। इसलिए ये बहुत महंगे पड़ते थे। महंगाई के कारण इन्हें आम लोग नहीं खरीद पाते थे। लेकिन छपाई की कला के आविष्कार के बाद तरह-तरह के सुन्दर और सस्ते ताश बनाए जाने लगे जिन्हें कोई भी खरीद सकता है। शुरू-शुरू में ताशों का आकार वर्गाकार या गोल होता था लेकिन आज सभी ताशों की लम्बाई 8½ सेमी० और चौड़ाई 6 या 5½ सेमी० होती है।

ताशों का खेल मनोरंजन की दृष्टि से देखा जाए तो बुरा नहीं है, लेकिन कुछ लोग इनसे जुआ खेलते हैं। जुए का खेल बहुत बुरा है। इससे समय तो बर्बाद होता ही है साथ ही धन की भी बर्बादी होती है।



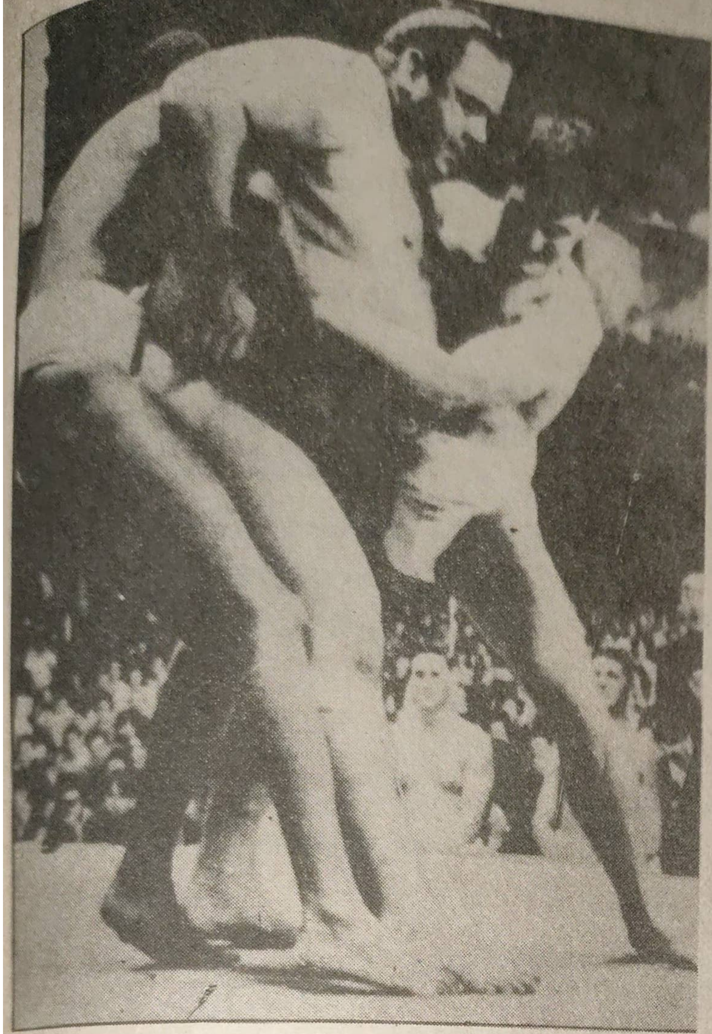
टेनिस का आरम्भ कैसे हुआ?

प्राचीन काल में यूनान और रोम में गेंद से एक खेल खेला जाता था जो सन् 1050 में ज्यू दे पौमा (Jeu de Pauma) के नाम से फ्रान्स में खेला जाने लगा। यही खेल आधुनिक लॉन टेनिस की शुरुआत थी। टेनिस शब्द की उत्पत्ति भी फ्रेन्च भाषा के तेनेज (Tennez) शब्द से हुई है। सन् 1300 तक इस खेल का नाम ला बोदे (La baude) पड़ गया,सन् 1400 तक यह खेल सारे फ्रान्स में खेला जाने लगा था। इसी साल इस खेल का नाम टेनिस पड़ा। संसार का सबसे पुराना टेनिस का कोर्ट (Court), जो आज भी है, पेरिस में 1496 में बनाया गया था। धीरे-धीरे यह खेल संसार के दूसरे देशों में भी खेला जाने लगा। आज यह खेल सभी जगह खेला जाता है। यह खेल काफी महंगा पड़ता है इसलिए इसे अमीरों का खेल कहते हैं।

इस खेल को फलालेन की खोल चढ़ी हुई रबर की गेंद से खेला जाता है। इस गेंद को रेशम या नाइलोन की रस्सियों से बने रैकट द्वारा एक तीन फुट ऊंची जाली के आर-पार फेंका जाता है। खेल के मैदान को टेनिस कोर्ट (Tennis Court) कहते हैं। टेनिस दो या चार खिलाड़ियों द्वारा खेला जाता है। जिस खेल में जाली के दोनों ओर एक-एक खिलाड़ी होता है उसे 'सिंगल्स' कहते हैं। 'डबल्स' में नेट के दोनों ओर दो-दो खिलाड़ी होते हैं। टेनिस स्त्री और पुरुष दोनों का ही खेल है।

प्रतिवर्ष टेनिस की चैम्पियनशिप प्रतियोगिताएं होती हैं। इसकी दो प्रसिद्ध प्रतियोगिताएं हैं। 'डेविस कप' पुरुषों के लिए है और 'वाइटमैन कप' महिलाओं के लिए है। डेविस कप के मैच अन्तर्राष्ट्रीय होते हैं जबकि वाइटमैन कप के मैच केवल अमरीका और इंग्लैंड के खिलाड़ियों के बीच होते हैं। इसी प्रकार विम्बलडन (इंग्लैंड) में होने वाले मैच भी काफी प्रसिद्ध हैं।

आज संसार में टेनिस के लगभग 3000 अच्छे खिलाड़ी हैं और अंतर्राष्ट्रीय स्तर की प्रतिस्पर्धा के लिए 32 टेनिस कोर्ट हैं। सन् 1979 में फ्रान्स में एक और बहुत ही सुन्दर नया टेनिस कोर्ट बनाया गया है। संसार का सबसे पहला टेनिस का चैम्पियन फ्रान्स का क्लर्ज़ (Clerge) था। स्वीडन का ब्योर्न बोर्ग (Bjorn Borg) पिछले पांच वर्ष विम्बलडन का चैम्पियन रहा। 1981 की चैम्पियनशिप अमरीका के जॉन मेकनरो (John McEnroe) ने ब्योर्न बोर्ग को हराकर हासिल की।



कुश्ती के खेल की शुरुआत कब हुई ?

कुश्ती का खेल बहुत पुराना है। मिस्र के पुराने मक़बरों पर कुश्ती लड़ते हुए व्यक्तियों के सैकड़ों चित्र देखने को मिलते हैं। इन चित्रों में कुश्तियों के सभी दांव-पेंच दिखाए गए हैं। इन चित्रों से स्पष्ट है कि कुश्ती का खेल कम से कम 5000 वर्ष पुराना है।

आधुनिक ढंग की कुश्तियों की शुरुआत यूनान में हुई। यूनानियों का कहना है कि इसकी शुरुआत हीरो थेसुअस (Hero Theseus) ने की थी। कुश्ती का खेल प्राचीन यूनानियों का बहुत ही प्रिय खेल था। वहां के पहलवान शरीर पर तेल मलकर बालू मलते थे, ताकि कुश्ती के समय उनकी पकड़ बेहतर हो सके। प्राचीन यूनान में क्रोटन का मिलो (Milo of Croton) नामक व्यक्ति कुश्तियों का चैम्पियन था। उसने राष्ट्रीय खेलों में 26 कुश्तियां जीती थीं और ओलम्पिक खेलों में 6 बार विजय प्राप्त की थी। जापान में कुश्ती के खेल की शुरुआत ईसा से लगभग 23 वर्ष पूर्व हुई। इसे सूमो (Sumo) कुश्ती के नाम से पुकारते थे।ब्रिटेन के राजा हेनरी अष्टम कुश्तियों के बहुत शौकीन थे।

कुश्ती का खेल दो प्रकार का होता है। फ्रीस्टाइल और ग्रीको रोमन (Greco-Roman)। फ्रीस्टाइल कुश्ती पिछले कई हजार वर्षों से विश्व के अलग-अलग देशों में विभिन्न रूपों में प्रचलित रही है। ग्रीको रोमन कुश्ती की शुरुआत 1860 में फ्रांस में हुई। इस कुश्ती में टांगों का इस्तेमाल नहीं किया जाता है। कुश्ती के मुकाबले 12 मीटर भुजा वाले वर्गाकार गद्दे पर लड़े जाते हैं।

आधुनिक ओलम्पिक खेलों में कुश्ती को 1904 में शामिल किया गया। विश्व में बहुत से नामी पहलवान

पैदा हुए हैं। 1964 के टोकियो ओलम्पिक में जापान के ओसामू वातानबे (Osamu Watanabe) को फ्रीस्टाइल फेदरवेट चैम्पियन (Freestyle Featherweight Champion) घोषित किया गया था। यह उनकी लगातार 187वीं जीत थी। वे अपने जीवन में कोई भी कुश्ती नहीं हारे। ओलम्पिक खेलों में कुश्ती प्रतियोगिता में अब तक भारत को एक कांस्य पदक मिला है जिसे के०डी०जादव ने 1952 में जीता था। तीन ओलम्पिक खेलों में सफल रहने वाले पहलवान हैं–स्वीडन का कार्ल वेस्टरग्रेन (Carl Westergren) और इवार जोहनसन (Ivar Johansson) तथा रूस का अलेक्सान्द्र मेदवेद (Aleksandr Medved)।

संसार में सबसे अधिक फ्रीस्टाइल कुश्तियों में चैम्पियनशिप प्राप्त करने वालों में अलेक्सान्द्र मेदवेद का नाम सबसे पहले आता है। इन्होंने दस बार चैम्पियनशिप प्राप्त की। ग्रीको रोमन कुश्ती का सबसे लम्बा, 11 घंटे 40 मिनट का मुकाबला रूस के मारटिन क्लीन (Martin Klein) और फिनलैण्ड के अलफ्रेड आसकेनेन (Alfred Asikainen) में हुआ। भारत के गामा पहलवान ने सारे विश्व में भारतीय कुश्ती का डंका बजाया। गामा एक दिन में 29 सेर दूध, तीन पाव घी, दो पाव मक्खन, दो सेर बादाम व छः सेर फल खाते थे। इनकी गिनती विश्व के गिने-चुने पहलवानों में की जाती है।



क्या शतरंज का खेल भारत में आरम्भ हुआ था ?

शतरंज को बादशाहों का खेल कहा जाता है। शायद यह सबसे पुराना खेल है। कुछ लोगों का तो कहना है कि इस खेल की शुरुआत लगभग 5000 वर्ष पहले हुई थी। शतरंज को अंग्रेजी भाषा में चेस (Chess) कहते हैं। चेस शब्द की उत्पत्ति पर्शियन भाषा के 'शाह' (Shah) शब्द से हुई है जिसका अर्थ राजा होता है। इससे ऐसा लगता है कि शतरंज की शुरुआत फारस (Persia) से हुई, लेकिन यह बात सत्य नहीं है।

वास्तविकता यह है कि शतरंज की शुरुआत भारत से हुई। कहा जाता है कि राजे महाराजे लड़ाइयों का शौक पूरा करने के लिए शतरंज खेला करते थे। रावण की पत्नी मंदोदरी ने शतरंज का खेल राक्षसों को सिखाया, ताकि वे खाली समय में इस खेल में लगे रहें और उत्पात न मचाएं। लगभग 2000 साल तक यह खेल भारत तक ही सीमित रहा,उसके बाद यह पर्शिया, अरेबिया और योरुप के देशों में पहुंचा। धीरे-धीरे यह संसार के सभी देशों में खेला जाने लगा। रूस का तो यह राष्ट्रीय खेल बन गया। आज वहां लगभग 70 लाख शतरंज के खिलाड़ी हैं।

1255 में शतरंज का खेल इंग्लैंड पहुंचा। 1851 में लंदन में पहली अन्तर्राष्ट्रीय शतरंज प्रतियोगिता हुई। 1924 में फ्रांस में शतरंज के अन्तर्राष्ट्रीय संघ की स्थापना की गई। जर्मनी के डाक्टर इमेनुअल लास्कर (Dr. Emmanuel Lasker) 27 वर्ष (1821-1894) तक शतरंज के विश्व चैम्पियन रहे। स्त्रियों में ग्रेट ब्रिटेन की वेरा मेनचिक (Vera Menchik) सन् 1927 से अपनी मृत्यु (1944) तक विश्व विजेता रहीं। सबसे कम उम्र में विश्व चैम्पियनशिप पाने वाले खिलाड़ी थे रूस के मिखाइल नेखेमेविच (Mikhail Nekhemevich) जिन्होंने 23 साल की उम्र में यह खिताब हासिल किया।

मुगलकाल में शतरंज भारत में काफी लोकप्रिय था। शाही खानदानों में यह खेल एक फैशन बन गया था। भारत के खिलाड़ियों को शतरंज की बड़ी अच्छी-अच्छी चालें आती थीं लेकिन वे अपनी चालें किसी को बताते न थे। खेल की निपुणता को ये लोग अपने साथ ही लेकर मर गए। यही कारण है कि भारत आज तक शतरंज का कोई विश्वविजेता पैदा न कर सका।

हर तीन साल में शतरंज की विश्व प्रतियोगिता होती है। इस प्रतियोगिता में विजयी व्यक्ति को विश्वविजेता घोषित किया जाता है।



क्रिकेट के खेल की शुरुआत कब हुई ?

कुछ विशेषज्ञों के अनुसार क्रिकेट के खेल का आरम्भ लगभग 600 वर्ष पूर्व हुआ था। आक्सफोर्ड पुस्तकालय में एक प्राचीन चित्र लगा हुआ है जिसमें दो आदमियों को बैट (Bat) और बाल से खेलते हुए दिखाया गया है। लिखित प्रमाणों के अनुसार सबसे पहला क्रिकेट मैच 18 जून 1744 को केन्ट (Kent) और लन्दन के बीच हुआ था जिसमें लन्दन वालों को केन्ट ने हराया था। इसके कुछ वर्ष बाद इस खेल के नियम बनाए गए। पिच की लम्बाई 22 गज निश्चित की गई। दो डंडों का विकिट बनाया गया। क्रिकेट के बल्ले को हाकी की तरह बनाया गया। आधुनिक क्रिकेट में पिच की लम्बाई 22 गज और चौड़ाई 10 फुट होती है। विकिट में तीन डंडे होते हैं और बल्ला सीधा होता है जो हाथ के पास पतला और नीचे की ओर चौड़ा होता है।

आस्ट्रेलिया में इस खेल की शुरुआत 1803 में हुई थी। सन् 1868 में आस्ट्रेलिया की टीम इंग्लैंड आई थी। इस टीम ने इंग्लैंड में 47 मैच खेले जिनमें से 14 मैच इस टीम ने जीते और 14 मैच हारे। शेष 19 मैच बराबर रहे।

संसार का पहला टेस्ट मैच इंग्लैंड और आस्ट्रेलिया के बीच आस्ट्रेलिया के मेलबोर्न (Melbourne) नामक स्थान में 15 से 17 मार्च तक सन् 1877 में खेला गया। इस मैच को आस्ट्रेलिया ने 45 रन से जीता, लेकिन इसी जगह हुए दूसरे टेस्ट मैच में आस्ट्रेलिया की टीम हार गई।

इसके बाद टेस्ट मैचों का सिलसिला सारी दुनिया में धीरे-धीरे शुरू हो गया। पिछले 100 वर्षों में विश्व में 800 से अधिक खिलाड़ी अनेकों टेस्ट मैच खेल चुके हैं। इनमें से बहुत से खिलाड़ियों के अपने-अपने कीर्तिमान हैं।

आज क्रिकेट का शौक लोगों को बहुत अधिक हो गया है। टेस्ट मैचों में टिकट मिलना भी मुश्किल हो जाता है। रेडियो और टेलीविज़न पर इस खेल की कमेंटरी दी जाती है। स्त्री, पुरुष सभी उसे बड़े चाव से सुनते हैं।



क्या ध्यानचन्द की हाकी में चुम्बक लगा रहता था ?

हाकी के खेल में संसार में नाम कमाने वाले भारतीय खिलाड़ियों में सबसे पहला नाम ध्यानचन्द (Dhyan Chand) का आता है। इन्हें हाकी का जादूगर कहा जाता था। हाकी की गेंद ध्यानचन्द की स्टिक के साथ ही चलती रहती थी। उनके खेल में बिजली जैसी फुर्ती थी। उनकी खेल की फुर्ती और गेंद को स्टिक के साथ भागते हुए देखकर एक बार जर्मनी के लोगों को तो यह शक हो गया कि ध्यानचन्द की हाकी में चुम्बक लगा हुआ है। हाकी को तोड़कर देखा गया, लेकिन उसमें कुछ भी न मिला। ध्यानचन्द ने दूसरी हाकी से खेलना शुरू किया और दनादन गोल कर डाले। तभी सब को मानना पड़ा कि वह हाकी का महानतम खिलाड़ी है।

हाकी के इस जादूगर का जन्म इलाहाबाद (Allahabad) में 29 अगस्त सन् 1905 में हुआ था। वहीं के एक हायर सैकन्डरी स्कूल में उन्होंने पढ़ाई की। परिवार को चलाने के लिए उन्होंने सन् 1922 में दिल्ली में ब्राह्मण रेजीमेन्ट (Brahmin Regiment) में सिपाही की नौकरी कर ली। हाकी का शौक पता नहीं उनमें कब पैदा हो गया। लेकिन यह शौक कुछ ऐसा हावी हुआ कि अपना सारा खाली समय वह हाकी को देने लगे। उस समय सरकार की तरफ से प्रशिक्षण की सुविधा नहीं मिलती थी। ध्यानचन्द को अकेले अपने बल पर ही हाकी के गुर सीखने पड़े।

इनफैन्ट्री रेजीमेंट की तरफ से खेलने वाले ध्यानचन्द 1926 में न्यूजीलैंड जाने वाली भारतीय टीम के

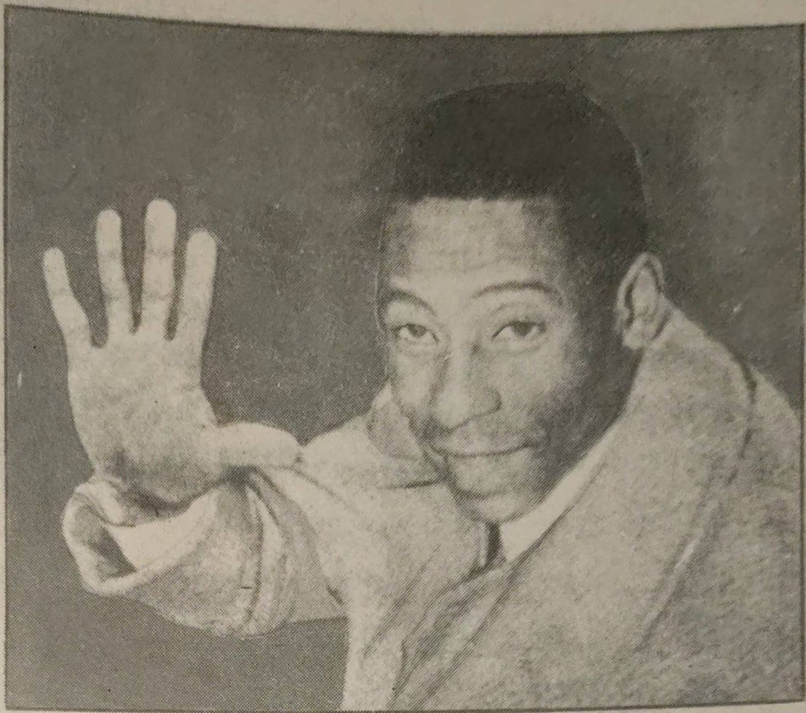
एक सदस्य बने। 1928 में एम्सटर्डम (हालैंड) में हुए ओलम्पिक खेलों में पहली बार हाकी के मुकाबलों में हिस्सा लेते हुए भारत ने स्वर्ण पदक जीता। ध्यानचन्द का नाम इस टीम में भी था। 26 मई को भारत व हालैंड के बीच जब फाइनल मुकाबला हुआ, ध्यानचंद को तेज बुखार था। लेकिन एक सैनिक होने के नाते उन्होंने अपने कर्त्तव्य से मुंह नहीं मोड़ा। एक शेर की तरह मैदान में उतरे और निजी तौर पर दो गोल दाग कर भारत को 3-0 से विजय दिला दी।

1932 के ओलम्पिक खेलों में तो भारत को स्वर्ण पदक जीतने के लिए सिर्फ दो मैच खेलने पड़े। एक मैच में भारत ने अमरीका को 24-1 से हराया। ओलम्पिक खेलों का यह रिकार्ड है। इस मैच में अकेले ध्यानचन्द ने 8 गोल किए। 1935 में आस्ट्रेलिया व न्यूजीलैंड के मुकाबले 48 मैच खेलते समय भारत ने सभी मैच जीतकर जो 584 गोल किए उनमें से 200 अकेले ध्यानचन्द ने किए। क्रिकेट के महान खिलाड़ी डोनाल्ड ब्रेडमेन ने जब इस करामात के बारे में सुना तो उसने कहा—''यह स्कोर किसी हाकी के खिलाड़ी का है, मुझे तो विश्वास नहीं होता, लगता है कि भारतीय खिलाड़ी रनों के हिसाब से गोल बनाते हैं।''

1936 में बर्लिन में हुए ओलम्पिक खेलों में जब ध्यानचन्द ने हिस्सा लिया तब तक वह सिर्फ सेना के एक मामूली सिपाही थे। बर्लिन में एक बार फिर भारत ने स्वर्ण पदक जीता और जो 38 गोल हुए उनमें से 11 गोल ध्यानचन्द की स्टिक का कमाल थे।

बर्लिन ओलम्पिक की जीत की खुशी में अंग्रेज सरकार ने ध्यानचन्द को सिपाही से नायक बना दिया। जर्मनी के नेता हिटलर ने जब यह सुना तो उसने ध्यानचन्द से हाथ मिलाते हुए कहा—'अगर तुम मेरे देश में होते तो मैं तुम्हें कर्नल बना देता'।

1947 में जब भारत आज़ाद हुआ तो ध्यानचन्द को मेजर बना दिया गया और हाकी की सेवा के उपलक्ष्य में पद्मभूषण की उपाधि भी दी गई। 3 दिसम्बर 1979 को हाकी के इस महान खिलाड़ी का स्वर्गवास हो गया।



पेले को फुटबाल का काला हीरा क्यों कहते हैं ?

फुटबाल विश्व में सबसे अधिक खेले जाने वाला खेल है, इसलिए इस खेल के सर्वश्रेष्ठ खिलाड़ी को विश्व का सर्वश्रेष्ठ खिलाड़ी माना जा सकता है। पेले फुटबाल के विश्वविख्यात खिलाड़ियों में से रहे हैं। फ्रांस के एक समाचार पत्र के अनुसार एक चुनाव में उन्हें इस शताब्दी का सर्वश्रेष्ठ खिलाड़ी चुना गया।

पेले अब फुटबाल खेलना छोड़ चुके हैं। इनका पूरा नाम एदसन अरान्तेस दो नासीमेंतो (Edson Arantes do Nascimento) है। लेकिन इन्हें लोग पेले (Pele) के नाम से पुकारते हैं। इनका जन्म 23 अक्तूबर 1940 को ब्राजील में हुआ। यह जाति के नीग्रो हैं और इनका रंग काफी काला है। इसलिए लोग इन्हें फुटबाल का काला हीरा कहते हैं।

पेले एक गरीब घर में पैदा हुए थे। जब वे चौथी क्लास में थे तो फीस न दे सकने के कारण उन्हें स्कूल से निकाल दिया गया। तब वे नंगे पैर गलियों में कपड़े की फुटबाल से खेला करते थे। एक बार उन्होंने मालगाड़ी से मूंगफली चुराकर और उन्हें बेचकर चमड़े की फुटबाल खरीदी। गरीबी के कारण दस रुपए महीने की नौकरी पर उन्होंने एक मोची के यहां काम किया।

11 साल की उम्र में उन्हें प्रसिद्ध फुटबाल प्रशिक्षक वाल्दीमार दो ब्रितो (Waldimar Do Brito) का साथ मिल गया। उन्होंने पेले को फुटबाल के सभी दांव-पेच सिखा कर हीरा बना दिया। 18 साल की उम्र में वे फुटबाल के बहुत अच्छे खिलाड़ी बन गए थे। सन् 1958 की विश्व फुटबाल प्रतियोगिता में उन्होंने ब्राजील की ओर से हिस्सा लिया। उनके कारण ब्राजील की टीम विश्व विजेता के रूप में घोषित की गई। इसके बाद 1962, 1966 व 1970 की विश्व फुटबाल प्रतियोगिताओं में उन्होंने हिस्सा लिया। 1966 में जख्मी हो जाने के कारण वे ज्यादा नहीं खेल पाए लेकिन शेष दोनों प्रतियोगिताओं में उन्होंने ब्राजील को विश्वविजेता बनाया।

पेले ने 7 सितम्बर 1956 से लेकर 2 अक्तूबर 1974 तक 1254 खेलों में 1216 गोल किए। अकेले

खिलाड़ी द्वारा इतने गोल करने का यह विश्व कीर्तिमान है।

पेले को खरीदने के लिए कई देशों ने लाखों रुपए का लालच दिया। अल्जीरिया का एक क्लब तो पेले के बदले ब्राजील को पेट्रोल, तरल गैस, कोयला व फास्फेट से भरा एक जहाज देने को तैयार हो गया था। उनका नाम दुनिया भर में प्रसिद्ध हो गया है। ब्राजील में उनके नाम पर बहुत सी सड़कें, मीनार व मूर्तियां बनाई गई हैं। हर सप्ताह आज भी उन्हें 300 से अधिक पत्र मिलते हैं जिनमें अधिकांश पत्रों में पते के स्थान पर केवल 'पेले' ब्राजील लिखा होता है।

पेले ने फुटबाल से काफी पैसा कमाया है, लेकिन वह सबसे बड़ी पूंजी उस पत्र को मानते हैं जो उन्हें कोलम्बिया के एक अन्धे बच्चे ने भेजा था। उस पत्र में लिखा था—''मैं आपके हजार गोलों में से एक भी गोल नहीं देख पाया हूं, लेकिन 999 गोल होने के बाद 1000वां गोल करने की मैंने भगवान से लगातार प्रार्थना की।'' पेले कहते हैं—इस पत्र को पढ़कर मैं फूट-फूट कर रोया था।

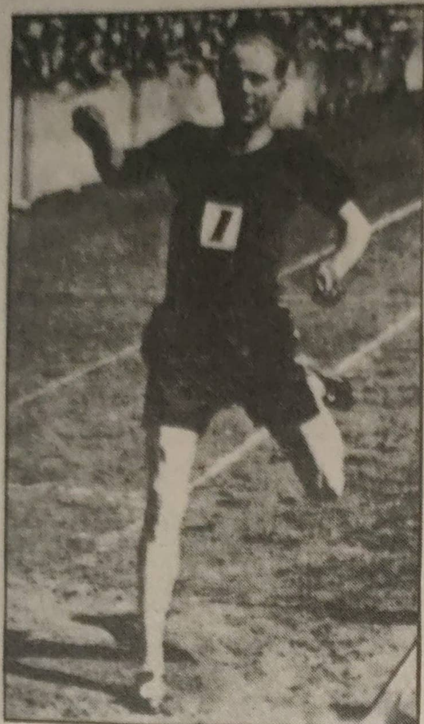


क्या ब्रेडमेन रन बनाने की मशीन था?

क्रिकेट के खेल का शौक दुनिया में दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही जा रहा है। इस खेल का पहला टेस्ट मैच आस्ट्रेलिया के मेलबोर्न (Melbourne) नामक स्थान में मार्च सन् 1877 में खेला गया था। तब से अब तक विश्व में खेले गए टेस्ट मैचों में 800 से भी अधिक खिलाड़ी क्रिकेट खेल चुके हैं। अब तक खेले गए टेस्ट मैचों में सबसे अधिक शतक (Centuries) आस्ट्रेलिया के सर डोनाल्ड जार्ज ब्रेडमेन (Sir Donald George Bradman) ने बनाए हैं। इनके शतकों की संख्या 29 है। क्रिकेट के इस विश्वविख्यात खिलाड़ी को लोग रन बनाने की मशीन कहते हैं।

उनका जन्म 27 अगस्त सन् 1908 को हुआ था। सन् 1928–29 में इंग्लैंड के विरुद्ध उन्होंने पहला टेस्ट मैच खेला। पहली पारी में इन्होंने 18 रन व दूसरी पारी में केवल एक रन बनाया, इसलिए उन्हें दूसरे मैच में नहीं खिलाया गया। तीसरे मैच में 79 व 112 रन बनाकर उन्होंने 1948 तक आस्ट्रेलिया की क्रिकेट टीम में अपना स्थान पक्का कर लिया।

ब्रेडमेन ने 1928 से 1948 तक कुल 52 टेस्ट मैचों की 80 पारियां खेलीं, जिनमें दस बार नाट आउट रहकर 6996 रन बनाए। उनका सबसे अधिक स्कोर 334 रहा। इन टेस्ट मैचों में से 24 में वे अपने देश की टीम के कप्तान रहे। उनके नेतृत्व में आस्ट्रेलिया ने कोई भी श्रृंखला (Series) नहीं हारी। सन् 1930 में लीड्स (Leeds) में इंग्लैंड के मुकाबले में एक ही दिन में उन्होंने 309 रन बनाकर एक नया रिकार्ड स्थापित किया। इसी श्रृंखला में उन्होंने कुल 974 रन बना कर एक नया विश्व रिकार्ड स्थापित किया। इन्होंने 214 मिनट में इसी श्रृंखला में दोहरा शतक बनाया जो अपने आप में एक विश्व रिकार्ड है। टेस्ट मैचों में वे केवल सात बार ही कोई रन न बना सके। अपने अन्तिम टेस्ट की अन्तिम पारी में वे एक भी रन न बना पाए। आने वाली सदियां भी मशीन की तरह रन बनाने वाले क्रिकेट के इस खिलाड़ी को भुला न सकेंगी।



Nurmi, 1931

क्या ऐतिहासिक दौड़ाक नुरमी कभी ठेला चलता था?

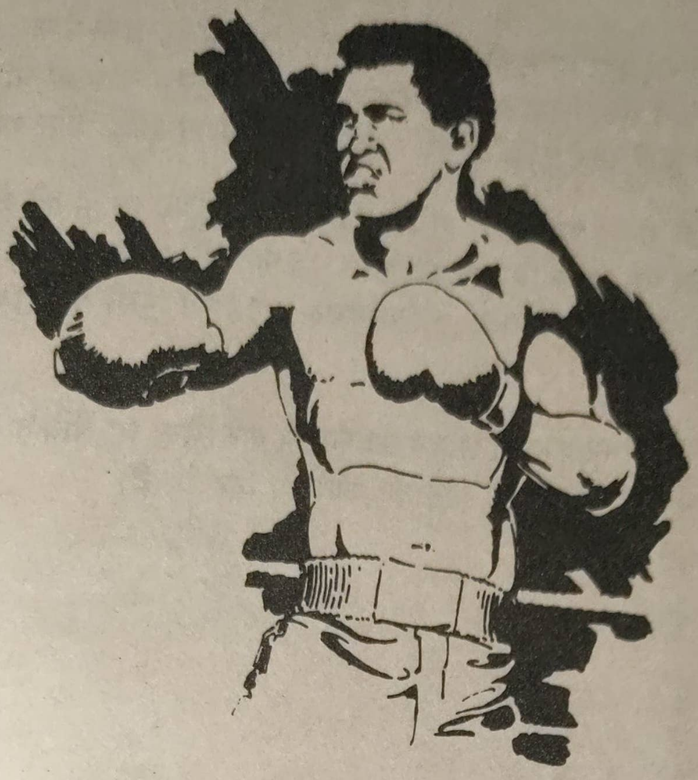
संसार में ऐसे खिलाड़ियों के उदाहरण हैं जो बचपन में भयंकर गरीबी से निकल कर सफलता और लोकप्रियता के शिखर पर पहुंचे हैं। फिनलैण्ड के पावो नुरमी (Paavo Nurmi) भी एक ऐसे ही खिलाड़ी थे जो 1920, 1924 और 1928 के ओलम्पिक खेलों के सर्वश्रेष्ठ दौड़ाक रहे। इन्होंने 12 पदक प्राप्त किए जिनमें 9 स्वर्णपदक और 3 रजत पदक थे।

नुरमी का जन्म 13 जून 1897 को फिनलैण्ड के एक गांव के किसान परिवार में हुआ। गरीबी के कारण उनके पिता को किसी दूसरे के खेतों में काम करना पड़ता था। उन्हें भी पिता की मदद करनी होती थी। जब वे 13 वर्ष के हुए तो वे रोजी-रोटी कमाने के लिए घर से भाग गए। घर से भागकर वे बोझ से लदे ठेले खींचते थे। ठेले खींचने से उनकी टांगें काफी मजबूत हो गई थीं। ठेला चलाते-चलाते एक दिन नुरमी को लगा मानो वह उड़ रहे हों। तभी से उन्हें खाली समय में दौड़ लगाने का शौक शुरू हो गया। मध्यम दूरी की दौड़ों में वे जल्दी ही राष्ट्रीय विजेता बन गए।

1920 के ओलम्पिक खेलों में 10000 मीटर की दौड़ में स्वर्णपदक और 5000 मीटर की दौड़ में रजत पदक जीता। 1924 के ओलम्पिक खेलों में 15000 मीटर की दौड़ जीतकर ठीक एक घंटे बाद नए रिकार्ड के साथ पांच हजार मीटर की दौड़ भी जीती। दो दिन बाद भयंकर गर्मी में उन्होंने 10000 मीटर की क्रास कण्ट्री रेस भी जीत ली। यह दौड़ इतनी मुश्किल थी कि दौड़ के दौरान 38 दौड़ाकों में से 24 दौड़ाक रास्ते में ही बेहोश हो गए थे। अगले दिन नुरमी ने 3000 मीटर की दौड़ भी जीत दिखाई।

1928 के ओलम्पिक खेलों में, जब नुरमी 31 साल के थे, 10000 मीटर की दौड़ में फिर एक बार जीते। इस तरह तीन ओलम्पिक खेलों में वे अपनी धाक जमा चुके थे।

अलग-अलग दूरी की दौड़ों में उन्होंने 20 विश्व रिकार्ड कायम किए। ऐसी सफलता दुनिया का कोई और दौड़ाक ओलम्पिक खेलों में नहीं पा सका है। 1935 में उन्होंने खेलकूद से संन्यास ले लिया। उसी वर्ष नुरमी ने अपनी शादी कर ली, लेकिन एक वर्ष बाद ही उन्होंने अपनी पत्नी से तलाक ले लिया। 2 अक्तूबर 1973 को दिल के दौरे से इनका स्वर्गवास हो गया।



खेलों के माध्यम से सबसे अधिक धन किसने कमाया ?

विश्व प्रसिद्ध मुक्केबाज मुहम्मद अली (Muhammad Ali) ने अक्तूबर सन् 1960 से अगस्त सन् 1979 तक खेलों के माध्यम से लगभग 48 करोड़ रुपए से भी अधिक धन कमाया। इस दौरान उन्होंने 59 मुकाबलों में 529 राउण्ड किए। विश्व में खेलों के जरिये इतना धन आज तक कोई नहीं कमा पाया।

मुहम्मद अली का जन्म 17 जनवरी 1942 को अमरीका के एक नीग्रो परिवार में हुआ। इनका बचपन का नाम कैसियस मार्सैलिस क्ले था। इनका परिवार काफी गरीब था। शुरू से ही इन्हें मुक्केबाजी का बहुत शौक था। बचपन में ये काफी सुस्त थे। खाना और सोना इन्हें बहुत अच्छा लगता था। जब वे तीन साल के थे तो किसी बात पर उन्होंने अपनी मां के एक मुक्का मारा जिससे मां के दो दांत टूट गए। मुक्केबाजी की यह शुरुआत थी।

उनके पिता ने अली के लिए एक साइकिल खरीदी जिसे एक दिन कोई गोरा बच्चा चुरा ले गया। इसकी शिकायत जब उन्होंने पुलिसमैन से की तो उसने कहा कि ''तुम खुद ही उस चोर को तलाश करके उसकी पिटाई क्यों नहीं कर देते?'' यह बात अली के मन में खल गई। उसी दिन से उन्होंने मुक्केबाजी का अभ्यास शुरू कर दिया। साइकिल चोर को तो वे नहीं पकड़ पाए लेकिन 1960 के ओलम्पिक खेलों में मुक्केबाजी में उन्होंने स्वर्णपदक जीता। इसके बाद वे व्यावसायिक मुक्केबाज बन गये।

25 फरवरी 1964 को अमरीका के सोनी लिस्टन (Sonny Liston) को हराकर वे विश्व चैम्पियन बन गए। इसके बाद उन्होंने अपना नाम क्ले के स्थान पर मुहम्मद अली रख लिया और इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया।

अमरीका में हर युवक को कुछ समय के लिए सेना में रहना पड़ता है। अली ने जब यह नियम नहीं माना तो उनसे विश्व विजेता का खिताब छीन लिया गया। दस हजार डालर का जुर्माना हुआ और पांच साल की कैद की सजा दी गई। दुनिया के लोगों के विरोध के कारण उन्हें दो साल में ही छोड़ दिया गया।

1970 में 32 मुकाबलों में वह पहली बार हारा, लेकिन 30 अक्तूबर 1974 को जार्ज फोरमेन (George Foreman) को हराकर फिर वह विश्व विजेता बन गया। 15 फरवरी 1978 को अमरीका के लिओन स्पिंक्स (Leon Spinks) ने अली को हराया लेकिन 15 सितम्बर 1978 को अली ने स्पिक्स को हरा कर अपना खिताब वापिस ले लिया।

जून सन् 1978 में अली ने मुक्केबाजी छोड़ने का फैसला कर लिया था लेकिन अब सुना जा रहा है कि तीन बार शादी करके अली फिर मैदान में आने की कोशिश कर रहे हैं।

पुस्तकें वी.पी.पी. पैकेट द्वारा या पुस्तकों की पूरी कीमत (डाकखर्च सहित) पेशगी भेजकर रजिस्ट्री पैकेट द्वारा मंगाई जा सकती हैं।

1.3.83 से नई डाकदरों के लागू हो जाने से डाकखर्च पुस्तकों की कीमत का लगभग 25% से 40% तक हो गया है।

17/- रु. से 25/- रु. तक की कीमत की पुस्तकों पर यह डाकखर्च असहनीय है, जोकि 7/50 रु. कम से कम आता है।

1 मार्च 1983 से बढ़े हुए डाकखर्च का असर

	औसत वज़न	रजिस्ट्री चार्ज	वी. पी चार्ज	वज़न 2/- किलो	कुल
डाकखर्च मिलाकर 10/- तक की कीमत के पैकेट पर	(300 ग्राम)	0-65	1-00	0-60	2-25
डाकखर्च मिलाकर 20/- तक की कीमत के पैकेट पर	(600 ग्राम)	0-65	2-00	1-20	3-85
डाकखर्च मिलाकर 20/- से ऊपर कीमत के पैकेट पर	(750 ग्राम)	2-75	3-00	1-50	7-25

नोट: इसके अतिरिक्त दस नये पैसे का वी.पी. मनीआर्डर फार्म तथा पैकिंग व अन्य खर्च जोकि लगभग 1/50 प्रति पैकेट आता है, प्रकाशक वहन करता है।

उपर्युक्त डाकदरों के अनुसार पुस्तकों को वी.पी. द्वारा मंगाने पर निम्न डाकव्यय होगा

7/75 तक की पुस्तक पर डाकखर्च 2/25—25% To 30%
7/75 से 16/15 तक की पुस्तकों पर 3/85—25% To 55%
16/25 से ऊपर की पुस्तकों पर 7/25—25% To 40%

(पुस्तक व्यवसाय में 20/- से ऊपर एक औसतन वी.पी. पैकेट की रकम 20/- से 30/- के बीच रहती है)

अब चूंकि पूरा डाकखर्च न तो पाठक ही वहन कर सकता है और न ही प्रकाशक—इसलिए हमने डाकखर्च की जो रकम इस सूचीपत्र में दी है, वह औसतन आधी है—अर्थात आधा डाकखर्च हम वहन कर रहे हैं।

आर्डर देकर वी.पी.पी. न छुड़ाने पर सारा डाकव्यय का भार प्रकाशक पर आ पड़ता है, जो कि लिखे डाकखर्च से औसतन दुगना होता है।

उपर्युक्त बातों को ध्यान में रखते हुए अब अधिकतर हमने एडवांस रकम मांगनी शुरू कर दी है। वी.पी.पी. द्वारा केवल वही आर्डर भेजे जाते हैं, जो हम समझते हैं छूट जायेंगे—और अन्य दूसरे आर्डरों को भेजने से पहले एडवांस मंगाने के लिए उन्हें पत्र लिख दिया जाता है।

आपके आर्डर के प्रत्युत्तर में यदि आपसे एडवांस मांगा गया है, तो उसे फौरन साथ भेजे गये मनीआर्डर फार्म में भरकर भेज देवें जिससे पुस्तकें जल्द से जल्द भेजी जा सकें।

पुस्तकें जल्द मंगाने के लिए मनीआर्डर द्वारा एडवांस रकम भेजकर रजिस्ट्री पैकेट से मंगाइये

वी.पी.पी. द्वारा पुस्तकें मंगाने के लिए 25% रकम एडवांस भेजें।

हमारी प्रकाशित पुस्तकें लगभग सभी प्रतिष्ठित पुस्तक विक्रेताओं एवं ए.एच. व्हीलर के रेलवे बुक स्टालों पर उपलब्ध हैं—डाक व्यय बचाने के लिए आप अपने निकट के बुकस्टाल से मांग करें अन्यथा कहां मिलेंगी, यह उनसे पूछकर वहां से खरीद लें।

गृहिणी की जान को भी अनेक लफड़े हैं

धोबी का हिसाब, राशन का हिसाब, दूधवाले का हिसाब,
तमाम ज़रूरी टेलिफोन नम्बर, रोज़ के खर्चे, लेन-देन का हिसाब,
आय-व्यय का व्यौरा, बच्चों के घर में ज़रूरी 'फर्स्ट एड'
रसोई की आवश्यक बातें, दाग़-धब्बे छुड़ाने के उपाय,
घर के बरतन-फ़रनीचर साफ रखने के नियम और फिर अपना प्रसाधन,
आभूषणों का रख-रखाव—हर रोज़ हज़ारों लफड़े ......
कहां याद रह पाता है?

यह एक ऐसी किताब है
जो अपने आप में **डायरी** है, **डायरेक्टरी** है,
रोज़मर्रा की छोटी-छोटी बातों का **लेखा-जोखा** है
आपकी तमाम आवश्यकताओं का **संदर्भ ग्रंथ**
.... कुल मिलाकर एक **'गृहस्थ कोश'**

इन सभी समस्याओं से जूझकर, सुघड़ गृहिणी कहलाने का एकमात्र उपाय, अब उपलब्ध है—



फैमिली इयर बुक

मूल्य :20/-
डाक खर्च माफ
बड़े साइज़ के
148 पृष्ठ

- मासिक, वार्षिक तथा रोजमर्रा के खर्चों की रिकार्ड-तालिकाएं
- दूध, किराना, अखबार, लांड्री व डाक्टर आदि उधारी की सभी मदों के हिसाब-किताब के चार्ट
- लेन-देन व बैंक संबंधी चार्ट
- गृहिणियों के लिए उपयोगी टेलीफोन डायरेक्टरी
- टेलिग्राफिक ग्रीटिंग्स की तालिका, वर्ष भर के व्रतों-त्योहारों की सूची, नाप-तोल व डाक-दरों के विवरण
- रसोई पुराण के अंतर्गत स्टील के बर्तनों, कुकर, गैस, फ्रिज आदि के रख-रखाव, खाद्य वस्तुओं की सुरक्षा, फल-सब्जियों को सुखाने व सुरक्षित करने, अचार डालने आदि की ढेरों ढेर जानकारियां

- दाग-धब्बे छुड़ाने, दुर्गंध व कीड़े दूर करने, बेकार वस्तुओं के सदुपयोग जैसे अनेकानेक विषयों पर नोट्स
- ड्राइंग रूम की सजावट व कलर-मैचिंग संबंधी जानकारियां
- फर्स्ट-एड व शिशुपालन संबंधी सचित्र विवरण व चार्ट
- महिलोपयोगी, व्यायाम, संतुलित खुराक व कैलोरी संबंधी जानकारियां व तालिकाएं
- जेवरों के रख-रखाव के बारे में सुझाव व सौंदर्य को टिकाऊ बनाने के घरेलू नुस्खे . . .

और साथ में पूरे वर्ष की 52 पृष्ठों की हफ्तेवार डायरी

ब्यूटी क्लीनिक जैसा मेकअप, अनिंद्य सुन्दरी जैसा सौन्दर्य
प्राप्त करने के लिए आपको चाहिए

होम ब्यूटी क्लीनिक

घर बैठे कुशल ब्यूटिशियन सा प्रशिक्षण देने वाली एकमात्र पुस्तक !

- चेहरे की त्वचा को चिरकाल तक कोमल स्वस्थ व झुर्रियों रहित रखने के लिए विभिन्न व्यायाम, मालिश व फेशियल क्रियाएं.
- शारीरिक सुडौलता बनाए रखने के लिए गरदन, कमर, वक्ष, कूल्हे, जांघ व हाथ-पैरों के सरल व उपयोगी व्यायाम.
- सांवली त्वचा को आकर्षक व लावण्यमयी कैसे बनाएं.
- त्वचा के रंग व आयु के अनुसार चेहरे का सुन्दर मेकअप कैसा हो.
- बालों की सुरक्षा, केश बढ़ाने के उपाय तथा आकर्षक हेयर स्टायल्स.

इनके अतिरिक्त और भी ढेरों उपयोगी जानकारियां जैसे

- सौन्दर्य प्रसाधन प्रयोग करने के सही ढंग.
- घर पर बनाए जा सकने योग्य उत्तम सस्ते सौन्दर्य-प्रसाधन.



बड़े साइज़ के
140 पृष्ठ
मूल्य:18/-
डाकखर्च 2/-

- नव वधु का घर पर ही पूर्ण श्रृंगार करना.
- पैडीक्योर और मैनीक्योर.
- कील-मुंहासे, एक्ने, चेचक के दाग, श्वेत दाग, सन बर्न व अवांछित बालों का घरेलू व असरकारक उपचार.

सारी क्रियाएं सैकड़ों फोटोग्राफ्स तथा रेखाचित्रों सहित वर्णित

नवजात शिशु के जन्मदिन पर सर्वोत्तम उपहार

भारत में पहली बार
आपके नवजात शिशु से
संबंधित टू-इन-वन एलबम
रिकार्ड बुक + फोटो एलबम



साइज : डबल डिमाई
मूल्य : 28/-
डाकखर्च : 4/-

बेबी रिकार्ड एलबम

Also available in English

- **बेबी रिकार्ड एलबम का प्रत्येक पृष्ठ पांच रंगों के मनमोहक चित्रों से युक्त है।**
- **इसमें आप अपने बच्चे के जन्म से अगले पांच वर्ष तक के सीढ़ी-दर-सीढ़ी विकास (दंत-अंकुरण, पहली बार बैठना व चलना आदि), जन्म संबंधी विवरणों (जन्म तिथि, जन्म का वजन-लम्बाई व कुंडली आदि), के रिकार्ड के साथ ही प्रत्येक अवसर के स्मरणीय फोटो भी संजो सकते हैं।**
- **इसमें बच्चे की पहली पांच वर्षगांठों व अन्य मांगलिक अवसरों पर नाना-नानी व अन्य संबंधियों के आशीष व उपहारों की विवरण-तालिकाएं हैं, माता-पिता का वंशावली-चार्ट है तथा पांच वर्ष तक की आयु के सभी मांगलिक अवसरों, जैसे मुंडन व नामकरण संस्कार आदि, का रंगारंग लेखा जोखा है।**

अपने निकट के बुक स्टाल एवं ए. एच व्हीलर के रेलवे तथा बस अड्डों पर स्थित बुक स्टालों पर मांग करें

पुस्तक महल
1. खारी बावली, दिल्ली-110006
2. 10-B, दरियागंज, नई दिल्ली-110002.

VANDANA PM 11-82

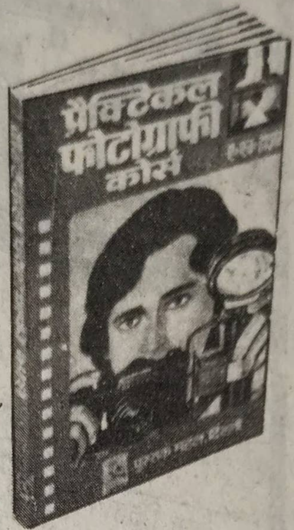
15 दिन में फ़ोटोग्राफ़ी सीखिए

एक तजुर्बेकार फोटोग्राफर का तैयार किया हुआ
बिना स्टुडियो की मदद से घर बैठे ही फौटोग्राफी सिखाने वाला-

प्रैक्टिकल फ़ोटोग्राफ़ी कोर्स

ए० एच० हाशमी

- आज की सर्वोत्तम हॉबी 'फोटोग्राफी' जिसे आप इस पुस्तक की मदद से कुछ ही दिनों में सीख जायेंगे।
- दि रॉयल फोटोग्राफिक सोसायटी लंदन तथा ईस्टमैन कोडक कं० U. S. A. के फोटोग्राफिक अनुसंधानों पर आधारित एक नया कोर्स।
- कैमरा साधारण हो या ऑटोमैटिक, संपूर्ण टैक्निकल जानकारी।
- ट्रिक फोटोग्राफी सीखकर चमत्कारिक फोटो खींचिए।
- धूप-छांव, दूर-पास, इनडोर-आउटडोर, रात-दिन, सभी मौकों पर खींचिए।
- पोर्ट्रेट्स, ग्रुप्स, स्टिल-लाइफ, लैण्ड स्कैप, स्पोर्ट्स तथा स्पीड फोटोग्राफी, खिलखिलाते बच्चे, विवाह-उत्सव, जानवर, प्राकृतिक दृश्यावलियां आदि अनेक अवसरों के छायाचित्र खींचना सीखिए।



डिमाई साइज़ के 244 पृष्ठ
सैकड़ों रेखा व छाया चित्र
मूल्य 15/- • डाकखर्च 3/-

- फ्लैश तथा इलैक्ट्रानिक फ्लैश फोटोग्राफी पर विशेष जानकारी।
- डार्क रूम का सामान, हर प्रकार के डैवलपर्स का पूर्ण ज्ञान, फोटोग्राफिक फार्मूले, कैमिकल्स तथा उनके गुण व उपयोग।
- डैवलपिंग, कान्टैक्ट प्रिंटिंग, एन्लार्जमेंट, डाक्यूमेंट कापिंग, रीटचिंग,, फिनिशिंग तथा हैण्ड कलरिंग।
- कलर फोटोग्राफी की कम्प्लीट जानकारी तथा उनकी प्रोसेसिंग करके रंगीन प्रिंट बनाना।
- साधारण फोटो का सात रंगों में टोनिंग करना।
- लैंस, फिल्टर्स, डैप्थ ऑफ फील्ड, एक्स-पोजर, कम्पोजीशन, बेसिक लाइटिंग-फैक्टर्स, नैचरल तथा कृत्रिम लाइट आदि की जानकारी।

धर्मयुग, सरिता, मनोरमा तथा अन्यान्य पत्रिकाओं की सुविख्यात लेखिका एवं पाक-कला की विशेषज्ञा 'श्रीमती आशारानी व्होरा' द्वारा प्रस्तुत 100 से अधिक लोकप्रिय व्यंजनों के बनाने की विधि फोटोग्राफस सहित।

मॉडर्न कुकरी बुक



किचन सैटिंग—भारतीय एवं पश्चिमी स्टायल में किचन सैटिंग के 15 से अधिक
फोटोग्राफ्स, रसोईघर के आवश्यक सामान व आधुनिक उपकरणों सहित।
परोसने की कला और मेज-सज्जा—आप उच्च या मध्यम वर्गीय परिवार की महिला हैं
और आपके घर में पार्टी या उत्सव है लेकिन आपको नहीं पता कि—मेहमानों का स्वागत
कैसे करें, परोसने के क्या-२ तौर-तरीके हैं, व्यंजनों को प्लेटों में कैसे सजाएं तथा डायनिंग
टेबल पर प्लेटों व क्रॉकरी आदि को कैसे सजाएं। यह पुस्तक आपका पूर्ण मार्ग-दर्शन करेगी
क्योंकि इसमें सभी कुछ फोटोग्राफ्स देकर समझाया गया है।
परोसने की कला और मेज सज्जा—मेहमानों का स्वागत कैसे करें, परोसने के क्या-क्या
तौर-तरीके हैं, व्यंजनों को प्लेटों में कैसे सजाएं तथा डायनिंग टेबल पर प्लेटों व क्रॉकरी
आदि को कैसे सजाएं।
पार्टी शिष्टाचार तथा टेबल मैनर्स—मेंजबानों से कैसे मिलें तथा उनसे कैसे विदा लें,
खाने के तौर-तरीके (Table Manners) तथा आधुनिक पार्टियों के शिष्टाचार।
व्यंजन खण्ड—पुस्तक में वर्णित सभी व्यंजन विशेषज्ञों की देख-रेख में पहले तैयार किए गए हैं फिर उनके फोटोग्राफ्स देकर
वर्णित किए गए हैं। जिनमें—

- एक राष्ट्रीय मीनू के रूप में पंजाब के छोले-भठूरे, दक्षिण का मसाला डोसा, महाराष्ट्र के पोहे, गुजरात के ढोकले,
बम्बई की भेल पूरी, बंगाल के रसगुल्ले तथा यू० पी० की गुझियां।
- दैनिक नाश्ते, विशेष अवसरों के लिए मीठे व नमकीन विशिष्ट पकवानों के साथ-साथ जैम, मुरब्बा, जैली, आइसक्रीम,
कुल्फी, स्क्वैश, फ्रूट कस्टर्ड, अचार, चटनी, सॉस, सलाद, सूप, सैंडविच और फ्रूट काकटेल आदि।
- मांसाहारी एवं विदेशी लगभग सभी प्रमुख-प्रमुख व्यंजनों के अतिरिक्त कांटीनेन्टल डिशेज में ग्रीक, फ्रेंच, इटैलियन, स्पेनिश,
अमेरिकन, चाइनीज व जापानी व्यंजन आदि।

बड़े साइज़ के 148 पृष्ठ
सैकड़ों रेखा व छाया चित्र
मूल्य 15/- •
डाकखर्च 3/-

आधुनिक परिवारों के

युवक-युवतियों का मनचाहा शौक



बड़े साइज़ के 120 पृष्ठः
बहुरंगी आवरण
मूल्य केवल 15/-
डाकखर्च 3/- पृथक

आधुनिक युग में बाटिक कला से बने कपड़ों की मांग दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। बाटिक द्वारा बनाई गयी एलीफेन्टा, अजन्ता व खुजराहो आदि की मूर्तियां तथा अन्यान्य भित्ति चित्र आज भी पूरी दुनिया में अत्यधिक आकर्षण के केन्द्र बनी हुई हैं।

युवा पीढ़ी में लोकप्रिय इस माडर्न आर्ट को आप घर बैठे स्वयं सीख सकते हैं —

आप भी अपने खाली समय में घर की सजावट के साज समान से लेकर पहनने के वस्त्रों तक पर बाटिक कला का प्रयोग कर—खिड़की व दरवाजों के पर्दे, मेजपोश, टीकोजी, रेडियो कवर, चादरें, कुशन, थैले, टाई, साड़ी-ब्लाउज़, कमीजें, कुर्ते आदि पर विभिन्न प्रकार के रंग-बिरंगे डिजाइन बना सकते हैं।

इसे व्यवसाय के रूप में अपनाकर कम समय में तथा नाममात्र लागत में आप सहस्त्रों रूपया कमा सकते हैं। बाटिक विधि से निर्मित कपड़ों की विदेशों में करोड़ों रु० की खपत है। आप भी सीधा एक्सपोर्ट करिये या किसी एक्सपोर्टर से सम्पर्क स्थापित कर सकते हैं। इस व्यवसाय में घर के सभी सदस्य-बच्चे, स्त्री, पुरुष, वृद्ध सभी कार्य में लगकर सस्ता माल तैयार कर सकते हैं।

1. इस पुस्तक में बाटिक कला की सम्पूर्ण प्रक्रिया क्रम विस्तार से सैकड़ों चित्रों की सहायता से समझायी गयी है।
2. चमड़े पर बाटिक के अन्तर्गत पर्स, हैण्ड बैग, कॉम्बं केस, गागल्स केस, ट्रांजिस्टर व कैमरे के कवर आदि पर सुन्दर-सुन्दर डिजायन बनाना सचित्र सिखाया गया है।
3. फैब्रिक पेन्टिंग के अध्याय में उसकी सम्पूर्ण टैक्निकल जानकारी दी गयी है।
4. तीसरे अध्याय में राजस्थान की परम्परागत कला बन्दिश (टाई एण्ड डाई)की आधारभूत जानकारी चित्रों सहित दी गई है।

100 से अधिक नई-नई बुनतियां डालिये



आधुनिक ऊषा बुनाई शिक्षा

मूल्य केवल 24/-
डाक खर्च 4/- अलग
डिमाई साइज़ के पृष्ठः 344

इतने ढेर सारे नमूने आपको अन्य किसी पुस्तक में नहीं मिलेंगे

इस पुस्तक के दो खंडों में दिए गए सचित्र नमूनों की सहायता से आप **केबल्स, ज़िगज़ैग, हनीकोम्ब, मोतीदाना, बोक्स** डिज़ाइन (चौखाना) व **दोरंगी** बुनतियों के 45 आकर्षक नमूनों के अतिरिक्त **जालीदार** बुनाइयों के 30 मनोहारी नमूने डालना सीख जायेंगी।

पुस्तक के तीन अन्य खंडों में अन्यान्य बुनतियों की सहायता से विभिन्न प्रकार के ऊनी वस्त्र तैयार करना सिखाया गया है। जैसेः

- **शिशुओं व बच्चों के लिएः** बेबी सैट, बूटीज, लैगिंग्ज, निकर, टी शर्ट, टोपियां, स्वैटर, कोट, पुलओवर, शाल व कई प्रकार के लुभावने फ्रॉक।
- **महिलाओं के लिएः** दो रंग व सैल्फ डिज़ाइन के ब्लाउज़, कार्डीगन, कोट व सुन्दर-2 शालें
- **पुरुषों के लिएः** दस्ताने (दो व चार सलाइयों से) जुराबें, मफलर, हाफ स्वेटर, जैकेट, पुल ओवर, दो रंग के स्वेटर व गुलबंद.

पुस्तक के सातवें खंड में **क्रोशिया** बुनाई से सीखिए आठ प्रकार की लुभावनी लेसें, विभिन्न प्रकार के मेजपोश व थाल पोश, क्रोशिए से बना बटुआ व गुलबंद.

अंतिम खण्ड में आप पाएंगीः सभी प्रकार की कढ़ाइयों के लिए प्रारंभिक टांके जैसेः चैन स्टिच, स्टैम स्टिचः फ्रैंच नॉट, सीड स्टिच व लूप स्टिच. रूमाल व मेजपोश की कढ़ाई के लिए सुंदर नमूने

इस के अतिरिक्तः

— नए सिरे से प्रारंभिक बुनाई सीखने की इच्छुक महिलाओं के लिए बुनाई संबंधी प्राथमिक जानकारी जैसेः फंदे डालना, सीधी-उल्टी बुनाई, फंदे घटाना-बढ़ाना, काज करना व ऊनी वस्त्रों की सिलाई.

— ऊनी वस्त्रों की सार-संभाल, धुलाई व सभी प्रकार के दाग-धब्बे छुड़ाने संबंधी उपयोगी सुझाव.

अपने निकट के बुक स्टाल एवं रेलवे तथा बस अड्डों पर स्थित बुक स्टालो पर मांग करें अन्यथा वी०पी०पी० द्वारा मगाने का पता।

पुस्तक महल, खारी बावली, दिल्ली-110006
नया शो रूम : 10-B. नेता जी सुभाष मार्ग दरिया गंज, नई दिल्ली